UNIVERSAL LIBRARY

OU_180465

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 K95B Accession No. G.H. 429

Author कृष्णचन्द्र

Title जीवन पत्ते १९५६

This book should be returned on or before the date last marked below.

फ़िल्मी जगत् के बारे में यथार्थचित्रण—प्रधान प्रगतिशील उपन्यास

लेखक

कृष्णचन्द्र

समालोचनार्थ
प्रकाशक की ओर से भेंट.
28/11

वोरा ऍन्ड कंपनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउन्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रास्ता, बम्बई २.

प्रथम संस्करण

●

अक्टूबर, १९५९

मू. रु. ५॥)

प्रकाशक :
अेम० के० वोरा,
वोरा अेन्ड कंपनी,
पब्लिशर्स (प्राइवेट) लि०
३, राउन्ड बिल्डिंग,
कालबादेवी रास्ता, बम्बई २.

●

मुद्रक :
मणिलाल टी. शाह,
लिपिका प्रेस,
कुर्ला रोड, अंधेरी

उपन्यासकार की क़लम से—

जब मैंने पहले-पहल कहानियाँ लिखनी शुरू कीं उस समय ज़िन्दगी के प्रति मेरा दृष्टिकोण रोमान्टिक था; लेकिन ज्यों-ज्यों आम जनता की बुरी हालत मुझ पर ज़ाहिर होती गयी और ज्यों-ज्यों मैं देश की प्रगतिशील राजनीतिक और साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेने लगा—मेरा दृष्टि-कोण बदलता गया। इस प्रकार समाज और उसकी नाइन्साफ़ी, हमारी ज़िन्दगी और उसकी रोज़ की घुटी हुई हालत, हमारी आर्थिक कमज़ोरी और उसकी वजह से पैदा होने वाली सैकड़ों ख़राबियाँ मुझ पर खुलने लगीं। तभी समाज और उसके रिश्तों को बदलने की, ज़िन्दगी की कमज़ोरियों को दूर करने की मेरी इच्छा प्रबल होती गयी। क्योंकि मेरा विश्वास है कि जो बात उचित नहीं है उसे बदलना ही चाहिए और इस काम में साहित्यकार अथवा लेखक को भी हिस्सा लेना चाहिए; वह दुनिया से अलग-थलग खड़ा होने वाला तमाशाई नहीं है; बल्कि वह तो इस समाज, इस ज़िन्दगी, इस इन्क़लाब का एक हिस्सा है। अगर वह सच्चाई से काम करे तो ज़िन्दगी के लिए उसका जो कर्त्तव्य है, वह उसे पूरा भी कर सकता है।

पिछले साल जब भारत सरकार ने मुझे अपने फ़िल्म डेलीगेशन का एक सदस्य चुना, तो मैंने चीन की यात्रा की, और उसके तुरन्त बाद ही मैं यूरोप चला गया। इस प्रकार मुझे रूस, इंग्लैण्ड, फ्रान्स, स्वीट्ज़रलैण्ड, लेबनान आदि को देखने का अवसर मिला। बाहर जाकर नई-नई बातों का पता चला; मालूम हुआ कि अपना देश कितना प्यारा देश है, यहाँ के रहने वाले कितने प्यारे हैं। जहाँ बहुत सी बातों में हमें आज दुनिया से बहुत कुछ सीखना है, वहाँ आज भी हम दुनिया को बहुत कुछ दे सकते और सिखा सकते हैं, हर अच्छी बात सिर्फ़ यूरोप ही के हिस्से में नहीं

आई है। विदेश यात्रा से लौटने के बाद अगर कोई हिन्दुस्तानी ग़ौर से सोचे और समझे तो वह पहले से भी ज़्यादा हिन्दुस्तानी हो जाता है।

और क्या लिखूँ ? एक लेखक की जीवनी तो वास्तव में उसकी रचनाएँ होती हैं; वर्ना दूसरी बातों में वह एक साधारण इन्सान होता है; आप ही की तरह का इन्सान। आप ही जैसा अच्छा या बुरा; लेकिन अपनी कृति में वह कुछ बातें ऐसी कहता है; जो कभी-कभी सोचने-समझने की भी होती हैं। अभी तक ३० पुस्तकें लिख चुका हूँ; उनमें पाँच तो उपन्यास हैं, बाकी कहानियाँ, नाटक आदि। इनमें से कुछ का भारत की सब भाषाओं में अनुवाद हो चुका है साथ ही दुनिया की दूसरी बड़ी भाषाओं—जैसे अंग्रेज़ी, रूसी, जर्मन, पोलिश, रोमानियन, चेक, चीनी जापानी, अरबी, फ़ारसी, में भी अनूदित रूप छप चुका है। 'बावन पत्ते' मेरा नवीनतम उपन्यास है; जिसमें मैंने हिन्दुस्तानी फ़िल्म इन्डस्ट्री और उसके अन्दर काम करने वाले तरह-तरह के लोगों की ज़िन्दगी, उनकी मुहब्बतें, उनकी नफ़रतें, उनके काम करने का ढंग, उनके सोचने का सलीक़ा पेश करने की कोशिश की है; आशा है पाठक इसे दिलचस्पी से पढ़ेंगे।

कृष्णचन्द्र

चार बंगला,
वरसोवा रोड,
अन्धेरी, बम्बई।

प्रस्तावना

युग बदलता है, युग के साथ प्रतिमान, आस्थाएं, सम्भावनाएँ, दृष्टिकोण सभी कुछ बदल जाते हैं। साहित्यकार के लिए ऐसे परिवर्तनों के प्रति जागरूक और सचेष्ट रहना सर्वथा आवश्यक है, यदि उसे जीवित रहना है।

दस वर्ष पूर्व तक इस देश में जिस सामन्तवादी संस्कार का बोलबाला था, उसकी शृंखला की कड़ियाँ कभी की छिन्न-भिन्न हो चुकी हैं और अब तो यह अतीत की सी बात हो गयी है। रहा पूँजीवाद, धीरे-धीरे उसकी कड़ियाँ भी घिस-पिट कर इस क़दर कमज़ोर हो गयी हैं कि अब टूटीं तब टूटीं। ज़रूरत है किसी हथौड़े की ऐसी करारी चोट की जो एक ही बार में रहा सहा काम पूरा कर दे। चूँकि साहित्य-सृजन का आधार है लौकिक यथार्थ; ऐसा यथार्थ जो स्पष्ट स्वर की माँग करता है, लाग-लपेट और घुमाव-फिराव के साथ सत्य को सम्बद्ध करने का युग अब नहीं रहा, अतएव नाबदान को नाबदान कहना ही चाहिए, भले ही कुछ लोग इसे विकृत रुचि की संज्ञा दें। इस दृष्टि से कृष्णचन्द्र के 'बावन पत्ते' का सृजन युग की माँग के अनुरूप हुआ है ऐसी मेरी मान्यता है। उपन्यासकार ने फ़िल्मी दुनिया को कथावस्तु के रूप में चुनकर गर्हित, जघन्य और असामाजिक पूँजीवादी परम्परा की करारे चाबुकों की मार से खाल उधेड़ कर रख दी है। साथ ही वह मरहमपट्टी भी करता जाता है। उसका रुख कोरा ध्वंसात्मक न होकर निर्माणात्मक भी है। इस प्रकार वह वर्तमान और भविष्य दोनों के प्रति एक प्रबल आस्था की स्थापना करता है। ऐसी आस्था, जो मानव-मानव के बीच खड़ी वैषम्य की दीवारों को ढहा कर व्यापक विश्व-शांति में विश्वास रखती है। अपने इस उद्देश्य में उपन्यासकार पूर्णतया सफल सिद्ध हुआ है, अतएव वह बधाई का पात्र है।

किशोरीरमण टण्डन

बम्बई,
विजयादशमी,
१४ अक्टूबर '५६

इस उपन्यास में जिन पात्रों और चरित्रों का चित्रण किया गया है, वे सभी कल्पित हैं; उनका सम्बन्ध किसी वास्तविक व्यक्ति से जोड़ने का प्रयत्न न किया जाय।

१

एक दिन...

रफ़िया दादर मेन रोड पर दलजीत स्टूडियो के समीप फ़िल्म एक्सट्रा यूनियन के आफ़िस के बाहर बिजली के खम्भे से लगी अपनी सहेली रज़िया से बातें कर रही थी कि इतने में नवभारत प्रोडक्शन का असिस्टेंट डाइरेक्टर भट्टाचारिया दौड़ा-दौड़ा उसके पास आया और कहने लगा—

"सेठ तुम्हें बुलाते हैं।"

रफ़िया ने हाथ हिलाकर मानो सारे मामले को अपने दिमाग़ से निकालते ए कहा—

"जाओ, जाओ, तुम्हारे सेठ दस बार बुलाकर भी काम नहीं देते। मैं नहीं आऊँगी।" भट्टाचारिया की दौड़ते-दौड़ते सांस फूल गयी थी, हालांकि नवभारत प्रोडक्शन का दफ़्तर यहाँ से पचास-साठ गज से अधिक दूर न था, फिर भी वह हांफ रहा था। उसने कांपती हुई आवाज़ में कहा—

"नहीं रफ़िया, अभी थोड़ी देर में नाचनेवाली लड़कियों की ट्राई होगी। अभी फैसला हो जाएगा। रात को शूटिंग है। पांच लड़कियाँ हैं, एक और चाहिए। तुम चली चलो नहीं तो... !"

भट्टाचारिया ने रफ़िया की ओर देखा, रफ़िया ने रज़िया की तरफ़ देखा, रज़िया ने अपनी सुनहरी घड़ी की ओर देखा और फिर रफ़िया से मिन्नत करते हुए कहा—

"तू चली जा, मेरी तो आज अपने दिलदार के साथ जुहू पर अपाइंटमेन्ट है।"

"हाँ, हाँ," रफ़िया चमक कर बोली, "तू जा जुहू पर ऐश करने।"

रज़िया ने कहा—"तू भी ऐश कर सकती है, किसी को दिलदार बना ले।"

"वे मेरे छः दिलदार घर पर बैठे हैं, अहमद अली रोड पर, उनका क्या करूँगी फिर ? दिन भर पेट पर हाथ रखे कुतिया के पिल्लों की तरह च्याऊं-च्याऊं करते रहते हैं। एक मेरा दिलदार वह सेठ हाजी यामीनभाई लूमड़भाई है—मालिक मकान, जिसका चार महीने का किराया मुझे देना है। एक मेरा चाहने वाला धीरूभाई मखानी है, जिसकी दूकान से मैं राशन लाती हूँ। एक है मेरा चाहने वाला रेलवे

कम्पनी का वह क्लर्क, जिसके पास हर महीने मुझे लोकल ट्रेन के पास के रुपये जमा कराने पड़ते हैं। एक मेरा चाहने वाला....।" रफ़िया बोली।

भट्टाचारिया ने अपनी चपटी नाक पर मोटे-मोटे शीशों वाली ऐनक ठीक की और गिड़गिड़ाते हुए बोला—

"रफ़िया बाई, रफ़िया बाई।"

"हाँ भाई ?"

"सेठ बुलाता है।" भट्टाचारिया ने बड़ी नम्रता से नवभारत प्रोडक्शन की बिल्डिंग की ओर संकेत करके कहा।

"अच्छा चल।" रफ़िया ने भट्टाचारिया की मानो प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा। फिर रज़िया की ओर मुड़ कर बोली—

"कल मिलोगी न बहन ?"

"हाँ"—रज़िया ने अपनी सोने की लाकिट को अपने साफ़-सुथरे सुनहरे सीने पर घुमाते हुए कहा।

"कहाँ ?"

"यहीं....छः बजे शाम को, इसी बिजली के खम्भे के नीचे—अच्छा बाई बाई !"

रफ़िया तेज़ी से नवभारत प्रोडक्शन के दफ़्तर की ओर चलने लगी। भट्टाचारिया की साँस यद्यपि फूली जा रही थी फिर भी वह जल्दी-जल्दी किसी न किसी तरह कदम बढ़ाए रफ़िया के साथ चल रहा था और चलते हुए, हाथ जोड़ते हुए, घिघियाते हुए उससे कह रहा था—

"रफ़िया बाई, तुम कहाँ फिल्म में आ गयीं ? चेहरे से तुम कितनी नेक मालूम होती हो। यह लाइन तुम्हारे लिए ठीक नहीं है। अब यदि आ गयी हो तो इन सिंधियों, पंजाबियों, गुजरातियों के साथ काम न करना। करना—केवल बंगाली डाइरेक्टरों के साथ काम। बंगाली लोग बड़े कल्चर्ड होते हैं। हमारा बंगाल, हमारा टैगोर, हमारा देवकी बोस, हमारा न्यू थियेटर्स। यहाँ मैंने नितीन बोस से तुम्हारा बात किया है।"

भट्टाचारिया ने रफ़िया की ओर इस प्रकार ललचाई दृष्टि से देखा, जैसे बच्चा अपने जन्म दिन के केक की ओर देखता है। वह कुछ और कहनेवाला था कि इतने में नवभारत प्रोडक्शन का दफ़्तर आ गया और रफ़िया जल्दी से भीतर जाकर बड़े हाल में एक कुर्सी पर बैठ गयी। उसके सामने पांच और लड़कियाँ बैठी थीं। कदाचित उसकी तरह डान्स की ट्राई देने आयीं थीं। वह उनमें से तीन को नहीं जानती थी। दो से रफ़िया का साधारण परिचय था। रफ़िया ने हाथ ऊपर उठा कर उन्हें आदाब किया। उन दोनों ने बड़ी अदा और बड़े नखरे से आदाब का जवाब दिया;

२

सेठ बैताल भाई बांकड़िया

प्लाईवुड और कांच का द्वार एक केबिन के भीतर खुलता था। यह द्वार इस केबिन में कुछ इस तरह से फिट था कि इस हाल में बैठने वाले को इस केबिन में बैठनेवाले का केवल धड़ दिखाई देता था और उस द्वार से ऊपर झाँकने वाले को केवल धड़ से ऊपर का अंग दिखाई दे सकता था। यह द्वार लम्बाई में इतना छोटा था कि इसके ऊपर और इसके नीचे, दोनों जगह से देखा जा सकता था। दूसरे शब्दों में यह द्वार न था, लकड़ी का निकर था। जुहू के तट पर नहाने वाली औरतों के तैरने का लिबास था, जिसमें से दिखाई अधिक देता है और छुपाया कम जाता है।

रफ़िया जो हाल में एक कुर्सी पर बैठी थी, प्लाईवुड के केबिन में एक मेज़ के नीचे बहुत-सी टाँगों का समूह देख रही थी। भट्टाचारिया जो केबिन के द्वार से लगा खड़ा था, उन टाँगों से ऊपर के शरीरों को देख रहा था, जो इस समय रमी जैसे मनोरंजक खेल में व्यस्त दिखाई देते थे। किन्तु भट्टाचारिया जानता था कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति के कान एक कोने में पड़े हुए टेलीफ़ोन पर लगे हुए हैं, जहाँ अभी अभी सेठ भगतलाल का कॉल आया था। भट्टाचारिया ने रमी खेलने वालों पर दृष्टि दौड़ायी। उनमें से सबसे प्रमुख फ़िल्म-प्रोड्यूसर सेठ बैताल भाई बाँकड़िया थे। गौर वर्ण, ऊँचा कद, स्थूलकाय, प्रसन्न मुद्रा, सिर के बाल एकदम सफ़ेद। हाथों में हीरे की तीन-तीन अंगूठियाँ पहने हुए, सबसे कम चिन्तित दिखाई देते थे। सेठ बैताल भाई को युद्ध के दिनों में फ़िल्मों के लाइसेन्स के लिए ब्लैक मार्केट से लाख सवा लाख रुपया मिल जाता था। बस गवर्नमेन्ट आफ़ इण्डिया से फ़िल्म बनाने का एक लाइसेन्स ले आइए और ब्लैक मार्केट में बेच दीजिए; घर बैठे सवा लाख रुपया मिल जाएगा। सेठ बैताल भाई अब तक कोई बहत्तर फ़िल्में बना चुके थे। युद्ध से पहले हर मास लगभग एक फ़िल्म तैयार कर लेते थे। बारह लाइसेन्स यूँ ही आ गये, फिर उनके पास तीन स्टूडियो थे। चार-चार पिक्चरों के लाइसेन्स उन स्टूडियो के हिस्सों में भी आ गये।

बारह लाइसेन्स यह हो गये। चौबीस लाइसेन्स यदि वह बाज़ार में बेचते तो हर वर्ष मज़े में बैठे-बिठाए तीस लाख की आमदनी हो जाती। किन्तु सेठ इतने लालची न थे, उन्हें जनता का भी ख़याल था। तीन स्टूडियो में जो लोग काम कर रहे थे, उनके परिवारों का भी उन्हें ख़्याल था। इसलिए वह वर्ष में केवल बारह लाइसेन्स काले-बाज़ार में बेचते थे और बारह तस्वीरें

बनाते थे। उनसे जो लाभ होता, उसकी वह एक पाई भी फ़िल्म में नहीं लगाते थे। उससे भूमि मोल ले लेते थे, बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें बनवाते थे; टाटा फौलाद के शेयर, रुई के मिल की एजेन्सी, शक्कर मिल की पार्टनरशिप अर्थात् जहाँ भी पूँजी अधिक सुरक्षित समझते, वहाँ अपना यह नफ़ा लगा देते थे। और यह बात उन्हें उनकी मैडम समझाती थीं। मैडम उनकी पत्नी न थीं। उनकी पत्नी तो कालबादेवी रोड में एक छोटे से फ़्लैट में अपने पाँच बच्चों के संग रहती थी। मैडम उनकी रखैल थीं, उनकी प्रेमिका थीं। और जब मैडम ने उनके कारोबार में दिलचस्पी लेनी आरम्भ कर दी, वह उनकी बुद्धि, उनका विवेक भी थीं। सेठ बैताल भाई बाँकड़िया अब अपनी बुद्धि का प्रयोग केवल विशेष अवसरों पर किया करते थे; क्योंकि पूँजी के विकास में बुद्धि की आवश्यकता केवल एक हद तक ही होती है। इस हद से गुज़र जाने के बाद पूँजी स्वयं ही बढ़ती रहती है। फिर पूँजी और लाभ की अपनी बुद्धि भी काम करने लगती है, जो स्वयं एक कलदार मशीन की भाँति काम करती रहती है। सेठ बैताल भाई बाँकड़िया की पूँजी जब पचास लाख से ऊपर चली गयी, तो उन्होंने भी पूँजी की इस बुद्धि से काम लेना आरम्भ कर दिया। इतनी बड़ी पूँजी बर्फ़ के गोले के समान होती है। ज्यों-ज्यों घुमाते जाइए, वह स्वयं बर्फ़ के गोले की भाँति बड़ी होती जाती है और अपने चारों ओर का रुपया समेटती चली जाती है।

सेठ बैताल भाई बाँकड़िया ने पूँजी को लाभ की इस ऊँची मंज़िल पर पहुँचा कर स्वयं हाथ खींच लिया था और कारोबार अधिकतर मैडम को सौंप दिया था। वह इस समय अत्यन्त प्रसन्नचित्त और निश्चिन्त बैठे हुए रमी में हार रहे थे और मैडम की प्रतीक्षा कर रहे थे, जो लाला भगतलाल डिस्ट्रीब्यूटर को लाने गयी हुई थीं। भट्टाचारिया की दृष्टि मैडम की कुर्सी पर गयी जहाँ इस समय बाँकड़िया सेठ का नया फिल्म डाइरेक्टर अकरम मेज़ पर उंकड़ूं बैठा हुआ बड़े उदास भाव से रमी खेल रहा था। उसके चेहरे से लगता था कि उसे इस खेल में तनिक भी आकर्षण नहीं है, केवल समय काटने के लिए यहाँ बैठा है। और यह सच भी था कि अकरम का मन इस समय ताश के पत्तों में न था। वह भी लाला भगतलाल डिस्ट्रीब्यूटर की प्रतीक्षा कर रहा था, क्योंकि सेठ बाँकड़िया ने उससे वायदा किया था कि लाला भगतलाल के आते ही वह उसे उसकी नई पिक्चर के लिए एक हज़ार रुपये दे देगा।

अकरम को सेठ बैताल भाई ने एक राष्ट्रीय फ़िल्म बनाने के लिए नौकर रखा था, क्योंकि अकरम फ़िल्मी क्षेत्रों में सोशलिस्ट समझा जाता था। वह वास्तव में फ़िल्म इण्डस्ट्री में हीरो बनने के लिए आया था। मंझोलाक़द, सुन्दर किताबी चेहरा, चौड़ा मस्तक और घुंघराले बाल उसे किसी भी फ़िल्म का हीरो

बना देने के लिए काफ़ी थे। फ़िल्म इण्डस्ट्री में आने से पहले वह उर्दू शायरी के क्षेत्र में भी एक विशेष स्थान प्राप्त कर चुका था। इसलिए जब वह फ़िल्म इण्डस्ट्री में आया तो शुरू-शुरू में उसकी बहुत आवभगत हुई। वह दो फिल्मों का दो बार हीरो भी बना, किन्तु अभिनय में उसे रस नहीं आया। यहाँ जिस प्रकार के नाटकीय अभिनय की माँग थी, वह उससे हो नहीं सका और जिस प्रकार का स्वाभाविक अभिनय वह करना पसन्द करता था, उसे यहाँ के फ़िल्म डाइरेक्टर अभिनय न समझते थे। फिर अभिनय छोड़कर उसने गीत लिखे, संवाद लिखे, कहानियाँ लिखीं, तीन-चार फ़िल्में भी डाइरेक्ट कर डालीं; किन्तु उन फिल्मों में वही मुसीबत थी। यह फिल्में आम रास्ते से हट कर थीं। उनमें न बाज़ारू गाने थे, नाच तो बिल्कुल नहीं थे। वे हू-हा वाली कामेडियाँ भी न थीं। उन फ़िल्मों में कोई मसखरा अपनी तोंद हिला के हंसाता न था। न कोई कामेडियन हिटलर जैसी मूंछे लगाए आधी उर्दू आधी अंग्रेज़ी बोलता था। उन फ़िल्मों का वातावरण ऐसा फीका और खिचड़ू था जैसे भारत में रहने वाले करोड़ों किसानों और निर्धन मज़दूरों का होता है। पात्र बड़े साधारण, विषय नीरस—नित्य के जीवन की कठिनाइयाँ और विषमताएँ, सेट असुन्दर। फिल्म देखने वाले तो दो ही दिन में चकरा गये और तस्वीरें फेल हो गयीं। और वह जो सुन्दर था, स्वस्थ था, जो कवि की भावुकता और सुधारक का सामाजिक दृष्टिकोण लेकर आया था, युद्ध के अन्तिम चार वर्षों में पिचक कर रह गया। इस समय उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, उसकी पतलून पर मैल के धब्बे थे और दूर से दिखाई न देने वाले टाँके थे, जिन्हें उसकी स्नेहमयी बहन ने बड़े परिश्रम से लगाया था। सेठ बैताल भाई बाँकड़िया कुछ ऐसा सोच रहे थे, कि युद्ध के पश्चात् कुछ राष्ट्रीय फ़िल्मों का दौर आएगा। इसलिए उन्होंने पहले ही सोच समझ कर अकरम को अपने पास दो वर्ष के कान्ट्रैक्ट पर रख लिया था। किन्तु अब वह अकरम की पिक्चर आरम्भ करने में बड़े हिचकिचा रहे थे। जाने चले, जाने न चले। इस देश में जहाँ दो आने के लाभ के लिए लोग अपने देश से विश्वासघात कर बैठते हैं, वहां राष्ट्रीय विषय पर बनाई जाने वाली कोई पिक्चर चलेगी भी कि नहीं....कि उसका अंजाम भी उन तस्वीरों जैसा होगा, जो अकरम ने उससे पहले बनायीं थीं। सेठ छः मास से कोई निश्चय न कर पाये थे। अकरम की पिक्चर आरम्भ नहीं हो रही थी और अकरम परेशान था। यद्यपि उसके पास दो वर्ष का कान्ट्रैक्ट था किन्तु जिस डाइरेक्टर के पास पिक्चर न हो उसके कान्ट्रैक्ट का क्या मूल्य होता है, यह अकरम इन चार वर्षों में खूब समझ चुका था। देखिए आज भाग्य क्या रंग लाता है! आज सेठ ने पिक्चर आरम्भ करने के लिए उससे एक हज़ार के चेक का वायदा जो किया है।

भट्टाचारिया खूब जानता था कि अकरम के दिल और दिमाग पर क्या बीत रही है। किन्तु उसे यह भी मालूम था कि उसके अपने फिल्म डाइरेक्टर जोशी भी इसी चेक की प्रतीक्षा में बैठे हुए रमी खेल रहे थे। जोशीजी बड़े मजे हुए फ़िल्म डाइरेक्टर थे। उनकी फ़िल्म ढोलकी, डाली, डमडम, 'डं-डा-डं-डा, डा' जनता में अत्यन्त लोकप्रिय हो चुकी थी। जोशीजी की हर फ़िल्म डाली से आरम्भ होती थी और वह अपनी फ़िल्मों में स्त्री के शरीर के प्रदर्शन के बहुत अधिक कायल थे। स्त्री के केश, स्त्री की आँखें, स्त्री का वक्ष, स्त्री की बाहें, उसकी पिण्डलियाँ, सभी प्रदर्शन के योग्य थे। उनका वश नही चलता था, नहीं तो वह औरत को निर्वसना ही फिल्म पर लाते।

३

फ़िल्म का नाम 'डम्फू'

"क्या करूँ सेठ ?" जोशीजी ने दुग्गी उठाकर रंग बनाते हुए कहा : "सेंसर की कैंची से डर लगता है। वरना ऐसी फिल्म बनाऊँ कि क़यामत तक न उतरे।"

सेठ बैताल भाई ने व्हिस्की की एक चुस्की लेते हुए कहा : "मगर जोशी जी तुमने अपनी नयी पिक्चर का नाम क्या सोचा है ?"

"नाम ? नाम ?" जोशीजी ने मेज पर मुक्का मार कर कहा : "अरे नाम ? अरे सेठ, वह डम्फू नाम दूंगा, वह डम्फू नाम दूंगा।" फिर यकायक रुक कर अपने गंजे सर पर हाथ फेर कर बोले : "अरे सेठ ! यह 'डम्फू' नाम खुद कैसा है ? ढोलकी डाली, डम डम, डडां डडां डां और डम्फू।"

"डम्फू का मतलब क्या है ?" अकरम ने जरा विचित्र मुद्रा से पूछा, जिसमें कुछ थोड़ी सी व्यंगोक्ति भी शामिल थी "यह डम्फू किस ज़बान का लफ़्ज है ?"

"किसी जबान का भी हो, अपने को इससे क्या है?" जोशीजी गरज कर बोले, "मगर अच्छा लगता है कि नहीं। बोलते वक़्त मुँह भरता है कि नहीं। 'डम्फू' ज़रा बोल के देखो ऐसा मालूम होता है कि किसी ने मुँह में गुब्बारा रख दिया। 'डम्फू ! ! !' वाह वाह मेरे यार !"

जोशीजी ने खुद अपनी पीठ को थपकी दी।

भट्टाचारिया ज़ोर से बोला : "वाह वाह जोशी जी, क्या नाम सूझा है, डम्फू एक दम नया ! एक दम ओरिजिनल !! एक दम बंगाली !!!" मेज़ पर डांस डाइरेक्टर बाबूलाल भी बैठा था। उसने अपनी आँखों में सुरमा लगा रखा था और कनपटियों पर लम्बी लम्बी कलमें बढ़ा रखी थीं। उसका चेहरा एक ऐसे खुजलीवाले कुत्ते की तरह लम्बोतरा और पिचका हुआ था, जैसे शायद छः महीने से कभी पेट भरकर खाना न मिला हो। मगर यह बात नहीं थी। बाबूलाल फ़िल्मी व्यवसाय के नर्तकों में सबसे उम्दा और बढ़िया नर्तक माना जाता था। वह एक उम्दा फ़्लैट में रहता था। एक उम्दा कार में घूमता था। एक उम्दा छोकरी को अपने साथ रखता था। कारें और औरतें बदलने में उसे कमाल हासिल था। वह बड़े फख्र से कहा करता था कि वह दुनिया की हर कौम की औरत के साथ रह चुका है। ऐसा कोई रोग नहीं था जो उसे न हुआ हो। उसका चेहरा उन्हीं रोगों का जीता जागता तमगा था। 'डम्फू', फिर वह भी उछल पड़ा और जोशी जी से हाथ मिलाते हुए कहने लगा :

'डम्फू, डम्फू

भम्फू, भम्फू

घमघमाघम, घमघमाघम

डम्फू ! ! !'

ताली से नृत्य का भाव बता कर उसने कहा : "ऐसी ऐसी धुनें उस पर दूंगा कि हालीवुड चकरा के रह जाये सेठ ! डम्फू बहुत उम्दा नाम है।"

अब मेज पर सिर्फ एक आदमी ख़ामोश था। बजनदत्त मौसिकार—यानी म्युज़िक डाइरेक्टर। बजनदत्त की समझदार आँखें कह रही थी और अकरम जानता था कि उसे यह नाम पसन्द नहीं है। बजनदत्त हिन्दुस्तानी फिल्म इंडस्ट्रीज में आने से पहले लोक-संगीत के पारगतों में गिना जाता था। उसने गाँव-गाँव घूम के कोई दो हजार से ज़्यादा लोकगीत और सैकड़ों धुनें जमा की थी। जब वह फिल्म इण्डस्ट्री में आया था तो अकरम की तरह एक आदर्श, एक सपना, एक राष्ट्रीयदर्शन, एक सामाजिक ध्येय, एक नया दृष्टिकोण लेकर आया था। २० तस्वीरों में काम करने के बाद भी उसके दिल की चिनगारी रोशन थी, मगर चाँदी के ढ़ेरों तले दबी थी; क्योंकि उसने कामयाबी के लिये लोक-धुनों में भद्दे और बाज़ारू गीत-बाँधे थे। वे धुनें जिनमें उसके देश के किसानों ने गेहूँ की फसल बोई थी, धान के खोसे लहराये थे। वे धुनें जो कुँवारियों के लिए दुलहिन की डोली और माँ की लोरी के लिए पालने थे। आज क़साइयों की तरह कूल्हों का गोश्त, कमर का ख़म,

और पिंडलियों की कसावट बेच रहे थे। बजनदत्त को मालूम था कि वह फ़िल्म इण्डस्ट्री में नहीं किसी बूचड़खाने में आ घुसा है। मगर यहाँ उसे क़ौमी संगीत की साधना करने के लिए ५० हज़ार रुपये मिल रहे थे और फ़िल्म से बाहर कोई उसे पाँच सौ भी देने को तैयार न था। इसलिए बहुत अरसा हुआ बजनदत्त ने सोच समझकर आँखें बन्द कर ली, अपने दिमाग़ को ताला लगा दिया, अपने समाजी आदर्श को मानों गहरी चाँदी की भभूत में छिपा दिया और खुद हाथ में हारमोनियम का खंजर लेकर उन लोक-धुनों की हत्या करने बैठ गया; जिन्हें उसने अपनी जवानी के सुन्दरतम काल में इस उत्साह से इकट्ठा किया था।

बजनदत्त ने व्हिस्की का एक बहुत बड़ा पेग एक ही साँस में हलक़ में उड़ेल लिया और आँखें नीची करके बोला, क्योंकि अकरम उसकी तरफ़ देख रहा था, "सेठ सारा छे, बहुत उम्दा है, चलेगा।"

सेठ बैताल भाई बाँकड़िया ने खुश होकर जोशीजी की तरफ़ देखा फिर भट्टाचारिया की तरफ़ देखकर कहने लगा : "भट्टा, कल पब्लिसिटी मैनेजर से कह दे कि वह जोशीजी की नयी फिल्म 'डम्फू' का इश्तहार दे दे। फिल्म-न्यूज़ में पूरा सफ़ा बुक कर दे।"

अकरम ने शर्म से सर झुका लिया। क्या वह कोई और काम नहीं कर सकता, क्या वह कहीं भागकर नहीं जा सकता, क्या वह ईंटें नहीं ढो सकता, क्या वह कुलीगीरी नहीं कर सकता, क्या वह रुई की मिल में मज़दूरी नहीं कर सकता, क्या वह डक पर जहाज़ियों का काम नहीं कर सकता, क्या वह....? एकाएक अकरम ने महसूस किया कि वह उनमें से कोई काम नहीं कर सकता। वह एकाएक एड़ियाँ रगड़कर खामोश हो गया और एक पत्ता उठाने लगा। जोकर! जोकर था, जो उसी पर हँस रहा था। ताश का पत्ता। ज़िन्दगी के एकान्त की तरह उस पर हँस रहा था। एकाएक अकरम ने ताश मेज़ पर फेंक दी और कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

सेठ बैताल भाई घबरा कर उसकी तरफ़ देखने लगा। अकरम ने कहा, "कुछ नहीं सेठ, सर में दर्द हो रहा है।" अकरम यह कह कर केबिन की उस तरफ़ की खिड़की में चला गया जो बाहर बाज़ार की तरफ़ खुलती थी। उस खिड़की में से वह बाज़ार का नाका देख सकता था। ईरानी की दूकान, फिल्म एक्स्ट्राओं से भरी पड़ी थी। पानवाले की दूकान पर तीन जनखे खड़े पान खा रहे थे और चन्द बेफ़िक्रे उनके गिर्द खड़े हँस रहे थे। सड़क के पार पुरानी मोटर के पुर्ज़े बेचनेवाला बचनसिंह अपनी खाट पर बैठा बैठा ऊँघ रहा था। टेलीफ़ोन के खम्भे के तारों पर कौवे बठे थे। उनसे ऊपर आसमान बेहद गँदला और धुंधला था और उस आसमान

के बदबूदार वातावरण में एक पीला, बदनुमा वाला चाँद, एक जली हुई रोटी की तरह नज़र आ रहा था।

अकरम ने ज़ोर से अपनी मुट्ठियाँ भींच लीं। वह जाये तो कहाँ जाये? खिड़की से वापस चला आया। बैताल भाई ने उसके गिलास की तरफ़ इशारा करके कहा—"तुम्हारा गिलास उसी तरह भरा पड़ा है।"

अकरम फिर कुर्सी पर बैठ कर व्हिस्की पीने लगा। व्हिस्की! तीखी! ज़िन्दगी की तरह, नाकामी की तरह, उसके घुटे हुए कमरे की तरह, अच्छी फ़िल्म के खाली हाल की तरह, प्रेयसी के आख़िरी इनकार की तरह, मौत की अन्तिम घड़ियों की तरह! क्या इतने सारे तीखेपन से व्हिस्की का एक घूंट होता है? मगर लोग तो कहते हैं इसमें नशा होता है।

आज नशा कहाँ है?

झुँझला के अकरम उठ खड़ा हुआ। ऐन उसी वक़्त प्लाईवुड के दर्वाज़े की नंगी औरत अपनी जगह से हिली। करीब आती हुई मालूम हुई। दर्वाज़ा खुला और सेठ भगतलाल डिस्ट्रीब्यूटर कुछ इस शान और रोब से दाखिल हुआ कि लोग अपनी कुर्सियों से खड़े हो गये।

४

बाक़ी बचे चार सौ

सेठ भगतलाल का चेहरा इस क़दर गोल था गोया मालूम होता था किसी ने परकार रख कर दायरा खींच दिया है। उसके चेहरे के नीचे का हिस्सा यानी सीना, कमर और पेट भी मोटापे की वजह से इस क़दर गोल थे कि उसके चेहरे और पेट को देख कर यों महसूस होता था जैसे किसी ने एक बड़े दायरे के ऊपर एक छोटा दायरा रख दिया है। अगर सेठ भगतलाल ज्योमेट्री का ही मजमूआ होते तो खैरियत थी, मगर वह तो इसके अलावा कुछ और भी थे। वह उत्तर भारत के सबसे बड़े डिस्ट्रीब्यूटर थे। तन व शान में ही नहीं दौलत की दृष्टि से भी वह सबसे बड़े थे। लखनऊ में रहते थे। साल में चार बार बम्बई आते थे और जब आते थे तो प्रोड्यूसर लोग शहद की मक्खियों की तरह उनसे चिमट जाते थे। इस वक़्त भी जब वह अन्दर आये तो दो-चार मुसाहिबों को साथ ले आये। एक तो उनमें से जो नाटा-सा दुबले कद और बिल्ली की-सी आँखोंवाला आदमी था, वह फतेहचन्द

था जो अमृतसर का एक एक्ज़िबिटर था। अमृतसर का सबसे उम्दा सिनेमा घर उसका था। दूसरा वह जो काले रंग का, ऊँचे दाँतोंवाला, निहायत ही स्याह बालों-वाला, जिसने बहुत ज्यादा तेल चुपड़ रखा था, वह चोरघड़े था। चोरघड़े के दो सिनेमा तो अहमदाबाद में थे, एक नासिक में और एक राजकोट में। वह गुजरात का मशहूर एक्जिबिटर था। चोरघड़े के साथ एक दुबला-पतला धोती पहने हुए मारवाड़ी था। भट्टा ने उसे पहचान लिया यह सेठ अमरचन्द थे। जयपुर में उनके तीन सिनेमा थे। इसके अलावा वह काली मिरचों का व्यापार भी करते थे। यह भट्टा को इसलिए मालूम था कि सेठ अमरचन्द ने एक दफ़ा उसके साथ व्हिस्की पीते हुए खुद बताया था कि जब उन्हें काली मिरचों के व्यापार में ज्यादा फ़ायदा होता है तो वह अच्छी पिक्चरे हासिल करके अपने सिनेमा घरों में चलाते और जब नुकसान होता है या कम फायदा होता है तो स्टण्ट या देवी-देवताओं के किस्सों-वाली तस्वीरें हासिल करते हैं। अगर आज वह जोशीजी की पिक्चर लेने आये हैं तो उसका मतलब है भट्टा ने सोचा कि उनका काली मिरचोंवाला व्यापार अच्छा चल रहा है और अगर वह अकरम की तस्वीर लेकर जाते हैं तो समझ लो काली मिरचों का व्यापार मन्दा है।

इस छोटे केबिन में इतनी कुर्सियाँ न थीं कि सब लोग वहाँ बैठ सकते। गो सब लोग उठ कर खड़े थे फिर भी सेठ भगतलाल ने यहाँ बैठना मुनासिब न समझा। वह बैताल भाई बाँकड़िया को लेकर साथवाले केबिन में चले गये जो मैडम का केबिन था। मैडम के केबिन में जाते ही बैताल भाई को मैडम की याद आयी। बोले : "मैडम कहां है ?" सेठ भगतलाल ने मुस्करा के कहा : "वह तो अपनी सहेली राजलता के यहां गयी हैं। मुझसे कहा, आप उन्हें यहाँ टेलीफ़ोन कर दें अगर कोई काम हो।"

बैताल भाई ने कहा : "चेक ?"

"अभी देता हूँ।" यह कहकर सेठ भगतलाल ने चोरघड़े को अन्दर बुलाया। एक क्षण बैताल भाई की तरफ़ देखा, फिर चोरघड़े को लेकर "एक के लिए साफ करना" कह कर वह उसे सबसे अन्दर के केबिन में ले गया, जो मैडम के केबिन से मिलता था, जिसमें सेठ बैताल भाई बैठे थे।

अन्दर जाकर भगतलाल ने चोरघड़े से कहा : "अरे यार ! मुझे यहां आते याद आया, बैताल भाई को एक हज़ार रुपया देना है, नक़द। तुम उस रक़म में से दे दो।"

चोरघड़े बोला : "जोशी जी की तस्वीर पर दूँगा।"

"अच्छा, अच्छा।" भगतलाल बेसब्री से बोले। चोरघड़े पहले ही से एक हजार की रक़म लेकर आया था। वह यह सब बातें खूब जानता था कि कैसे बात होगी।

उसने आहिस्ता से नौ सौ के नोट गिन के भगतलाल को दिये और दस के पाँच नोट गिन कर दिये।

भगतलाल ने कहा : "यह तो कुल नौ सौ पचास हुए।"

"पचास व्हिस्की के लिए रख लिये।" चोरघड़े ने मुस्करा कर कहा। "नहीं पियोगे क्या ? अभी तो रात जवान है और हाँ...." यह कह कर चोरघड़े ने फ़ौरन जेब से हज़ार रुपये की टाइप शुदा रसीद निकाली और फाउन्टेनपेन भगतलाल के आगे बढ़ा दिया। भगतलाल ने एक हजार की रसीद पर दस्तख़त कर दिये। और नौ सौ पचास के नोट अपनी जेब में डाल लिये। उसके बाद उसने चोरघड़े से कहा : "ज़रा बाहर जाकर बैताल भाई को यहाँ भेज दो।"

बैताल भाई अन्दर आया। सेठ भगतलाल ने उसे साढ़े आठ सौ रुपये दिये।

बैताल भाई ने नोट गिनकर कहा : "मगर यह तो साढ़े आठ सौ ही हैं सेठ ! तुमने तो एक हजार...."

सेठ भगतलाल ने बात काट कर फ़ौरन कहा : "दिल्ली से ड्राफ्ट नहीं आया है, यह तो मैं अपनी जेब से दे रहा हूँ। मैंने कहा तुम्हारी शूटिंग न रुके।" फिर उसने अपनी जेब से एक हजार की टाइपशुदा रसीद निकाली और उस पर बाँकड़िया के दस्तख़त ले लिये।

बैताल भाई ने रुपये जेब में रखे और सेठ को वहीं छोड़कर मैडम की केबिन में जोशी को बुलाकर कहने लगे। "ये साढ़े सात सौ इस वक्त मिले हैं, यह ले जाओ और इससे अभी काम चलाओ।"

जोशी ने कहा : "सेठ हज़ार का खर्चा है, साढ़े सात सौ में कैसे चलेगा ?"

"अभी चलाओ न", बैताल भाई ने जोशी को आँख मार कर कहा, "कल परसों तक और करता हूँ।"

जोशी ने रुपये जेब में डालते हुए कहा : "ऐसे कैसे चलेगा सेठ, वह जो तिजोरी में रुपया रखा है सेठ, उसे हवा लगाओ न !"

"अरे किधर है रुपया आज कल ?" बांकड़िया सेठ बुरा-सा मुँह बनाकर बोले : 'भगतलाल ने साढ़े सात सौ दे के हज़ार की रसीद ले ली है मुझसे। यह कोई अन्धे का ज़माना है, अब मैं हज़ार रुपया किधर से पूरा करूँ ? अच्छा, तू भी इस हज़ार की रसीद पर दस्तख़त कर दे।"

जोशी जी ने चुपके से रसीद पर दस्तख़त कर दिये। बाहर की केबिन में आकर जोशी ने भट्टा को आँख मारी। भट्टा और वह दोनों चुपके केबिन से खिसक गये।

उनका ख्याल था जैसे किसी को मालूम नहीं है क्या हो रहा है। हालाँकि सब जानते थे। वे जो रमी खेल रहे थे, बज़ाहिर, वे सबसे ज़्यादा जानते थे, मगर चुप थे। जोशी ने भट्टा को पांच सौ रुपये दे के कहा : "बस यही सेठ ने दिये हैं।"

"मगर ?"

जोशी ने भट्टा को आंख मार के कहा : "अगर मगर कुछ नहीं, अब इसी में काम चलाना है। हज़ार की रकम इसी में पूरी करनी होगी। एक हज़ार की रसीद भी मुझे चाहिए।"

"बहुत अच्छा जनाब, कल तक दे दूंगा।" भट्टा ने सर हिला कर बड़ी खुशी से कहा जैसे सब काम ठीक हो गया हो। उसके बाद उसने केबिन के अन्दर बैठे बाबूलाल को बुलाकर उसके हाथ में ४०० रुपये दिये और कहा : "कुल साढ़े चार सौ मिले हैं उसमें पचास मैंने शूटिंग के लिये रख लिए हैं बाक़ी चार सौ रुपये तुम लड़कियों में बाँट दो।"

"इन्हीं चार सौ में सब कुछ !" बाबूलाल ने अर्थपूर्ण निगाहों से भट्टाचारिया की तरफ़ देख कर कहा।

"जी हाँ, यही नहीं बल्कि एक हज़ार की रसीद में भी रकम बनेगी। लड़कियाँ तो सब तुम्हारी अपनी ही हैं न ?" भट्टा ने पूछा, "उनसे ज़्यादा रकम की रसीद भी हासिल कर सकोगे ?"

बाबूलाल ने अपनी जगह से, जहाँ वह खड़ा था, हाल में बैठी हुई लड़कियों की तरफ़ नज़र दौड़ाई, बोला : "रफ़िया के सिवाय मैं सबको जानता हूँ।"

"रफ़िया को मैं ठीक कर लूंगा।" भट्टाचारिया ने मुस्करा कर कहा।

"तो फिर ठीक है।" बाबूलाल बोला, "मैं लड़कियों को मोटरों में बिठाता हूँ।"

× × ×

छः लड़कियाँ थीं, छः मर्द थे, दो मोटरों में सट कर किसी तरह बैठ गये। लड़कियों ने पहले ऊँ, आँ, हाँ की। कुछ रूखे-से कहकहे लगाये। 'हटो छोड़ो', 'मर कम्बख्त' उसके बाद सब सिलसिले से ठिकाने लग गयीं। बस एक रफ़िया थी जो सबसे अलग बैठी थी। मोटर दादर से निकली खुदादाद सर्किल पर पहुँची। तिलक ब्रिज को पार करके शिवाजी पार्क की तरफ़ घूम गयी तो पंजाबी लड़की ने, जो जगह न होने की वजह से लाला भगतलाल की गोद में बैठी थी,

उसके पेट में उँगली चुभोकर बोली : "अबे पेटल्लिये तेरे पेट में कितनी हवा है ?" सब लोग हँसने लगे। रफ़िया जलकर एक कोने में सिमटकर बैठ गयी। चोरघड़े बार बार उस पर गिरा गिरा पड़ता था और वह सिमटकर अलग हो जाती थी। बैताल भाई उस लड़की को गोद में लिए हुए थे, जो दस बरस से फ़िल्म इन्डस्ट्री में काम कर रही थी। वह बैताल भाई को ख़ूब अच्छी तरह से जानती थी। बैताल भाई और दूसरे लोग भी देख रहे थे कि चोरघड़े का मामला कुछ जम नहीं रहा है। मगर वह सब लोग ख़ामोश थे। फिर बांदरा की मस्जिद गयी, साँताक्रुज़ का स्टेशन गया। जब मोटरें कालीना की सड़क से भी आगे हो लीं तो रफ़िया ने चिल्लाकर कहा : "इधर कौन सा स्टूडियो है ?"

भगतलाल ने चोरघड़े की तरफ़ चोर निगाहों से देखा। चोरघड़े ने अपने सूखे होठों पर जबान फेरकर कहा : "इधर स्टूडियो तो कोई नहीं है, बिहार झील है।"

"बिहार झील पर हम क्या करने जा रहे हैं ?"

"वहीं तो ट्राई होगी।" एक लड़की ने हँसकर कहा।

और उसकी आवाज़ मर्द और औरतों के तेज़ कहकहों में डूब गयी।

रफ़िया ने कहा : "गाड़ी रोक दो।"

गाड़ी चलती रही।

रफ़िया ने चिल्ला के कहा : "गाड़ी रोक दो। रोक दो, नहीं तो मैं शोर मचाऊँगी।"

बाँकड़िया ने ग़ुस्से से बाबूलाल की तरफ़ देखा जो एक हाथ से गाड़ी चला रहा था और दूसरा हाथ अपनी बगल में बैठी लड़की के ऊपर था। बाबूलाल ने अपने कंधे हिलाकर बाँकड़िया से कहा : "सेठ इसे भट्टा लाया था, कहता था मैं समझ लूँगा इससे। मुझे कुछ मालूम नहीं।" बाँकड़िया ने बाबूलाल से कहा : "गाड़ी रोक दो बाबूलाल ! बाई को जाने दो।"

रफ़िया जल्दी से दर्वाज़ा खोल कर उतर गयी। गाड़ी आगे चल दी। एक लड़की ग़ुस्से से चिल्ला कर बोली "बड़ी शरीफ़ज़ादी बनती है।" दूसरी बोली : "नयी-नयी आयी है बन्नो, चार-छः माह में जब जम के फाके लगेंगे फिर खुद-बखुद ठीक हो जायगी।" सब हँसने लगे।

गाड़ियों की आवाज़ रफ़िया से दूर होती गयी। रफ़िया की आँखों में आँसू आ गये। आज मेरे घर में कुछ नहीं है। उसे अपनी बहन के पाँच बच्चों का ख़्याल आया। तुम क्यों मर गयीं मेरी बहन ? उसने अपनी स्वर्गीया बहन को बद-दुआ दी। तुम क्यों मर गये मेरे शौहर इस जवानी में ? उसने अपने स्वर्गीय पति को बद-दुआ दी। अब कहाँ से इतने बड़े कुनबे को पालूँ ? मेरे पास तो इस जिस्म के सिवा कुछ नहीं है। और नाच भी मैंने शौकिया ही स्कूल में यों ही सीख लिया

था। मगर मालूम होता है यहाँ नाच का फन बेचने से पहले जिस्म बेचना होगा। मेरे शौहर, मेरे बाप, मेरी बहन, मेरे खुदा, मेरे कुनबेवालो, खानदानवालो मेरी बोटी-बोटी काटकर खानेवाले तुम सब पर हज़ार बार लानत !"

जब वह एक दरख्त से लग कर खूब अच्छी तरह सबको गालियाँ दे चुकी तो फिर उसने अपने आँसू पोंछ लिये। और अपने आपको समझाते हुए और कालीना की तरफ़ वापस चलते हुए अपने आप से दिल ही दिल में कहने लगी : "आज भूखी हो तो क्या है ? काम कम मिलता है तो क्या है, कभी-कभी तो मिलता है और इज्जत से मिलता है। और जब बेइज़्ज़ती से मिलता है तो तुम नहीं लेतीं। तो इसमें मर जाने की कौन-सी बात है ? एक दिन दुनिया देखेगी, दुनिया तुम्हारी क़दर करेगी। एक दिन तुम इस सारे जंजाल से निकल जाओगी। किसी तरह चालाकी से, किसी को बहला-फुसला कर एक बड़ा-सा रोल हासिल करो फिर सब ठीक हो जायगा।"

"हाँ हाँ, मैं यही करूँगी।" रफ़िया अपने दिल के अन्दर की दूसरी रफ़िया को समझाने लगी। "मैं अपनी अस्मत थोड़े बेचूँगी इन सस्ती लड़कियों की तरह। मगर मैं ज़रा चालाकी और होशियारी से काम लेकर किसी डाइरेक्टर को बनाऊँगी और उससे एक बड़ा-सा रोल लेकर उसे धता बता दूँगी। फिर जब मैं मशहूर हो जाऊँगी तब मुझे कौन हाथ लगा सकेगा ?"

रफ़िया अपनी शतरंज की चाल पर खुद ही मुस्कराने लगी। और तेज-तेज क़दमों से वापस चलने लगी।

५

दो हिरोइनें

इधर बाँकड़िया सेठ की गाड़ी विहार झील की तरफ़ गयी। उसके कुछ अर्से बाद इधर मैडम की कार नवभारत प्रोडक्शन के बाहर आकर रुकी। गाड़ी में से मैडम दो हीरोइनों को लेकर उतरी—राजलता और शमशाद। दोनों फ़िल्म इंडस्ट्री की अव्वल दर्जे की हीरोइनें सभझी जाती थीं। ज्यों ही वे गाड़ी से उतरीं, तेज़ खुशबू के झोंके, नुक्कड़ के ईरानी रेस्तोराँ तक उड़ते गये और राह चलते लोग, जो सिर्फ़ पुरानी डबल रोटी की बास, बीड़ियों की पुरानी तम्बाकू की सड़ांध, और दिन भर काढ़े की तरह उबलती हुई रेस्तोरां की गंदी चाय के स्वाद से वाक़िफ थे, एकाएक मुड़कर देखने लगे यह खुशबू किधर से आयी थी। मगर इससे पहले कि वे वे कुछ देख सकते, रेशमी लिबासों में सरसराती हुई हीरोइनें मैडम के साथ नव-

भारत प्रोडक्शन के आफ़िस में दाखिल हो गयी, जहाँ जोशीजी के केबिन में सिर्फ़ अकरम और भट्टाचारिया दो निराश हारे हुए जुआरियों की तरह बड़ी बेदिली से ताश के पत्ते फेंक रहे थे। खेल नहीं रहे थे, फेंक रहे थे। भट्टा के हाथ से रफ़िया गयी थी और अकरम के हाथ से हज़ार का चेक। इसलिए ज़िन्दगी की ताश का पत्ता चाहे वह दुग्गी हो या इक्का हो, इस वक्त अकरम और भट्टा के लिए एक-सी हैसियत रखता था। इसीलिए जब मैडम, राजलता और शमशाद को लेकर अन्दर आयी तो अकरम जान-बूझ के नहीं उठा। अगर वह लोग उसकी बेइज्ज़ती कर सकते हैं तो वह भी उनकी बेइज्ज़ती कर सकता है। ये रुपयेवाले अपने आपको क्या समझते हैं ? मगर भट्टा खड़ा हो गया। मैडम ने कुर्सी पर सर झुकाये अपने जाम में डूबे अकरम की तरफ़ देखा और समझ गयी कि क्या माजरा है! इस बेचारे को आज भी हज़ार का चेक नहीं मिला। उसने अकरम से बात भी नहीं की। वह भट्टा से मुखातिब होकर बोली : "सेठ कहाँ गये हैं ?"

"स्टुडियो।" भट्टाचारिया ने दबे लहज़े में कहा।

"हाँ वह उस नये स्टुडियो में गये हैं जो बिहार झील के किनारे तैयार हो रहा है।" अकरम ने व्हिस्की के पैग की तरफ़ बड़े ग़ौर से देख कर कहा : "साथ में ६ लड़कियाँ भी थीं।"

मैडम सब समझ गयी। मगर उसने अपने आप पर काबू पा लिया। भट्टा से पूछने लगी : "और कौन-कौन था ?"

भट्टा काँपती हुई आवाज़ में बोला : "लाला भगतलाल थे, चोरघड़े थे, बाबूलाल थे, बजनदत्त थे।"

अकरम ने गुस्से से कहा : "और अपने डाइरेक्टर जोशी जी का नाम क्यों लेते हो, जिनके बग़ैर बिहार झील का कोई प्रोग्राम पूरा नहीं हो सकता ?"

मैडम फिर अकरम से कुछ नहीं बोली। उसने अपने होठ चबाये। अपने फ़ाक़ को गर्दन के क़रीब से ठीक किया। यह मैडम की आदत थी। जब उसे गुस्सा आता, या जब वह किसी गहरे सोच में होती या जब कभी बिज़नेस में वह कोई नया दांव खेलने को होती, वह उससे पहले बिल्कुल बेअख्तियार होकर बिल्कुल सरसरी तौर पर अपने गर्दन के क़रीब से फ़ाक़ को ठीक करती थी। फ़ाक़ में कोई नुक्स हो या न हो, मगर मैडम उसे ज़रूर ठीक करेगी। यह ऐलान होता था कि मैडम को गुस्सा आया है, या संभल के बैठो नया दांव आया है।

मगर मैडम ने उस वक़्त कुछ न कहा। उसने अपने पतले बारीक सुर्ख़ होठ, एक दूसरे के नीचे ज़ोर से दबा लिये और ग़ुस्से को पीती हुई राजलता और शमशाद को लेकर अपनी केबिन में चली गयी। क्योंकि उसे अपनी अगली दोनों पिक्चरों के लिये राजलता और शमशाद से फैसला करना था। उसके अन्दर चले जाने के बाद अकरम ने एक घूँट बहुत आहिस्ता-आहिस्ता से पिया, जैसे शराब की तेज़ी हर क़तरे में से खिंच कर उसकी ज़बान पर आ रही हो।

"वाह वाह, क्या तेज़ी है, मैडम के मूड की तरह। इस वक़्त इसमें कितना ग़ुस्सा है जैसे व्हिस्की अपने दांतों से मेरी ज़बान को काट रही हो।"

भट्टाचारिया चुप था। वह भी असिस्टेन्ट डाइरेक्टर था; इसलिए अपने से बड़ों के सामने शराब भी नहीं पी सकता था। अपने से बड़ों के साथ विहार झील के जलसे में भाग न ले सकता था। कोई कैसी ही ग़लत बात क्यों न कह दे फिर भी उसका फ़र्ज़ ही यही था कि वह हर एक की हाँ में हाँ मिलाये। असिस्टेन्ट का भला और काम भी क्या हो सकता है? यों कहने और करने को तो काम बहुत से हैं लेकिन अगर असिस्टेन्ट डाइरेक्टर यह काम नहीं कर सकता तो फिर समझो वह किसी काम का नहीं।

"भट्टा!" अकरम ने अपनी आँखें भट्टाचारिया की नज़रों पर जमाते हुए कहा: "ये जो लाल और सफ़ेद औरत उस केबिन के अन्दर गयी है जिसके बाल सुनहले हैं, जिसकी दो ठोढियां हैं, जो हमेशा तंग फ़्राक़ पहनती है, जिसके हाथ में हीरे की दो अंगूठियां चमक रही हैं, यह हमारी मैडम है।"

भट्टा ने कहा: "मैं जानता हूँ।"

"तुम ख़ाक नहीं जानते, कुछ नहीं जानते, कुछ नहीं जानते।" अकरम ने इन्कार में ज़ोर से सर हिलाकर कहा—"यह हमारी मैडम है, उसका नाम मैं नहीं जानता, मगर वर्षों से लोग इसे मैडम कहते हैं इसलिए हम भी अगर इसे मैडम कहें तो क्या हर्ज़ है? यह मैडम जो है न, असल में इस फ़िल्म कम्पनी की यही मालिक है। इस दफ़्तर की प्रोप्राइटर है। इसकी बांकी ख़ूबसूरती पर न जाओ। ऊपर से वह जितनी नरम दिखाई देती है अन्दर से उतनी सख़्त है। इसके सफ़ेद मोतियों के दांतों की चमकती हुई मुस्कराहट हीरे की कनी की तरह सख़्त है। इस मुस्कराहट को आज तक कोई नहीं काट सका। बड़े-बड़े पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, और मारवाड़ी यहाँ आये मगर ख़ुद कटकर चले गये। दरअसल इस मुस्कराहट में मैडम का कोई क़सूर नहीं। कभी यह मुस्कराहट बड़ी मासूम थी, नरम थी, भोली-भाली थी; और इसमें फूल की पत्तियों की सी

नरमी और बहार की कोंपलों की सी नज़ाक़त आ जाती थी। मगर आहिस्ता-आहिस्ता यह मुस्कराहट सख़्त होती गयी। जिस रोज़ मैडम के मां-बाप मर गये और उसके चाचा ने उसे धर के पीटा, उसकी मुस्कराहट ने ऊपर से नरम रहना और अन्दर से सख़्त हो जाना सीख लिया, और जिस रोज़ उसके चाचा ने उसे छः सौ रुपये में एक सिख ड्राइवर के हाथ बेच दिया, उस रोज़ मुस्कराहट के ऊपर आँसू दौड़ने लगे, लेकिन अन्दर से यह मुस्कराहट लोहे की तरह सख़्त होती गयी। फिर जब वह सिख ड्राइवर दो साल की अय्याशी में उससे अपनी रक़म वसूल कर चुका तो उसने उसे बम्बई के एक सट्टेबाज़ के पास आठ सौ में बेच दिया तो—तो उसकी मुस्कराहट में हीरे की कनी आ गयी, समझते हो भट्टा!"

"जी!" भट्टा बड़ी नरमी से और आहिस्ता से बोला—"कहीं केबिन में मैडम न सुन ले!"

"अब उस मुस्कराहट को कोई नहीं काट सकता।" अकरम ने दोनों हाथ ज़ोर से इन्कार में पूरब से पच्छिम और पूरब-पच्छिम की तरफ़ झुला कर कहा—"अपनी छोटी सी ज़िन्दगी में मैडम ने रोकर नहीं, मुस्करा कर जीना सीख लिया है। उसे जल्द मालूम हो गया कि बम्बई में नरम दिल औरतों के लिए कोई जगह नहीं है। ख़ासतौर से ऐसी औरतों के लिए जिनका कोई घर न हो। मैडम का कोई घर नहीं है।" अकरम ने ज़ोर से चिल्ला के कहा—"तुम क्या समझते हो भट्टा? घर क्या मकान से होता है? कमरों से, टेलीफ़ोन से, रेडियोग्राम और रेफ्रीज्रेटर से होता है? घर क्या ग़लीचों, गद्दों, रोशनी के बल्बों और चीनी की प्लेटों से होता है? ये सब चीज़ें आपको एक ही बाज़ार में मिल सकती हैं, मगर घर और बाज़ार में फ़र्क़ है भाई!"

भट्टा ने कहा—"आहिस्ता बोलिए, मैडम कहीं सुन लेगी।"

"सुन ले, मैं उसे सुनाना चाहता हूँ। सारी दुनिया को बताना चाहता हूँ कि मैडम का कोई घर नहीं है; क्योंकि उसने कभी कोई घर नहीं बनाया। क्योंकि घर बनाने की कला उससे शुरू में ही छीन ली गयी थी। अब वह क्या करे—मैडम? मैडम बड़ी चालाक है। उसने सोचा—अगर वह एक घर नहीं बना सकती तो एक आफ़िस तो बना सकती है। उसने सोचा—क्या हुआ अगर उसके पास रुपया नहीं है, उसके पास हीरे जैसी सख़्त लेकिन पैनी मुस्कराहट तो है। हीरे की कनी तो फ़ौलाद को भी काट सकती है, इन्सान का दिल क्या चीज़ है? इसलिए तो मैडम ने इस मुस्कान को एक हथियार की तरह इस्तेमाल करके धीरे-धीरे आगे बढ़ना शुरू किया। हाँ—मगर इस का ध्यान रखो, शुरू-शुरू में उसे नाकामियाँ भी हुई। आगे

बढ़ना कोई खाला जी का खेल नहीं है। मगर मैडम ने सबको काट के फेंक दिया और आखिर में सेठ बाँकड़िया से मुहब्बत कराने में कामयाब हो गयी।"

"यह मुहब्बत कराना क्या होता है ?" भट्टा को ज़रा दिलचस्पी महसूस हुई, क्योंकि उसे अपनी रफ़िया याद आ रही थी।

अकरम खूब हँसा–बोला—"हँसो नहीं, मुहब्बत कराने पर हँसो नहीं, इसमें कोई बुरी बात नहीं है। आदमी अगर खुद किसी से मुहब्बत न करे, बल्कि अपनी चालाकी से उसे अपने से मुहब्बत करने पर मजबूर करे, तो उसे मुहब्बत कराना नहीं तो और क्या कहेंगे ? सेठ बाँकड़िया का ख्याल था कि उन्होंने खुद मैडम से मुहब्बत की है, हालाँकि मैडम जानती थी कि किस जतन से उसने बाँकड़िया से मुहब्बत कराई थी। इस पूरे मामले में वह बिल्कुल ठंडी रही, ऊपर से आग अन्दर से बर्फ़ ! एक रोज़ सेठ बाँकड़िया ने घुटने टेक दिये, और फिर फ़िल्म कम्पनी, यह बड़ा दफ़्तर, तीन स्टुडियो, कालीना का मकान, बहुत बड़ा बाग़, बाग से परे बेशुमार एकड़ों में फैली हुई ज़मीन सब मैडम के हिस्से में आयी। और वह जो लाहौर की रहने वाली थी और सलवार और कमीज पहनती थी, अब सिर्फ़ फ़ाक़ पहनने लगी, और वक्त बेवक्त अंग्रेज़ी बोलने पर इसरार करने लगी। देखो भट्टा ! मैडम से सबक़ सीखो। मैडम खुद इस क़दर खूबसूरत है कि चाहे तो आज हिरोइन बन सकती है, मगर मैडम को हिरोइन बनने का शौक़ नहीं है, उसे सिर्फ़ रुपया इकट्ठा करने का शौक है। अपनी छोटी सी उम्र में ही मैडम ने लाखों रुपया इकट्ठा कर लिया है, रुपये के मामले में मैडम बहुत सतर्क है, और क्यों न हो, वह मेरी तरह मूर्ख नही है, जिसने दस लाख रुपया बेकार मुल्क और क़ौम की खिदमत करने वाली तस्वीरों में गोड़ दिया। कौन चाहता है मुल्क और क़ौम की खिदमत करने वाली तस्वीरों को देखना ? लानत है मेरी अक़्ल पर। मैडम बहुत समझदार है, और क्यों न हो, ज़िन्दगी ने खुद जूते मारकर उसे समझा दिया है। वह वक़्त वह कैसे भूल सकती है, जब उसे एक बार और दो बार नहीं बल्कि बार-बार रुपयों के एवज़ बेचा गया। फिर वह चीज़ जो उसकी शख्सियत से, उसकी जात से, उसके फ़न से, उसकी अस्मत से, उसके माँ-बाप और खानदानवालों के प्यार से उसके पहले और आखिरी क्षण से ज़्यादा क़ीमती हो, वह क्यों उसे प्राणवत न समझे? वह क्यों इस रुपये की एक एक पाई को अपने सीने से न लगा के रखे ? मैडम की कन्जूसी दरअसल एक तरह से उसकी ज़िन्दगी है। वह नहीं चाहती कि वह दिन वापस आये जब कोई उसे तराज़ू में तौल सके, जैसे यह प्रोड्यूसर और फाइनान्सर लोग आज मुझे तराज़ू में तौलते है। वह नहीं चाहती कि अब फिर कोई नाकाम पिक्चरों का डाइरेक्टर उसकी तरफ़ इस निगाह से देखे जैसे क़साई किसी भी मोटी-

ताज़ी बकरी की तरफ़ देख के अन्दाज़ लगाता है कि इसमें से कितना गोश्त निकलेगा, जैसे ये लोग मेरी तरफ़ देख के अन्दाज़ लगाते हैं कि अब इसकी अक़्ल की हड्डी पर कितना गोश्त बाक़ी रह गया है और क्या अब यह कामयाब पिक्चर बना सकेगा या नहीं ? इसीलिए तो आज बाँकड़िया ने जोशी जी को चेक दे दिया। इसीलिए तो मैडम अब खुद अन्दाज़ लगाती है, खुद तौलती है और फिर बड़ी सावधानी से चेक लिखती है। जभी तो लोग कहते हैं कि मैडम की निगाहों में और उसकी मुसकान में हीरे की कनी की काट है, और कोई उसकी भावना से नहीं खेल सकता। गो इसमें भी मैडम का कोई कुसूर नहीं।" अकरम ज़रा रुक गया, ऊपर देखने लगा, एक क्षण के लिए उसकी आँखें स्वप्निल-सी हो गयीं। एक क्षण के लिए चेहरे पर एक अजीब उदासी-सी आ गयी, और वह धीरे धीरे कहने लगा—"कभी मैडम के पास भी सपने थे, सपनों से खेलने वाले फूल थे, शर्म व हया की तरह सिमटने वाली भावनाएँ थीं मगर भावना ने आहिस्ता आहिस्ता पीट पीट कर उसकी सारी शक्ति का पानी निकाल दिया। अब मैडम की आत्मा एक कमाये हुए चमड़े का टुकड़ा है, जिसके अन्दर पानी की एक बूंद भी नहीं, कहीं से दबाओ आँसुओं का एक क़तरा न निकलेगा। यह कितना बड़ा आश्चर्य है भट्टा, कि एक औरत, एक खूबसूरत औरत की आँख का पानी मर जाये मगर, यह किसी के लिये ट्रेजडी है ! समाज का चमड़ा बेचने वालों के लिए तो नहीं !"

मैडम ने एकाएक अन्दर आकर कहा—"क्या बात हो रही है ?"

"आपके बारे में इस बेचारे को लेक्चर दे रहा था मैडम !" अकरम ने व्हिस्की का आखिरी क़तरा अपने हलक़ में उतार के गिलास खाली कर दिया।

"और पियोगे ?" मैडम बग़ैर किसी मुस्कराहट के बोली। "नहीं।" अकरम ने विचित्र लहजे में कहा।

मैडम ने भट्टा से कहा—"इन्हें घर छोड़ आओ, मेरी जेगर ले जाओ।"

"और आप ?" भट्टाचारिया ने पूछा। "मैं शमशाद की गाड़ी में चली जाऊँगी।"

अकरम ने कहा—"यह कहीं नहीं जायेंगी, रात भर यहीं बैठ कर कुढ़ेंगी। जब तक इनके सेठ नहीं आते—डम्फू—डम्फू—बहुत उम्दा नाम है—मैडम—जोशी जी के पिक्चर का नाम है। अब मैं भी ऐसी ही पिक्चर बनाऊँगा। 'हरामज़ादा, हरामजादा,' कैसा नाम रहेगा यह मैडम ?"

मैडम ने भट्टा को इशारा किया, भट्टा अकरम को दोनों कन्धों से पकड़ के केबिन के बाहर ले गया। बाहर जाते-जाते अकरम अपनी उँगलियों पर गिनते-गिनते

कहने लगा, "बांकड़िया, मांकड़िया, टांकड़िया, झांकड़िया, आंकड़िया, धांकड़िया, कैसा नाम है ? दुनिया की किसी ज़बान में इसका जोड़ नहीं मिलता।"

× × ×

मैडम इसलिए बाहर नहीं आयी थी कि वह अकरम की बातें सुनने के लिए बेक़रार थी, या उसे अकरम से किसी तरह की जलन थी। दरअसल अपने केबिन के अन्दर वह जो मामला उन दोनों हिरोइनों से तय कर रही थी, उसमें एक अड़चन आ पड़ी थी। वे दोनों हिरोइनें उसकी अगली पिक्चर में काम कर रही थीं, वह चाहती तो दोनों को अलग-अलग बुला के मामला तय कर सकती थी, मगर चूंकि दोनों का काम एक ही तस्वीर में था, इकट्ठा था, और वे दोनों सहेलियाँ थीं, अव्वल दर्जे में शुमार होती थीं, इसलिए यह मुमकिन न था कि मामले की रक़म एक दूसरे से छिपी रहती। अगर वह एक को ज़्यादा और दूसरे को कम पर राज़ी कर लेती, तो एक न एक दिन यह भेद खुल जाता और फिर कम रक़म लेनेवाली हिरोइन पिक्चर के बीच में ही वह फ़साद शुरू करती....नहीं—नहीं, मैडम ने कुछ सोच के ही दोनों को इकट्ठे बुलाके दोनों से एक ही वक़्त में फैसला करने का निश्चय किया था। अब मुसीबत यह आ पड़ी थी कि दोनों हिरोइनें पचास-पचास हज़ार से कम लेने पर तैयार न थीं; और यह रक़म मैडम के बजट में आती न थी, इसलिए मैडम उठकर अपनी केबिन से जोशी जी के केबिन में आ गयी थी।

अकरम के जाने के बाद भी मैडम कुछ देर उस खाली केबिन में खड़ी सोचती रही। पहले तो उसकी भौंहें तन गयीं। भौंहें एक दूसरे से क़रीब हो गयीं, फिर दूर हो गयीं। समस्या हल हो गयी, मैडम मुस्करायी, उसने गर्दन के क़रीब अपने फ़्राक को एक झटका दिया, जोशी जी के मेज़ से ताश उठाई और अपनी केबिन में चली गयी। मैडम ने शिकार मार लिया था।

मैडम ने अन्दर जाकर पत्ते मेज़ पर फेंक कर कहा, "बस एक राउन्ड ताश का हो जाए। शर्त यह है कि अगर मैं जीत जाऊँ तो तुम दोनों को मेरी पिक्चर में एक हज़ार रुपया रोज़ पर काम करना पड़ेगा और अगर तुम दोनों में से कोई जीत जाए; तो मैं तुम दोनों को अलग-अलग इस पिक्चर का मुआवज़ा पचास हज़ार रुपया दूँगी, तय ?"

"तय !" राजलता ने शमशाद के चुटकी लेकर कहा।

"तय !" शमशाद ने भी कह दिया।

राजलता ने सोचा—"जोशी जी की पिक्चर है; एक सौ दिन से कम में वह पिक्चर नहीं बनाते; अब उन एक सौ दिनों में पचास दिन तो अपने निकलेंगे ही; और अगर न निकले तो वह सब तरक़ीब जानती है; दिन में दो शाट से ज़्यादा हो

नहीं सकते।" और मैडम ने सोचा—"मेरी बन्नो ! तुम हो किस ख्याल में; मैं तुम दोनों का काम पच्चीस दिनों में खत्म करके न रख दूँ तो मेरा नाम मैडम नहीं, पचास के पच्चीस मिलेंगे।" मैडम ने ताश फेंटी। शमशाद ने कट किया। मैडम ने तीन-तीन पत्ते हर एक को फेंके। पत्ते उठाते वक्त राजलता ने पत्तों को चूम लिया। शमशाद जल्दी में पत्तों को चूमना भूल गयी थी, इसलिए अब वह 'हाय !' कहके मुस्करा उठी, उसके पत्तों में गुलाम, बेगम और दुग्गी थी। राज के पत्तों में दो बादशाह थे। पहले शमशाद ने जल्दी से अपने पत्ते खोल के सामने रख दिये। फिर राज ने। अभी तक मैडम ने अपने पत्ते खोले न थे, राज ने दोनों हाथों से ताली बजा के कहा—"हार गयीं मैडम ! तुम हार गयीं, लाओ पचास हज़ार का कन्ट्रैक्ट बनाओ।"

मैडम ने वहीं मेज़ पर रखे हुए पत्तों को बारी-बारी सीधा किया। पहला जोकर था ! दूसरा इक्का !! तीसरा भी इक्का !!!

"हाय !" एकदम राज और शमशाद दोनों के मुँह से निकला। हालांकि एक सुबह बनारस थी, दूसरी शाम दक्कन। मगर 'हाय' दोनों में थी। हाय के बग़ैर कोई औरत पूरी नहीं होती।

मैडम ने कहा—"चलो एक हज़ार रुपया रोज़ में; ठीक है।"

अभी तक राज और शमशाद उदास थीं, दोनों कुछ नहीं बोलीं। मडम अपनी जगह से उठी, अपने पर्स को खोलकर उसने चाभियों का गुच्छा निकाला; चाभी लगाकर सेफ खोला; दो हज़ार के नोट निकाले और दोनों को एक-एक हज़ार दे के बोली—"अब ठीक है ?"

"हाँ ठीक है !" अब की दोनों ने सर हिला के कहा।

इसके बाद राज बोली शमशाद से—"चल ताज चलेगी ?"

"चलूँगी।"

"और आप मैडम ?"

"तुम जाओ।" मैडम ने कहा—"मैं सेठ का इन्तज़ार करूँगी।"

मैडम की आवाज़ में हल्की-सी थकान थी, हल्की-सी उदासी, जैसे किसी ने ज़रा-सी राख कुरेदी थी, और उसके नीचे ज़रा-सी चिनगारी और उसकी लाल ज़बान दहकती हुई, तड़पती हुई देख ली थी।

राज ने अपना निचला होंठ ज़रा-सा नीचे लटका लिया और अपनी आँखों को बड़े मासूम अन्दाज़ में मैडम से शमशाद की तरफ़ घुमाकर अपनी उँगलियों को इस तरह नचाया, जैसे वह अपने दिमाग़ से नहीं अपनी उँगलियों से सोच रही हो, और यह वास्तव में सच था। वह जब बात करती थी तो उसका चेहरा इस क़दर भोला

और मासूम मालूम होता था और उँगलियाँ इस तरह जल्दी-जल्दी हरकत करती थीं, जैसे वह सचमुच सिर्फ़ अपनी उँगलियों से सोचना जानती हो। उस वक्त भी उसने यही हरकत की। आहिस्ता-आहिस्ता बोली—"....मैडम....तो....अपने.... सेठ....का इन्तज़ार करेंगी, हम किसका इन्तज़ार करें ? चलो बहना ताज में।"

× × × ×

राज ने शमशाद का बाज़ू अपने बाज़ू में डाल लिया और लिफ्ट में बैठकर ताज में चली गयी।

"खाना खाओगी ?" शमशाद ने पूछा।

"ऊँ-हूँ।" राज ने जवाब दिया।

"नाच देखोगी ?"

"ऊँ-हूँ।" राज ने जवाब दिया।

"—पियोगी ?" शमशाद ने धीरे से अर्थ भरे लहजे में पूछा।

"ऊँ-हूँ।" राज ने उसी बुलन्द लहजे में कहा।

"फिर ?" शमशाद ने हैरान हो के पूछा।

"फिर तुम्हारा सर।" राज शमशाद के गले में बाँहें डाल के बोली—"हाय शमूं ! तू किस क़दर खूबसूरत है ! जी चाहता है तुझसे शादी कर लूँ।"

"शादी करके क्या करेगी ?" शमशाद ने पूछा।

"इसीलिए तो करती नहीं।"

"अच्छा बोल राजू ! क्या पियेगी ?"

"टमाटो जूस !"

"टमाटो जूस ?" शमशाद ने हैरत से पूछा—"तू यहाँ टमाटो जूस पीने आयी थी ?"

"और क्या ?" राज ने एक बैरे को आवाज़ दी, और उससे टमाटो जूस लाने को कहा, और जब वे दोनों टमाटो जूस पी चुकीं तो राज ने दो रुपये के बिल के ऊपर सौ रुपये का नोट रख दिया, और जब बैरा अट्ठान्नवे रुपये ले के आया तो राज ने बड़े भोलेपन से कहा—"इसे तुम रख लो।" बैरा चकरा गया बोला—"हुजूर यह अट्ठान्नवे रुपये !" "रखो !" राज उठते हुए बोली—"चल बहना।" और वह शमशाद को लेकर लान्ज से बाहर चली गयी। बैरा आश्चर्य से राजलता की तरफ़ देखता रह गया। इतने में एक और बैरा पहले बैरे के क़रीब आके खड़ा हो गया।

"क्या हुआ ?"

पहले बैरे ने धीरे से सीटी बजाके कहा, "म्याऊँ, म्याऊँ, फिस-फिस !"

लिफ्ट में बैठ कर शमशाद सोचने लगी—"राज मुझ पर रोब गाँठती है, उसके

पास तो छः कन्ट्रैक्ट हैं, और मेरे पास आठ हैं, मैं इसको दिखा दूँगी। मैं अगली दफ़ा इसे ले के ताज में आऊँगी और सिर्फ़ सोडा पियूँगी और बैरा को दो सौ रुपये बख्शीश दूँगी। बैरा जब मेरे पास बिल ले के आयेगा मैं उस पर सौ रुपये के दोहरे नोट डाल के कहूँगी—"इसे तुम रख लो।" यह राज क्या अपने आपको मुझसे बड़ी हिरोइन समझती है, हुँ-ह ! ज़बान तो ठीक से बोल नहीं सकती। फ़ज़लदीन को तो फलजदीन कह रही थी उस रोज़ शूटिंग में, और यहाँ ताज में आके दूनकी लेती है।" शमशाद अन्दर ही अन्दर गुस्से से खौल गयी।

फिर उसने मुस्कराकर अपना सर राज के कन्धे पर रख दिया और बोली—"हाय तू मेरी कितनी अच्छी सहेली है राज ! तेरे बालों से कितनी अच्छी खुशबू आ रही है, जी चाहता है तेरे कन्धे से लगी लगी सो जाऊँ।"

"सोना अपने घर जाकर, नहीं तो वह तेरी दादी अम्माँ चिल्लायेगी—बोलेगी: "जाने यह राज मेरी शम्मू को किस मुसण्डे के पास ले गयी थी।"

शमशाद हँसी, उसे मुसण्डे का प्रयोग बहुत अच्छा मालूम हुआ, जैसे मज़बूत मज़बूत बाहें और चेहरे को छेड़ती हुई मूँछें।

"अरी क्या यह सच है तेरी दादी अम्माँ हर एक प्रोड्यूसर से कहती है—"मेरी शम्मो तो जब से पैदा हुई आज तक वैसी है। क्या यह सच है, बता !" राज पलट कर शम्मो को चैलेंज करते हुए बोली।

जवाब में शम्मू ने राज के गुदगुदी की और दोनों सहेलियाँ, फाख्ताओं की तरह एक दूसरे से प्रेम करने लगीं।

६

सिर-फुटव्वल

अमीर अली ड्राइवर के शरीर में एक अजीब सी झुरझुरी सी आयी, उसकी रीढ़ की हड्डी पर से जैसे बुलबुले से गुज़र रहे थे। वह एक लम्बा तगड़ा पठान था, और उसे औरतों का यह प्यार पसन्द नहीं आया, उसने बड़ी मुश्किल से अपनी भावना पर क़ाबू पाके कहा—"बाई किधर चलूँ ?"

"घर" शमशाद ने जवाब दिया।

शमशाद वार्डन रोड पर रहती थी, मगर जब वार्डन रोड के घर में शमशाद ने दादी अम्मा के कमरे में रोशनी देखी; तो राज से कहने लगी—"दादी अम्माँ जाग रही हैं, अभी नहीं जाऊँगी।"

"फिर कहाँ चलेगी ?"

शमशाद ने अमीर अली से कहा—"अमीर अली ! गाड़ी हैंगिंग गार्डन की तरफ घुमा ले।"

हैंगिंग गार्डन के सामने दिलआराम रेस्तोराँ था, छः मन्ज़िला और बिल्कुल माडर्न। राज और शमशाद दोनों तीसरी मन्ज़िल के खुले फ़र्श पर चली गयीं। उन्होंने बैरे से कह कर एक छोटी सी मेज़ और दो कुर्सियाँ लोहे के जंगले के क़रीब सरका लीं। यहाँ से बम्बई का शहर चारों तरफ़ फैला हुआ नज़र आता था। चारों तरफ़ फैली हुई रोशनियाँ और आसमान पर चारों तरफ़ टिमटिमाते हुए सितारे और मरीन ड्राइव के अर्द्ध गोलाकार दायरे में नीली-नीली रोशनियों के बल्ब किसी नवेली के कंगन की तरह झिलमिलाते से थे और दरख़्तों में कोई नज़र न आनेवाली चिड़िया अभी तक अपने प्रियतम को बुला रही थी और हवा की हर साँस में रातरानी की खुशबू थी और चौपाटी की रेत पर एक गोवानी समुद्र की तरफ़ मुँह किये गिटार बजा रहा था।

इस खुले खूबसूरत शहर के ऊपर खुले खूबसूरत आसमान और रोशनियों की झालरों से जड़े हुए नीले समुद्र को देखकर क्या कुछ याद नहीं आता ? यह दृश्य ! यह इन्सान के हाथों की मेहनत की कोमल-सी खूबसूरती, जिसका यह शहर एक मामूली-सा करिश्मा है ! वह गाँव जहाँ शमशाद पैदा हुई थी, राज की वह पहली मुहब्बत, जो अब कितनी दूर रह गयी थी, वह इमली तले जब दिल पहली दफ़ा बुरी तरह धड़का था.....वह सुबह जब शमशाद पहली बार स्कूल गयी थी, कितनी ही नाजुक सी प्यारी सी बातें। उम्र धीरे-धीरे बढ़ने की आशा लिए, दिल में एक अजीब सी पवित्रता, एक अजीब सी गम्भीरता के भाव को जगानेवाली बातें ऐसे क्षणों में याद आती हैं।

शमशाद ने आह भर के अपनी ठोढ़ी रेलिंग पर टिका दी।

"क्यों कुछ याद आ रहा है ?" राज ने पूछा।

"नहीं, जेम्स स्टुअर्ट !" शमशाद आँखों में आँसू भर के बोली..."और तुम्हें ?"

"हाय मेरा एलन !" राजलता बिल्कुल बेक़रार होकर शमशाद के कन्धे से लग गयी।

शमशाद को जेम्स स्टुअर्ट और राजलता को एलन पसन्द था। दोनों हालीवुड के कलाकार थे, और ये दोनों हिन्दुस्तानी हिरोइनें थीं। और अभी क़यामत तक इस बात की कोई आशा नहीं थी कि कोई उन्हें हालीवुड बुला के जेम्स स्टुअर्ट या एलन के साथ काम दे सके। इसलिए इन दोनों ने अपने-अपने दिलवर की तस्वीर अपने ड्राइंग टेबल पर रख ली थी। यह बात नहीं थी कि हिन्दु-

स्तान में ख़ूबसूरत मर्दों की कमी थी, मगर हिन्दुस्तान की चोटी की अभिनेत्रियाँ अगर हालीवुड के चोटी के अभिनेताओं से मुहब्बत न करें तो किससे करें ? ज़रा इससे कम सतह पर उतर कर मुहब्बत करना कुछ घटिया सा मालूम होता था।

"और अब तो एलन की एक अरसे से शहर में कोई तस्वीर भी नहीं आयी।" राज लगभग रोकर बोली।

शमशाद ने फिर एक आह भरी, यह आह जो साफ़ और स्पष्ट कह रही थी, तुम्हारा एलन जाये भाड़ में मुझे तो इस वक़्त अपना जम्मी याद आ रहा है।

बैरे ने आकर पूछा—"हुज़ूर क्या पियेंगी ? ठंडा कि गरम ?"

राज बोली—"उठ बहना ! यहाँ कोई तुम्हें जीने नहीं देगा।" फिर वह बैरे से मुख़ातिब होकर बोली—"हम अपना ग़म पियेंगे।"

बैरा हैरान रह गया ! राजलता शमशाद को लेके सीढ़ियों से नीचे उतर गयी, उतरते-उतरते उसे ख़्याल आया, उसने कितना उम्दा फ़िक़रा कहा था। वह ख़ुद ही अपने ख़्याल की ऊँचाई से, गद्‌गद् हो गयी। कितनी बड़ी बात 'हम अपना ग़म पियेंगे।' फिलसफ़े में डूबी हुई बात। हाय मैंने कितनी अच्छी बात कह दी ! फिर उसी ने फ़ैसला किया—कल जब वह 'सन्त घुन घुन घुनेश्वर' के सेट पर शूटिंग करने जायेगी तो मुंशी झड्डस झड़नालवी को ज़रूर यह फ़िक़रा बतायेगी, और उससे इसरार करेगी कि वह फ़िक़रा ज़रूर उसके किसी डायलाग में डाल दे। राजलता साहित्य और शायरी का बहुत ऊँचा शौक़ रखती थी, चूँकि उसने मुंशी भागीरथ-राम भोजपुरी के सारे उपन्यास और हमज़ाद लखनवी के सारे दीवान पढ़ डाले थे, जब कि दूसरी हिरोइनें बड़ी मुश्किल से सिर्फ़ खाने का मेनू पढ़ सकती थीं।

लौटते हुए शमशाद ने बड़े उदास लहज़े में कहा—"राज ! हमारी भी कोई ज़िन्दगी है, यूं देखो तो सब कुछ है—फ्लैट, गाड़ी, शोहरत, दौलत ! मगर यह ज़िन्दगी भी कोई ज़िन्दगी है ! जम्मी के बग़ैर सब सूना मालूम होता है।"

"सच कहती है तू !" राज आहिस्ता से बोली—"अरे मेरा एलन—!"

शमशाद कुछ देर ख़ामोश रही, कुछ देर गाड़ी ख़ामोशी से वार्डन रोड की तरफ़ चलती रही फिर एक ज़ोर की आह भरके शमशाद ने कहा—"राज मुझे वह माटी मिला शायर, क्या नाम है....कमज़ात की ग़ज़ल सुना दे।"

"कमज़ाद नहीं हमज़ाद।"

"हाँ, हाँ हमज़ाद की ग़ज़ल ही सुना दे, बहना जी बहुत उदास है।"

× × ×

शमशाद को वार्डन रोड पर छोड़कर राज उसकी लिंकन लेकर अपने बंगले को चली गयी जो बांदरा में था, पालीहिल पर। पालीहिल की तरफ़ मुड़ते-मुड़ते

अमीर अली ड्राइवर ने सोचा, "मैं इसे पालीहिल क्यों ले जाऊँ, इसे बांदरा के तट पर क्यों न ले जाऊँ ? इस वक़्त वहाँ बांदरा के तट पर कोई न होगा।"

फिर उसने सोचा—"अगर उसे तीन साल की जेल हो गयी तो उसकी बीवी जुबेदा और उसका चार साल का बच्चा शहबाज़ क्या करेगा ? मुमकिन है उसके जेल के दिनों में कोई उसकी बीवी को बांदरा के तट पर ले जाये, ग़रीबी में क्या कुछ मुमकिन नहीं है ! मगर इस वक़्त मौक़ा अच्छा है।" अमीर अली पठान ने अमीर अली ड्राइवर से कहा।

"हाँ ! मगर इस मौके को हासिल कर लेने के बाद ज़िन्दगी भर कोई मुझे ड्राइवर नहीं रखेगा !" अमीर अली ड्राइवर ने अमीर अली पठान से कहा। तो पठान इसरार करने लगा।

"चुप रहो।" ड्राइवर ने बड़ी सख्ती से कहा, और फिर गाड़ी का रुख पाली-हिल की तरफ़ मोड़ दिया। राज को पता नहीं चल सका कि अमीर अली ने अपने दिल से क्या बातें की, क्यों कि वह अपने दिल की बातों में डूबी हुई थी। इतने में उसका बंगला आ गया। ज्योंही गाड़ी पोर्च में रुकी एक दुबले पतले सूखे घामड़ आदमी ने आगे बढ़ के गाड़ी का दर्वाज़ा जल्दी से खोल के राजलता की तरफ़ अजीब निगाहों से देखा, जैसे वह निगाहें कह रही हों, कहाँ गयी थी ?

यह राज का पति शंकर था। राज उस वक्त तक चुप रही जब तक अमीर-अली गाड़ी को बंगले से बाहर निकाल के नहीं ले गया। उसके बाद वह अपने पति की तरफ़ मुड़ी और गरज के बोली—"जहन्नुम में गयी थी।"

उसका पति घबरा कर पीछे हट गया—"मगर मैंने तो कुछ नहीं कहा राज !"

राज उसकी बात का जवाब दिये बग़ैर आगे बढ़ गयी, आगे बरामदे में उसके चाचा खड़े थे, चूड़ीदार पाजामा, सर पर दुपल्ली, चेहरे पर झुर्रियाँ, आँखों में वही शक और अजीब डर सा——

राज ने डपट के पूछा—"आप अभी तक सोये नही ?"

"तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा था।"

राज ने बड़ी सख्ती से कहा—"मैंने कब कहा है कि मेरा इन्तज़ार कीजिए? मेरा इन्तज़ार कभी न कीजिएगा। दस दफ़ा कह चुकी हूँ, कोई बच्ची नहीं हूँ। अपना बुरा-भला खूब समझती हूँ; ख़बरदार आइन्दा से किसी ने मेरा इन्तज़ार किया।" राज इधर-उधर देख कर गरजी, मगर वहाँ बरामदे में चाचा के सिवा कोई न था। पति चुपके से कान लपेट के गराज में चला गया, क्यों कि वह गाडी चलाता था, और बाहर दुनिया में उसे सिर्फ़ ड्राइवर ही समझा जाता था। यह बहुत कम लोग जानते थे कि वह राज का पति था।

राज चचा को वहीं बरामदे में ठिठुरा छोड़कर अन्दर हाल में चली गयी। हाल में उसका भाई अभिमन्यु भंग पिये मुट्ठियाँ भीचे बैठा था, उसने आते ही राज के बालों को पकड़ लिया—"कहाँ गयी थी साली ?" राज ने उसके मुँह पर ज़ोरका एक तमाचा जड़ दिया, भाई ने घूंसा मारा, राज रोने लगी, मगर रोते-रोते लड़ती भी गयी, उसने नाखूनों से अपने भाई का चेहरा जगह-जगह से लहू-लुहान कर दिया चिल्ला चिल्ला कर कहने लगी—"सुअर का बच्चा !" "सुअर की बच्ची !" भइया अभिमन्यु गुस्से में गुर्राये। "साली रोज़ रात को देर में आती है, यह घर है कि रंडी का कोठा।"

"हरामज़ादे ! बहन का खाते हो; ऊपर से अकड़ते हो।" राज उसके एक तमाचा मारकर बोली। अभिमन्यु को जो तैश आया, उसने राज के इतने ज़ोर से बालों को पकड़ के घसीटा की राज सोफ़े के नीचे फ़र्श के ग़लीचे पर गिर पड़ी, और सर टकराने से तिपाई पर रखा हुआ फूलदान गिरकर टूट गया।

इतने में चाचा दामोदर, अभिमन्यु की बीवी गोरी, और चाची गनेशी और मौसी दुलारी और मौसी की बेटी रामप्यारी और उसका पति अजीत सिंह और दस बारह लड़के लड़कियां जाने कहाँ-कहाँ बंगले के कोने कोने से निकल कर हाल में जमा हो गये, और एक ही वक़्त में एक दूसरे पर ज़ोर ज़ोर से चीखने चिन्घाड़ने और रोने-पीटने लगे।

आसपास के बंगलों की रोशनियां जो बुझ चुकी थी बारी-बारी से फिर चमकने लगीं। साथवाले बंगले के इंजीनियर कमालदास ने अपनी बीवी से कहा—"अरे वही रोज़ का टन्टा है, वही राज देर से आयी है, थोड़ी देर तक गुल-गपाड़ा रहेगा, फिर सब सो जायेंगे———चलो अन्दर।" कमालदास ने अपनी बीवी की कमर पर हाथ रखा। अभी इनकी शादी हुए तीन माह भी न हुए थे मगर बीवी तिलमिला के बोली—"नही मैं तो ज़रा यह झगड़ा सुनूंगी।"

"रोज़ तो सुनती हो।" कमालदास ने जम्हाई लेकर कहा—"इसमें क्या रखा है ? मूर्ख, असभ्य फ़िल्मी गुण्डे...।"

"तुम क्या जानो, हर रोज़ कोई न कोई नई बात होती है।" कमालदास की बीवी बोली—"तुम क्या जानो औरतों की बातें, तुम जाके सो रहो, मैं अभी आती हूँ।" कमालदास को खूब मालूम था कि अभी आती हूँ का मतलब एक घण्टे से है।

कमालदास को यह मामला ऐसा नागवार लगा कि वह अपने कमरे में रंजीदा हो के चला गया।

चलते चलते उसने अपने आप से कहा—"हूँ ! इसका दिल इस वक़्त झगड़े में है।"

× × ×

कमालदास ने ठीक ही कहा था। कोई घण्टे भर में झगड़ा दूर हुआ। धीरे-धीरे चारों तरफ़ सन्नाटा छा गया। अब सिर्फ़ राज के कमरे में प्रकाश था। अब राज और भइया में मेल हो गया था। राज अपने भाई के चेहरे पर जहां-जहां नाखन के निशान थे, क्रीम लगा रही थी। "भइया तुम भंग क्यों पीते हो ?"

"तो क्या करूँ, राजू ! तुम व्हिस्की के पैसे जो नहीं देती हो।"

"कैसे दूँ ? तुम खुद ही घर की हालत तो देखते हो भइया जी ! जो भी रिश्तेदार है, या बेकार गांववाला है, जिस मुए से कभी बचपन की एक दिन की जान पहिचान थी, वह सीधा यहाँ बांदरे में राज के बँगले पर चला आ रहा है। लगभग कोई पचास आदमियों का खाना सुबह व शाम तैयार होता है।" और यह बात निहायत सच थी, मगर इसमें राज का स्वयं अपना क़सूर था। जब उसके अच्छे दिन आये और उसकी गिनती हिन्दुस्तान के गिने-चुने कलाकारों में होने लगी, और उसे पचास-पचास हज़ार के कान्ट्रैक्ट मिलने लगे, तो उसने भी अपना खर्च बिना सोचे-समझे बढ़ा लिया। गाड़ियाँ, मकान, फ्लैट, कपड़े, कुत्ते तो थे ही, अब उसने एक एक करके अपने सब सम्बन्धियों को अपने पास बुलाना शुरू किया। पहले चाचा आये, फिर उसका परिवार, फिर बहुत से निकम्मे लोग। मगर दूर-पार के रिश्तेदार भी बिना बुलाये चल पड़े। राज को अपने बंगले के साथ एक और बंगला किराये पर लेकर इन सब लोगों को रखना पड़ा। इसके अलावा उसका अपना पति था जो चाहे कुछ नहीं कहता था, मगर जीवित तो था, और रोज़ मारफ़िया का इन्जेक्शन लेता था। फिर उसके चाचा थे, जो अपनी पत्नी के सिवा एक वेश्या रखे हुए थे, उसका खर्च-पानी भी राज को देना पड़ता था। अभिमन्यु भंग पीता था और शैर कहता था। शैर तो नहीं कहता था, लेकिन उर्दू के सारे दीवान उसके पास थे, उनमें से शैर चुरा-चुरा के फ़िल्म के पत्रों को भेजता था, और वे लोग इसलिए छापते थे कि वह राज का भाई था। कभी कभी उसके सहारे राज का नया फोटो या उसका कोई इन्टरव्यू इन पत्रकारों को मिल जाता था। कभी-कभी कोई चटपटी मज़ेदार खबर !

राज और भैया की नित्य लड़ाई होती तो राज कई कई रोज़ अपने भाई को मुँह नहीं लगाती थी, और उसे पैसे नहीं देती थी। उन दिनों अभिमन्यु बेचारा क्या करे, भंग कैसे पिये, अपनी बीवी-बच्चों का खर्चा कैसे पूरा करे ! इसलिए वह

उन दिनों अपनी बहन के प्रेमपत्रों के समाचार पत्रकारों को औने-पौने में बेच देता। कई बार ऐसा हुआ कि राज से लड़ाई हो गई, मगर कोई प्रेमपत्र नहीं मिला, और भंग की टूट हो रही है, इसलिए अभिमन्यु को ऐसे मौक़ों के लिए प्रेमी भी ख़ुद ही गढ़ने पड़ते थे। मगर इस वक़्त अभिमन्यु और राज की सुलह हो गई थी। वह उसे भैया कह रही थी, और वह उसे राज़ू कह रहा था, और दोनों बहन-भाई एक ही सोफे पर बैठ कर एक दूसरे से गले मिल रहे थे।

राज ने बड़े प्यार से कहा—"मैं आज भैया को व्हिस्की पिलाऊंगी।"

यह कह कर राज सोफे से उठी और उसने अलमारी खोलकर व्हिस्की की बोतल निकाली। तिपाई पर दो गिलास रखे, रेफ्रीज्रेटर से सोडे की बोतलें लाई; फिर दोनों व्हिस्की पीने लगे।

दो पैग पीने के बाद अभिमन्यु ने कहा—"राज़ू! तुम सब को निकाल दो, इन सब रिश्तेदारों को।"

"हाँ भैया तुम ठीक कहते हो, मैं कल ही इन सब को चलता करूँगी।"

"सिर्फ़ हम और तुम रहेंगे।"

"हाँ भैया सिर्फ़ हम और तुम....."

दो पैग और पीने के बाद अभिमन्यु ने कहा—"राज़ू! तुम शंकर को भी निकाल दो।"

"शंकर तो मेरा पति है।" राज बोली।

"तो क्या हुआ ?" अभिमन्यु बड़े क्रोध में बोला। "साला बिल्कुल तुम्हारे लायक नहीं है! तुम्हारे मां-बाप ने इससे तुम्हारी शादी करके तुम्हारे साथ अत्याचार किया है। मैं तुम्हारा भाई हूँ, मैं तुम्हारे साथ न्याय करूँगा; तुम शान्ताराम से शादी कर लो।"

"मगर शान्ताराम तो शादीशुदा है।"

"अच्छा तो महबूब से कर लो।"

"वह भी शादीशुदा है।" राज बोली।

यहाँ आके अभिमन्यु का दिमाग़ रुक गया, और दो पैग पीने के बाद उसने सोच सोच के कहा—"अच्छा तो मुझसे शादी कर लो।"

"मगर तुम मेरे भाई हो" राज बोली।

"हाँ ठीक है...." भैया ने सिर हिला के कहा। "अच्छा तो फिर मुझे और व्हिस्की दो।"

पहले इसके कि राज उसके गिलास में व्हिस्की उँडेलती, अभिमन्यु ने आँखें बन्द कर लीं, और सोफे पर औंधा होकर ख़र्राटे लेने लगा। राज ने उसे टाँग से घसीट

कर फ़र्श के ग़लीचे पर सुला दिया; फिर उसने ज़ोर से घण्टी बजाई। बाहर फिर रोशनी हुई, एक नौकर अन्दर आया, राज ने अभिमन्यु की ओर संकेत किया वह खर्राटे लेते हुए अभिमन्यु को अपनी भुजाओं में उठा के ले गया। राज ने चटखनी चढ़ा दी, और बत्ती बुझा करके मसहरी पर लेट गयी। राज ने करवट लेके मसहरी के निकट तिपाई पर रखी हुई एलन की तस्वीर की तरफ़ देखा जो रेडियम के फ्रम में जड़ी हुई अन्धेरे में भी जगमग-जगमग कर रही थी, रेडियम वाच की तरह.....

"डार्लिंग..." राज एलन की तस्वीर की तरफ़ देखकर मुस्करायी, और उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

७

हीरो बनने का सपना

रईसगंज का इशरत बहुत ख़ूबसूरत था, उसकी सुन्दरता में इशरत के मा-बाप का बहुत बड़ा हाथ था और उन्होंने इशरत को एक सुन्दर, आज्ञा-कारी, शिक्षित सभ्य नवयुवक बनाने में ख़ूब रुपया ख़र्च किया। कोई ताजमहल बनाता है, कोई इशरत बनाता है!

हर बाप अपने बेटे के शीशे में अपनी सूरत देखता है। इशरत के पिता रिटायर्ड सेशन जज थे, इसलिए इशरत को कम से कम हाईकोर्ट का जज तो होना ही चाहिए था, इसलिए वह चाहते थे कि इशरत बी. ए. के बाद लॉ कालेज में दाख़िल हो जाये। इसके बाद वह अपने प्रभाव व मेल-जोल से धीरे धीरे एक... दिन, एक दिन जो कभी नहीं आया, और इशरत के पिता इसी कामना को अपने दिल में लिये चले गये। मनुष्य शीशा बनानेवाला क्यों होता है, इन्सान बनानेवाला क्यों नहीं होता? वह अपने बेटे की देह में बीते हुए समय की छाया देखता है, भविष्यकाल का चित्र क्यों नहीं देखता? इशरत के पिता ने काँच की सतह पर जो परछाइयाँ देखी थीं; वे उन स्वप्नों से बहुत भिन्न थीं, जो इशरत के दिल व दिमाग़ पर छा रही थीं। प्रत्येक मनुष्य का दिल, उसका अपना दिल एक निजी शीशा होता है, जिसमें कोई दूसरा अपनी तस्वीर नहीं देख सकता। बहुत से बाप यही ग़लती कर जाते हैं, और फिर सारी उम्र उसे भुगतते रहते हैं।

इशरत के बाप और उनके मरने के बाद उसकी माँ यदि इशरत के दिल के आईने में झांक सकती तो धक से रह जाती, क्योंकि आइने में उन स्वप्नों का कोई चिन्ह मौजूद न था; जिन्होंने अपने रंग-बिरंगे ख्यालों से उनके दिल के घर को सजा रखा था। बात भी ठीक है, इशरत अक्सर सोचता था—मेरा शीशा किसी के शीशे से क्यों मिले ? मैं इन्सान हूँ, कांच की सतह नहीं हूँ। शुरू-शुरू में इशरत के स्वप्न भिन्न थे। उसे व्यायाम का बड़ा शौक़ था, वह बड़ा होकर जिमनास्टिक का उस्ताद बनना चाहता था। जब वह और बड़ा हुआ तो फ़ौज में जनरल बनने के सपने देखने लगा। जब वह और बड़ा हुआ, और उसे तिरछी निगाहों, लजाई हुई नज़रों और कांपती हुई अर्द्ध मतवाली उमंगों के सन्देश मिलने लगे, तो वह फ़िल्म में हीरो बनने के स्वप्न देखने लगा। वह जिमनास्टिक का उस्ताद क्यों बनेगा ? लोहे की छड़ पर कसरत करते-करते उसका तो दम निकल जायेगा। और फ़ौज में जनरल ? पहले तो वह रिक्रूट होगा और 'लेफ्ट-राईट' करते, परेड करते, फटके खाते-खाते जाने कब जनरल बनेगा, कि किसी दिन कोर्टमार्शल होके फिर सिपाही रह जायगा। लेकिन यह फ़िल्म का हीरो बनना कैसा अच्छा और आसान काम मालूम होता है। जिस तरह वह चाहा गया था, जिस तरह रईसगंज में उसकी खूबसूरती के चर्चे थे, जिस तरह अनजान, बेसमझ, नालायक लड़कियों ने छिप-छिपकर उससे मुहब्बत की थी। जिस तरह की अनजान बेसमझ नालायक हिन्दुस्तानी फ़िल्में उसने देखी थी, उससे इशरत को यही अनुमान होता था कि वह हर दशा में हीरो बनने योग्य है और फिर हीरो का काम किस क़दर आसान होता है। फ़िल्म में शुरू से अन्त तक मुहब्बत ही मुहब्बत किये जाना मुहब्बत के गीत गाना, मुहब्बत के पत्र लिखना, मुहब्बत के आँसू बहाना, मुहब्बत की मौत मरना, या मुहब्बत की शादी करना। मतलब यह कि मज़े ही मज़े हैं हर तरफ़ से। इसके मुकाबले जिमनास्टिक का उस्ताद या फ़ौज का जनरल, याने सारी उम्र एड़ियाँ रगड़-रगड़ के गुज़ारनी। इशरत का रेशम से सजा हुआ बदन इस ख्याल के आते ही कांप गया, और उसने फ़िल्म में हीरो बनने का निश्चय कर लिया।

इसलिए इशरत बी. ए. पास करते ही बम्बई भाग गया और अपनी विधवा मा को अकेला छोड़ गया। रईसगंज का शहर उसके लिए बहुत छोटा था। यहाँ की सफलताएँ बहुत मामूली थीं। सिकन्दर मक्दूनिया में कैसे रह सकता था ? इतनी बड़ी दुनिया उसे विजयी बनाने के लिए चारों ओर से बुला रही थी। इसलिए सिकन्दर रईसगंज से बम्बई आ गया।

हर साल देश के कोने-कोने से हज़ारों लोग बम्बई में काम की खोज में

आते हैं, और यह कोई ग़लत बात नहीं है, और यह कोई ऐसी बात भी नहीं है जिसे रोका जा सके। बम्बई हिन्दुस्तान का सब से उन्नत शहर है, और काम-काज के सिलसिले में एक बड़ा तिजारती शहर—एक बहुत बड़ा चुम्बक, जो बेरोज़गार लोगों को अपनी तरफ़ खींचता है। हर जगह हर मुल्क में अपनी तरफ़ खींचता है; क्यों कि जहाँ व्यापार होगा और शिल्प-कौशल होगा, वहाँ बाहर से लोग खिचे हुए आयेंगे और माँ-बाप की आकांक्षा रौंद कर आयेंगे, और दोस्तों और प्रेमियों के आँसुओं में भीगते हुए आयेंगे और बहुत-सी काँच की सतहों को तोड़ते हुए इस तरह दौड़ते हुए आयेंगे जिस तरह लोहे के कण चुम्बक की तरफ़ खिचते हुए चले आते हैं। मियां इशरत भी आयेंगे, और डेविड भी आयेंगे, और किरपालसिंह भी आयेंगे। यहाँ जोहरा भी आयेगी। सुशीला भी आयेगी और सावित्री भी आयेगी। कोई फ़ाक़ों के साथ आयेगी, कोई ढाई सौ रुपये लायेगी। कोई गहना चुरा के आयेगी, तो कोई किसी की आँखों की नींद चुरा के आयेगी; मगर आयेगी ज़रूर; क्योंकि बम्बई एक बहुत बड़ा चुम्बक है। जहाँ बसन्ती रहती है, बेचारी विधवा बसन्ती जो अपने गाँव में भूखी मरती थी; पर यहाँ बम्बई में एक मिल में साठ रुपये पाती है। यहाँ रानीबाला है, जो सुना है एक फ़िल्म में काम करने के लिए डेढ़ लाख रुपये लेती है। फिर यहाँ अपने किरपाल का भतीजा गुरुबख्श है, अरे वही गुरुबख्श ! जो अपने गाँव में मारा-मारा फिरता था, यहाँ सुना है उसके पास छः टैक्सियाँ हैं और विजयकुमार को देखा होगा, यहाँ का मासिक 'मछन्दर' भी उसकी कहानियाँ नहीं छापता, आज वह बम्बई का सब से बड़ा फ़िल्मी लेखक है। और इशरत ने सोचा वह तो राजकुमार से कहीं सुन्दर है, विजयकुमार से कहीं ज़्यादा पढ़ा-लिखा है। इसलिए उसने अपने सूटकेस में तीन अच्छे सिले हुए सूट रखे; कुछ क़मीज़ें, अंग्रेज़ी मोजे, जूते और तीन सौ रुपये साथ में लिये और भाग कर बम्बई आ गया। और आकर सी-साइड होटल में ठहर गया। सी-साइड होटल में नौकरों के डेरे के पास टहलते हुए खन्ना ने इशरत को देख लिया। खन्ना राजमहल स्टुडियो में कैमरामैन था, और ऊपर से देखने पर भला आदमी दिखाई देता था। गोल-गोल चेहरा, गोल-गोल ऐनक, गोल-गोल मुस्कराहट, कुछ कहती भी है, कुछ कहती भी नहीं। पान गाल के भीतर दबाये हुए, एक नीले रंग की चौड़ी मुहरी-वाली पतलून, और पतलून के ऊपर ढीला-ढाला ब्राउन रंग का बुश शर्ट पहने हुए, घसिटते हुए चले आ रहे हैं। खन्ना देखने में सोये हुए लहज़े में बात करता था। सोई हुई चाल से चलता था। सोई हुई अधमुँदी आँखों से इस तरह देखता था, जैसे वह दुनिया व समझदारी से बेख़बर है।

मगर वास्तव में उसकी बेख़बरी देखने में सोये हुए, कुंडली मारे हुए, धूप सेंकते

सांप की बेख़बरी थी। आप ज़रा उसके निकट गये और उसने डंक मारा। खन्ना ने इशरत को नौकरों के डेरे के पास टहलते हुए ताड़ लिया कि नया असामी है, फ़िल्म के चक्कर में है, इसलिए मामला पट जायेगा। इस वास्ते उसने इशरत से दोस्ती कर ली और उसे वचन दिया कि वह उसे सेठ बैताल भाई बाँकड़िया के राजमहल स्टूडियो में ले जायेगा और उसे अपने दोस्त जोशी डाइरेक्टर से मिला देगा।

"मगर तुम्हारे पास क्या स्टिल हैं ?" खन्ना ने कहा।

"स्टिल क्या होते हैं ?" इशरत ने घबरा के पूछा।

"तुम्हारी तस्वीरें, मेक-अप के साथ। रोशनी और छाया आदमी की सूरत को कहाँ से कहाँ पहुँचा देती हैं। और तुम तो यूँ ही अच्छे ख़ासे नज़र आते हो। पूरी फ़िल्म इंडस्ट्री में तुम्हारा ऐसा व्यक्तित्व मुझे तो किसी दूसरे हीरो का नज़र नहीं आता। स्टिल खिचवाने में पचास रुपये लगेंगे, मैं खुद खींचूँगा।"

इशरत कुछ तस्वीरें अपने साथ लाया था, खन्ना ने उन्हें देखकर सर हिलाते हुए कहा—"यह रईसगंज के माथुर फोटोग्राफिक हाल के फोटो यहाँ नहीं चलेंगे; जिनमें तुम चीते की खाल पर कुर्सी रख के यूँ टिक के बैठे हो, जैसे तुम्हें सचमुच लकवा हो गया है।"

इशरत हँसा, और उसने जेब से पचास रुपये निकाल के खन्ना को दिये। खन्ना ने पिछले तीन महीने से होटल का बिल नहीं दिया था इसलिए, और फिर खन्ना ने इशरत को जोशी जी से मिला दिया, और इस तरह एक सप्ताह में उससे डेढ़ दो-सौ रुपये और खींच लिये। उसका एक सूट गिरवी रखवा दिया, दो कमीज़ें माँग लीं, एक जूता पहन लिया; और जब इशरत के पास कुछ न रहा, और जब मैनेजर ने इशरत का सामान होटल से बाहर फेंक दिया, तो खन्ना साहब इशरत की तरफ से यूँ गायब हो गये और इस तरह अधमुंदी आँखों से इशरत की तरफ़ देखने लगे जैसे उन्हें मोतियाबिन्दु का रोग हो।

जब इशरत होटल से बाहर निकला, तो उसे एक झटका सा लगा। जीवन में पहली बार उसे कोई आदमी ऐसा भी मिला था, जिसने उसकी ख़ूबसूरती की रत्ती भर परवाह नहीं की थी। जिसने एक कुशल जेबकतरे की निगाहों से उसे चारों ओर से टटोल टटोल कर अच्छी तरह से उल्टा के पल्टा के छान फटक के खाली कर दिया था....!

एकाएक इशरत को मालूम हुआ कि वह इस शहर में बिल्कुल अकेला है, उसकी जेबें आस्तीनों से बाहर लटक रही हैं, और सारी दुनिया उसे शक की निगाहों से देख रही है।

वह रात उसने बाम्बे सेंट्रल स्टेशन के सेकण्ड क्लास वेटिंग रूम में जागते गुज़ारी। सुबह होते ही वह राजमहल स्टूडियो की ओर चला क्योंकि जोशी डाइरेक्टर ने उसका फ़िल्म-टेस्ट लेने का वायदा किया था।

अगर वह इस परीक्षा में सफल हुआ तो....और इशरत सोचने लगा कि फिर अपना नाम क्या रखेगा ? और फिर उसके दिमाग़ में एक बादामी रंग की ब्यूक कार झन्नाटे से गुज़र गयी। यह ब्यूक वह खुद चला रहा था। ताज में बिल्लौरी फानूस प्रकाशमान थे और जैसे वह बारीक सिफौन की साड़ी में थरथराती हुई एक तितली के साथ नृत्य कर रहा था।

जोशी ने कहा,—"इशरत मुस्कराओ।"

इशरत सुबह से भूखा था, उसने मुस्कराने की कोशिश की। "ऐसा मालूम होता है जैसे कुनैन पीने के बाद मुस्कराने की कोशिश कर रहा हो। अरे भाई ! तुम्हारे सामने एक खूबसूरत लड़की खड़ी है, बताओ कैसे मुस्कराओगे ?"—जोशी ने पूछा।

इशरत ने फिर मुस्कराने की कोशिश की।

"बाप रे !" जोशी बड़े ज़ोर से गुस्से में चिल्लाया, फिर उसने कहा—

"अच्छा हँसो !"

'ही-ही-ही !' इशरत हंसा।

उसे अपनी हँसी बड़ी खोखली मालूम हुई।

"गधा !" जोशी फिर चीखा ! "अच्छा अब रोकर भी दिखाओ। मेरा मतलब है; चेहरा उदास, आँख में आँसू, होंठ काँपते हुए, भयभीत, निराशा की ज़िन्दा तस्वीर।"

इशरत ने फिर कोशिश की। उसे खुद लग रहा था कि इस कोशिश में उसका चेहरा बहुत भयानक मालूम होता है। यकायक वह खिसियानी हँसी हँसने लगा। "कट-कट" जोशी ने गुस्से में कहा—"आ जाते हैं रईसगंज से हीरो बनने, कम्बख़्त एक्टिंग की दुम से वाक़िफ़ नहीं।"

"गेट आउट"

गेट आउट होकर इशरत बड़ी बेदिली से राजमहल की स्टेज के बाहर, पुराने फर्नीचर, फटे हुए पर्दों, टाट के बोरों, लकड़ी की खपच्चियों, मोल्डिंग के टुकड़ों और प्लास्टर के पुराने टूटे फूटे बुतों के बीच बैठा था। उसके सामने नटराज का टूटा हुआ ढेर था। राजनर्तकी का बाज़ू गणेश की सूंड पर पड़ा था और नन्दी बैल का बुत एक सुराही से अपना मुँह लगाये हुए था। इशरत ने सोचा—अब क्या करे। सिकन्दर वापस मक्दूनिया चला जाये कि आत्महत्या कर ले; कि मा को तार देकर रुपये मँगाने की कोशिश करे कि फ़ाक़ेमस्ती में कोशिश करता रहे।

इशरत ज़िन्दगी में आज तक भूखा न रहा था, इसलिए आज उसका जी रोने

को चाह रहा था। यकायक उसके कानों में आवाज़ आयी। "उजाड़ ! यहाँ क्यों बैठे हो जी ?"

इशरत ने सर उठा के देखा, सामने एक मारवाड़ी नर्तकी का पहनावा पहने, उम्दा मेक-अप किये हुए एक जवान लड़की अपने होठों को बड़े अन्दाज़ से सिकोड़े हुए उससे कह रही थी, यह रफ़िया थी।

"सारी !" कह के वहाँ से इशरत उठ खड़ा हुआ और चलने लगा।

"लो !" रफ़िया बड़ी हसरत से बोली—"मैंने ज़रा धमकाया तो उठके चलने लगे। अरे ऐसे में तुम्हारा कैसे गुज़र होगा ? नये मालूम होते हो !" रफ़िया खिल-खिला कर हँस पड़ी।

इशरत भी हँसा।

वे दोनों प्लास्टिक के बुतों पर बैठ गये। रफ़िया ने अपना नाम बताया—"आज चुन्नू भाई मुन्नू भाई की शूटिंग में आयी थी डांस के लिए; उसकी एक मा है, एक बहन थी सो मर गयी, पाँच बच्चे छोड़ गयी। वह उन पाँच बच्चो को पालती है। भिन्डी बाज़ार में एक छोटी खोली में रहती है। तुम कहाँ रहते हो ? क्या काम करते हो ? यहाँ क्यों आये हो ?"

इशरत ने सब बताया, बताते समय उसकी आँखों में आँसू आ गये।

"उजाड़ ! मर्द होके रोते हो !" रफ़िया ग़ुस्से से बोली—"चलो मेरे साथ घर पर...." इशरत उठा।

"लो, अभी से चलने लगे ! अरे अभी नहीं शूटिंग के बाद चलेंगे; साढ़े छः बजे, बैठो अभी, मैं अब जाती हूँ, शाट होनेवाला है।"

× × ×

रफ़िया की खोली में रोशनी बहुत कम थी, अंधियारा बहुत ज़्यादा था। रफ़िया की मा के भूख से झुके हुए चेहरे पर दुःखों के अनगिनत निशान थे। उसकी ठोढ़ी एक पेन्डुलम की तरह हर समय धीरे-धीरे हिलती रहती थी। उसने ऐसी निगाहों से इशरत की ओर देखा, जैसे दुनिया में कोई अजनबी नहीं है, और कोई दोस्त नहीं है। कोई नया नहीं है, कोई पुराना नहीं है। किसी के आने की ख़ुशी नहीं है। किसी के जाने का ग़म नहीं है। जितने आँसू थे, वह सब सूख चुके और जितनी मुस्कराहटें थीं, सब मर चुकीं। बस एक पेन्डुलम है जो एक ही नियत चाल से झूलता रहता है—मौत से ज़िन्दगी की ओर और ज़िन्दगी से मौत की ओर। ऐसी ठहरी रुकी हुई मौन निगाह थी उस बूढ़ी औरत की, कि इशरत को लगा जैसे वह किसी घर में नहीं किसी बर्फ़खाने में चला आया है। उसके सारे शरीर में एक झुरझुरी सी आई, और उसे एक क्षण के लिए काँपता छोड़ गयी।

रफ़िया इशरत को हाथ पकड़ कर भीतर ले गयी। "लो, क्या चुप खड़े हो; शरमाती हुई लड़की की तरह! अब बैठ जाओ। यहीं ज़मीन पर बैठ जाओ, हम सब लोग यहीं ज़मीन पर बैठते हैं, यहीं ज़मीन पर सोते हैं।"

खोली के एक कोने में नल था। रफ़िया कमाल की नेकर उतार कर वहाँ धोने के लिए चली गयी। बूढ़ी मा ने हँडिया में चावल डाले। इशरत कुर्सी पर बैठ गया। ज़मीन पर प्याज़ के छिलके पड़े हुए थे, एक छिलका उठा के सैयद ने इशरत के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"तुम फ़िल्म में काम करते हो?"

"हाँ!" इशरत ने कहा।

इशरत रात से भूखा था, इसलिए बार-बार उबलती हुई हाँडी की तरफ़ देख रहा था। बूढ़ी ने आलुओं के टुकड़े काट के हाँडी में डाल दिये; पहले चावल डाले जा चुके थे। जब नमक के बाद हल्दी डाली गयी तो हाँडी में बड़ा मज़ेदार उबाल आया। सोंधा-सोंधा, पीला-पीला झागोंवाला सूँ सूँ करता हुआ उबाल। इशरत की आंतें अन्दर से खिचने लगीं। उसकी निगाहें भी उस हाँडी पर जम गयी थीं। एकाएक उसने देखा—उन पाँच बच्चों की निगाहें भी उस हाँडी पर जमी थीं। निगाहें जमी हुई, मुँह में पानी, हलक़ की हड्डी नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे जाती हुई मालूम होती थी—मौत से ज़िन्दगी की तरफ़, ज़िन्दगी से मौत की तरफ़!

हाँडी कब उतारी गयी, कब चावल बाँटे गये, किस तरह हाथ झपटे, किस तरह जबड़े हिले और कौर उतरे!

इशरत को और दूसरे बच्चों को कोई इल्म न था; बस एक भूख थी, जो एक ख़ूनी अपराधी, चमगादड़ की तरह, रात के साये की तरह उनकी आत्मा पर, उनके होश व हवास पर फैली हुई थी। और चमगादड़ ने अपना ख़ून पी लिया तो सब निढाल होकर वहीं फ़र्श पर जानवरों की तरह सो गये। आलुओं और प्याज़ के छिलकों और मिट्टी में सने हुए चावल के बिखरे हुए दानों को उठा कर रफ़िया ने खिड़की से बाहर फेंकते हुए देखा कि बाहर बाज़ार में दूकानों पर ख़ूबसूरत किताबें रखी हुई थीं; और डोरियों पर अंगूर के गुच्छे लटक रहे थे। कपड़ेवाले की दूकान पर सजी-धजी औरतें रेशम की साड़ियाँ खरीद रही थीं। रेस्तोरां से मसालेदार क़बाबों की ख़ुशबू उठ रही थी। और रफ़िया ने सोचा कि बाज़ार में किताबें बिक रही हैं, लेकिन उसकी बहन के बच्चे अनपढ़ हैं। वह अख़बार बेचते हैं, पढ़ नहीं सकते। और डोरियों पर लटकते हुए अंगूर खट्टे हैं, और रेशम बहुत महँगा है; क़बाबों की ख़ुशबू बहुत दूर है। एक आह के साथ उसने आहिस्ता से खिड़की बन्द कर ली और फ़र्श पर पाँव फैला के लेट गयी। फ़र्श ठंडा था, और उसके जिस्म का हर अंग दिन भर की शूटिंग की मेहनत से टूट रहा था।

रफ़िया ने कहा—"मेरी बहन का शौहर भी बम्बई तुम्हारी तरह आया था, हीरो बनने के लिए, आख़िर आत्म-हत्या करके मर गया। उसके ग़म में मेरी बहन तपेदिक़ से मर गई। आज तुम स्टुडियो के कूड़े के ढेर पर बैठे थे; तो तुम्हारा इरादा नेक नहीं मालूम होता था।"

इशरत ने उदास होकर कहा—"कैसी-कैसी उम्मीदें लेकर आया था!"

"कोई उम्मीद एकदम पूरी नहीं होती, उसके लिए बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, अगर तुम मेहनत के लिए तैयार नहीं तो वापस अपनी मा की गोद में लौट जाओ।" रफ़िया ने व्यंग्य से कहा।

"मैं वापस नहीं जाऊँगा।" इशरत ने जवाब दिया।

"तो फिर क्या करोगे?"

"तुम्हारी तरह एक्स्ट्रा बन कर काम करूँगा। तुम्हारी एक्स्ट्राज़ युनियन का मेम्बर बन जाऊँगा, कल मुझे एक कार्ड निकलवा दो मेम्बरी का। सुना है उस कार्ड के बग़ैर कोई काम नहीं कर सकता।"

"और हीरो नहीं बनोगे?" रफ़िया ने पूछा।

इशरत चुप हो गया, उसने अपनी आँखों पर हाथ रख लिये और करवट बदल कर सो गया।

८

फ़िल्म एक्स्ट्राज़ युनियन

दूसरे दिन रफ़िया इशरत को लेकर रज़िया के घर गयी; जो मदनपुरा की एक गली में एक ईरानी रेस्तोरां के ऊपर था। रजिया की मा अपना पेटीकोट घुटनों से ऊपर किये सो रही थी। रजिया का भाई जो एक मोटर वर्कशाप में मैकेनिक का काम सीख रहा था, एक खिड़की में बैठा बाहर देख रहा था, रज़िया दाँत साफ़ कर रही थी।

रफ़िया ने इशरत को रज़िया से मिलाया। रज़िया उसे देखकर मुस्कराई, फिर हँसी, फिर ख़ूब ज़ोर से हँसी। इशरत कुछ शर्मिन्दा-सा हो गया।

रज़िया ने रफ़िया को अलग ले जाकर कहा—"हाय! किस क़दर स्वीट है, मैं तो अगर अपने दिलदार को न चाहती तो इसे चाहने लगती, मर मिटती बल्कि..."

इशरत की ख़ूबसूरती में कुछ ऐसी ही बात थी, पहली ही नज़र में अक्सर लड़कियाँ उस पर न्योछावर हो जाती थीं। उसकी ख़ूबसूरती में मर्दानेपन के अलावा

एक अजीब तरह का भोलापन था। था नहीं मगर मालूम होता था; और जब वह अपनी मोटी-मोटी पलकें उठाकर तिरछी निगाहों से किसी लड़की की तरफ़ एक अजीब बेबस सी अदा से देखता था तो वह लड़की रज़िया के शब्दों वहीं फ़ना हो जाती थी। इस वक्त भी इशरत ने कुछ ऐसी ही निगाह से रज़िया की तरफ़ देखा था। उसकी निगाह औरत में ऐसी स्नेह की भावना पैदा कर देती थी कि अक्सर लड़कियाँ उसे एक ही वक्त में प्रेम और मैत्री की मिली-जुली भावना से चाहने लगतीं, और इस क़िस्म की चाहत बड़ी ख़तरनाक़ होती है। रफ़िया को मालूम नहीं था; मगर रज़िया जानती थी और एक ही निगाह में उसने जान लिया था कि इशरत का हुस्न किस क़दर ख़तरनाक़ साबित हो सकता है।

"अरी ! तू कहाँ फँस गयी ?" उसने रफ़िया से पूछा।

"कहीं भी नहीं।" रफ़िया उसके गाल पर हाथ मार के धीरे से बोली।

"मुई, माटी मिली ! बात नहीं सुनती, अपनी कहे जाती है।"

"बेचारा !" रफ़िया ने इशरत की तरफ़ इशारा किया : "शरीफ़ खानदान का है, घर से भाग कर बम्बई में हीरो बनने के लिए आया था, अब इसका दिमाग़ ठिकाने आ गया है, फ़िल्म एक्स्ट्राज़ युनियन में तुम इसे मेम्बर बनवा दो। ठाकुर गजराज तुम्हारी बात सुन लेते हैं।"

"हाँ ! मगर युनियन में पहले ही से पाँच हज़ार मेम्बर हैं।" रज़िया ने एतराज़ किया।

"एक और सही, उर्दू इसकी ज़बान है, बहुत अच्छी बातें करता है। पहले दर्जे का कार्ड इसे मिल जायगा, अपनी रोटी कमा खायेगा।"

"और कार्ड की फ़ीस पन्द्रह रुपये ?"

रफ़िया बोली—"पाँच मेरे पास हैं, दस तू डाल दे।"

"अरे फ़ना हो गयी तू !" रज़िया मुस्करा के बोली—"अरी पगली ! अगर इस तरह से तू इस पर खर्च करेगी तो बिल्कुल मर जायेगी, यह तो तुझे कच्चा खा जायगा, इसकी खूबसूरती पर न जा रफ़्फ़ू !"

"चल हट कमीनी—" रफ़िया झुँझला के बोली—"तुझे तो हमेशा ऐसी ही ऐसी बातें सूझती हैं, इन्सानियत भी कोई चीज़ है।" "मैं भी तो इन्सानियत के नाते कह रही हूँ। तो बस ठीक है, इन्सानियत तक रहना कहीं मुहब्बत तक न पहुँच जाना; वरना नतीजा बुरा होगा।" रज़िया ने समझाया।

"अच्छा अब चलेगी भी कि बातें बनायेगी ?"

"जरा तैयार हो लूं।" रज़िया बोली।

कोई डेढ़ दो घंटे में रज़िया तैयार हुई। उसका सुनहरा रंग, हरी साड़ी में और

भी निखर आया था। बालों के लच्छे जो सर के ऊपर से सीधे आये थे उसके गालों पर पहुँच कर सुनहरे भूमरों में तब्दील हो जाते थे। लिपस्टिक की छाप बहुत गहरी थी; माणक से भी गहरी लाल, कुछ कुछ कासनी रंग उसमें झलकता था, जिससे रज़िया के होठ बड़े ज़हरीले मालूम होते थे। रज़िया अपने होठों की वजह से बड़ी खतरनाक़, बेहद दिलक़श समझी जाती थी।

फ़िल्म एक्स्ट्राज़ युनियन के दफ़्तर में पहुँच कर, जो दादर मेन रोड पर था, रज़िया इशरत और रफ़िया को लेकर सीधी युनियन के अध्यक्ष के दफ़्तर में घुस गयी।

एक्स्ट्राज़ युनियन का अध्यक्ष ठाकुर गजराजसिंह था। गजराजसिंह कांग्रेसी था और खद्दर पहनता था, और सामाजिक फ़िल्मों का हीरो भी रह चुका था। मगर खद्दर पहननेवाले विरोधी विचार रखनेवाले हीरो की क़दर उस वातावरण में कहाँ होती, जो अपने देख-दिखाव में, सामाजिक जीवन में, लिबास में, फर्नीचर में, पालिसी में, जिन्दगी के हर क्षण में हालीवुड की नकल करता था। नतीजा यह हुआ कि गजराजसिंह आहिस्ता-आहिस्ता सामाजिक फ़िल्मों में उपेक्षित होता गया। शराब से, चुगली से, फ़िक्र व फ़न से यानी उन तमाम बातों से गजराजसिंह को नफ़रत थी; जिनसे फ़िल्म इन्डस्ट्री का सारा वातावरण प्रभावित था। मजबूर होकर गजराज सिंह को धार्मिक चित्रों में आना पड़ा; जहाँ पैसे बहुत कम मिलते थे। यहाँ भी अपनी प्रकृति से मजबूर होकर वह ज़्यादा देर तक न टिक सका और धीरे-धीरे बेकार होता गया। अब बीते हुए तीन-चार साल से उसे किसी फ़िल्म में हीरो का काम नहीं मिल रहा था। इससे पहले तो नहीं, लेकिन अपनी बेकारी के दिनों में उसे एक्स्ट्रा लोगों की युनियन बनाने का ख़्याल आया। जब वह खुद परिस्थितियों से मजबूर होकर लगभग एक्स्ट्रा-सा हो के रह गया, तो उसे उन लोगों को निकट से देखने का मौक़ा मिला। ये लोग जो हज़ारों की तादाद में थे, मगर पूरी तरह बना-वटी हालत में थे। ये लोग स्टुडियो-दर-स्टुडियो घूमते थे और एक्स्ट्रा-सप्लायर लोगों के घरों पर चक्कर लगाते थे, काम के लिए। न उनका कोई रेट बँधा हुआ था, न उनकी कोई इज्ज़त थी। एक एक्स्ट्रा-सप्लायर जैसे एक तरह से उनकी जान व माल और इज्ज़त का ठेकेदार था। एक फ़िल्म कम्पनी एक एक्स्ट्रा-सप्लायर को फ़िल्म के दौरान में एक्स्ट्रा लोगों को सप्लाई करने का ठेका दे देती और फिर सप्लायर अपनी मर्ज़ी से अपना रेट लगा के उन लोगों को काम देता। कम्पनी से पन्द्रह रुपया फ़ी एक्स्ट्रा लेता और सात रुपए इधर बाँटता। किसी को सात देता, किसी को पाँच, किसी को दो रुपए ही पर टरका देता। और एक्स्ट्रा औरतों की तो और भी बुरी हालत थी; उन्हें काम करने के अलावा अपनी इज्ज़त भी गवानी पड़ती थी। एक-एक एक्स्ट्रा-सप्लायर ने दर्जनों औरतें पाल रखी थीं, जैसे

दरबेखाने में मुर्गियाँ पाली जाती हैं। कभी एक की प्रेमिका ग़लती से या ग़ुस्से में कुड़कुड़ाती हुई किसी दूसरे एक्स्ट्रा-सप्लायर के पास चली जाती तो दादर मेन रोड पर दंगा शुरू हो जाता, छुरियाँ और चाकू चलने लगते, जिसमें एक एक्स्ट्रा-सप्लायर का दल दूसरे सप्लायर के दल पर सामने होकर हमला कर देता, पुलिस आ जाती, बड़ी मुश्किल से मामला रफ़ा-दफ़ा होता। दादर मेन रोड की बहार इन एक्स्ट्रा लोगों से थी। इस सड़क पर चार स्टुडियो थे। एक छोटे-छोटे केबिनों वाला होटल था, एक मस्जिद थी, एक शराबखाना था, मगर मस्जिद की छाया के नीचे न था। कुछ पान की दूकानें थीं; कुछ लाण्ड्रियाँ। दर्जियों की दूकानें थीं; बाकी सब रेस्तोराँ थे, और पंजाबी तन्दूर थे, और सबके सब मैले-कुचैले गन्दे ग़लीज़। हर दूकानदार एक्स्ट्रा लोगों को उधार देता था और यहाँ पूरा धन्धा उधार पर चलता था। पान के बीड़े से शराब की बोतल तक हर चीज़ कूपन से मिलती थी और अक्सर किसी समय जब कोई एक्स्ट्रा भाग जाता या एक्स्ट्रा-सप्लायर दीवालिया हो जाता तो दूकानदार के हाथ में सिर्फ़ कूपन ही कूपन रह जाते। इन दूकानों के ऊपर के कमरों में अलग-अलग फ़िल्म कम्पनियों की तख़्तियाँ लगी हुई थीं—'दि ग्रेट लुधियाना फिल्म कम्पनी।' सरदार जगतसिंह अहलूवालिया की कम्पनी थी; जिन्होंने लड़ाई के दिनों में मिलिट्री को घी सप्लाई करके एक छोटे-से ठेके में चालीस हज़ार कमाए थे और अब वे चालीस हज़ार से एक फ़िल्म कम्पनी खोले हुए थे।

'रूप-चित्र' लखनऊ के कोई तिवारीजी खोले हुए थे; जिनका बाप मरते हुए उनके लिए एक मकान छोड़ गया था। तिवारीजी इस मकान को बीस हज़ार में ठिकाने लगा के बम्बई आ गये थे। अब यह बीस हज़ार भी ठिकाने लग गया था; लेकिन इस दौरान में उन्होंने एक मशहूर फ़िल्मी नर्तकी कमल से मैत्री कर ली। कमल के पास दस हज़ार नक़द था; जिसे अब वह ठिकाने लगाने की सोच रही थे। उन्होंने कम्पनी के लिए एक नई तख़्ती पर लिखने को दिया था—'कमल-चित्र।'

दादर मेन रोड पर तख़्तियाँ बदलती रहती हैं; और जिस तेज़ी से फ़िल्म कम्पनी की तख़्तियाँ बदलती हैं, उससे ज़रा कम तेज़ी पर नीचे दूकानों की तख़्तियाँ बदलती थी; मगर बदलती ज़रूर थीं। क्योंकि पूरे का पूरा बाज़ार फ़िल्म इण्डस्ट्री पर ज़िन्दा था। इसलिए उसकी सच्ची ज़िन्दगी उसके सही सामाजिक दृष्टिबिन्दु और उसके पूरे वातावरण का प्रतिनिधित्व करती थी। दादर मेन रोड पर खड़े होकर आप आधे घण्टे में देख सकते थे कि हिन्दुस्तानी फ़िल्म इन्डस्ट्री की क्या हालत है। हालांकि इसके स्टुडियो वरली, दादर और मलाबार हिल से लेकर मलाड तक मीलों दूर तक फैले हुए थे। मगर दादर मेन रोड के इस आधे फर्लांग के फ़ासले में आप इस मीलों दूर फैली हुई असलियत को एक जगह देख सकते थे।

बहुत आहिस्ता से, बहुत ही धीरे-धीरे से, बड़े सब्र और मज़बूती से और कई एक नाकामियों के बाद गजराज ने एक्स्ट्रा लोगों की युनियन बनाई थी। शुरू-शुरू में उसे बहुत-सी नाकामियों का मुँह देखना पड़ा। एक्स्ट्रा-सप्लायर लोगों की तरफ़ से बड़ा विरोध हुआ। कई लोगों ने उसे जान से मार देने की धमकी भी दी। उस पर एक बार चाकू से हमला भी किया गया। मगर गजराज बड़ी प्रसन्नता से सब कुछ सहता गया। ठीक है, अपने काम में उसे बड़ी हिम्मत करनी पड़ी। अपने उसूलों से बहुत हट के यह युनियन बनानी पड़ी। क्योंकि यह कामगारों की सही युनियन न थी। इसमें एक्स्ट्रा-सप्लायर लोग भी शरीक थे। इस तरह से कि वैसे एक्स्ट्रा लोग युनियन के कार्ड पर फ़िल्म कम्पनियों में जाते थे। वैसे उनके रेट भी बँध गये थे; मगर अब भी वह एक्स्ट्रा-सप्लायर की मार्फत ही जाते थे और स्टुडियो-वाले और फ़िल्म कम्पनियोंवाले अब भी एक्स्ट्रा लोगों का मुआवज़ा सप्लायर को ही अदा करते थे। ठीक है, सप्लायर लोगों का कमीशन भी अब उनके रेट की तरह बँध गया था। मगर चूँकि रक़म कम्पनी से सप्लायर को अदा होती थी उसी का पल्ला हमेशा भारी रहता। वह कहता—रक़म नहीं मिली। कभी कहता कम मिली है। कभी कहता इतने ले जाओ। इतने गये; लेते हो तो ले जाओ नहीं तो यह भी गये। और औरतें ? जो देखने में सुन्दर थीं; वह तो कुछ बेहतर हालत में थीं और जो रफ़िया की तरह युनियन के कार्ड पर भरोसा करती थीं, वह धक्के खाती थीं।

और सप्लायर लोग और कम्पनी के लोग और स्टुडियो के लोग यानी सब लोग उनसे नाख़ुश रहते थे और भई ठीक भी है; बेअक़्ल, बेदिमाग़, सीधी बकरी, जैसे लोग कहने में आख़िर किसलिए हैं ?

गजराज सिंह को इन तमाम कमियों का पता था; मगर वह कहता—"देखो ! इतना तो हुआ; अब हौले-हौले इससे आगे भी कुछ हो जायेगा। एक दिन में तो बम्बई नहीं बसी थी। एक दिन में तो राम ने भी सीता को रावण से नहीं जीत लिया। फिर मैं तो एक मामूली आदमी हूँ। गजराज ने रज़िया को दफ़्तर के अन्दर आते हुए देखकर ज़ोर का क़हक़हा लगाया, और उसे काग़ज़ का एक पुर्ज़ा दिखा के कहने लगा—"ले, एक और कम्पनी तेरे हाथ से गयी।"

"क्या हुआ ?" रज़िया बड़े शान्त लहज़े में बोली।

"यह 'चन्दा फिल्म प्रोडक्शन' वालों की तरफ़ से नोटिस आया है, उन्होंने लिखा है कि उनकी कम्पनी में एक्स्ट्रा लोगों को भेजते वक़्त रज़िया को कभी भर्ती न किया जाय।"

रज़िया मुस्कराई। अबतक कोई पन्द्रह कम्पनियाँ उसे अपनी ब्लैक लिस्ट पर रख चुकी थीं।

गजराज ने रज़िया को समझाते हुए कहा—"तू ऐसा क्यों करती है रज़िया ?"

मगर रज़िया क्या बुरा करती थी, वह यही करती थी न; कि जब कभी उसे किसी कम्पनी में काम मिलता; और चूंकि वह बहुत ख़ूबसूरत थी, इसलिए उसे जल्दी काम मिल जाता; और फिर डाइरेक्टर उसका चुनाव करते हुए उसे अलग से अपने कमरे में बुलाकर एक बहुत उम्दा, बहुत अच्छा, याने बस हिरोइन से कुछ ही कम पाये का रोल देने का वायदा करते, अगर ? और अब इस अगर के तो दो ही जवाब हो सकते थे। याने एक तो जूता ऊँची एड़ीवाला, वरना जुहू.... । अब रज़िया की यह चालाकी थी कि उसने एक तीसरा रास्ता ढूँढ़ निकाला था। याने न वह जूता मारती, न जुहू जाती, बल्कि जाने का सिर्फ़ वायदा कर लेती और काम हासिल कर लेती और उसके बाद देर तक मुसीबत को टालती रहती। और जब मुसीबत बिल्कुल मुसीबत बन कर सामने खड़ी हो जाती तो साफ इन्कार कर देती। इस सूरत में लोग बहुत नाराज होते थे। वे लोग उसका पार्ट तस्वीर से काट देते। उसका कान्ट्रैक्ट कैन्सिल कर देते। मगर रज़िया को इन बातों की परवाह न थी; क्योंकि तब तक वह क़ाफ़ी रुपया उधर से खींच चुकी होती। इसलिए तो उसके पास, हालांकि वह बहुत कम तस्वीरों में में नज़र आती थी, उम्दा कपड़े थे, अच्छे ज़ेवर थे, कलाई घड़ी थी, एक छोटा-सा फ्लैट था, एक दिलदार था जिस पर वह सौ जान से फिदा थी; और जिससे वह शादी करना चाहती थी।

अब अगर रज़िया यह न करे तो क्या करे ? वह रफ़िया की तरह लट्ठमार होती तो अब तक भूखी मर जाती।

रज़िया ने अपने होठ बड़ी नफ़रत और घृणा से हिला के कहा—"हुँह ! बहुत सी फ़िल्म कम्पनियाँ पड़ी हैं गजराज सिंह जी ! और जब पुरानी फ़िल्म कम्पनियाँ बन्द हो जायेंगी तो उनकी जगह नई फ़िल्म कम्पनियाँ आ जायेंगी, आती ही रहती हैं। कितनी फ़िल्म कम्पनियाँ मुझे ब्लैक लिस्ट पर लायेंगी, जरा सोचो तो गजराज जी ! कोई तीन-चार सौ तो फ़िल्म कम्पनियाँ होंगी—अरे ! जब तक तो मैं बूढ़ी हो जाऊँगी।"

गजराज ने कहा—"मगर तू यह चार-सौ बीस क्यों करती है ?"

रज़िया ने दृढ़ लहजे में कहा—"ऐसों के साथ ऐसा ही करना चाहिए, ठाकुर जी ! तुम तो बड़े भोले हो। अच्छा छोड़ो यह खटराग और रफ़िया के इस जवान को एक्स्ट्रा यूनियन में भर्ती कर लो।"

"मगर ?" गजराज सिंह ने कुछ कहना चाहा। मगर रज़िया ने उसकी मेज़ पर से एक खाली कार्ड उठाके इशरत को दे दिया; और कहा—"जल्दी से इसे भर दो।"

फिर वह गजराज सिंह से मुख़ातिब होके बोली—"लो अपने पन्द्रह रुपये। लड़का ख़ूबसूरत है, ग्रेजुएट है, उर्दू इसकी ज़बान है, अव्वल दर्जे का कार्ड बना दो, तुम्हें ज़िन्दगी भर दुआ देगा।"

६

रफ़ियां की आत्मकथा

कार्ड लेकर जब इशरत बाहर निकला तो रज़िया ने उसकी जान-पहचान दो-चार दूसरे एक्स्ट्रा भाइयों से करा दी, और फिर मुड़ के रफ़िया से कहने लगी—"वह नौबहार प्रोडक्शन वालों ने बुलाया है, उन्हें डांस की कुछ लड़कियाँ चाहिए, चलो—" रफ़िया ने इशरत से कहा—"मैं चलती हूँ, अब तुम ख़ुद घर पर आ जाओगे न ?"

"हाँ।"

रफ़िया जब चलने लगी तो इशरत उसके पीछे दौड़ा-दौड़ा गया। रफ़िया ने पूछा—"क्या बात है ?" यकायक इशरत ख़ामोश खड़ा रह गया। रफ़िया ने फिर पूछा—"क्यों बोलो, क्या बात है ?" आख़िर बड़ी मुश्किल से इशरत ने कहा—"वह बस का किराया ?"

"हाय ! मैं तो भूल ही गयी थी, तुम्हारे पास तो बस का किराया भी नहीं है।"

रफ़िया ने इशरत को एक अठन्नी दी ! अठन्नी देते हुए रफ़िया की आँखों में आँसू आ गये, बेचारा !

बाद में बस में बैठ कर नौबहार प्रोडक्शन की तरफ़ जाते हुए रज़िया ने उससे कहा—"कम्बख़्त ! ज़्यादा तरस न खाया कर। मर जायेगी।"

"क्या करूँ ?" रफ़िया बोली—"मुझे बेचारे पर बड़ा तरस आता है।"

रात को जब रफ़िया डान्स की रिहर्सल के बाद घर लौटी तो इशरत अभी तक आया न था; हालांकि ग्यारह बज चुके थे। रफ़िया कुछ परेशान-सी हुई, कहाँ गया, बम्बई में नया आया हुआ है, कहीं रास्ता न भूल गया हो; मगर ऐसा बच्चा भी नहीं, फिर उसके दिल में रज़िया की बातें घूमने लगीं। अजीब-अजीब तरह के विचार और शंकाएँ दिल में आने लगीं, रज़िया ठीक ही कहती है, इन मर्दों का कोई भरोसा नहीं। बारह बज गये, एक बज गया, दो बज गये। रफ़िया फ़र्श पर लेटी अपने कमरे में इंतज़ार करती रही। एक कोने में उसने इशरत के लिए तकिया और चादर बिछा दी थी। फ़र्श को ख़ूब झाड़ू से साफ़ किया था, डब्बे में उसका

खाना बन्द कर के रख दिया था, अम्मा को रोशनी में नींद नहीं आती, इसलिए उसने बत्ती गुल कर दी थी। मगर रफ़िया की आँखों में नींद न थी। भला नींद क्यों नहीं आती ? वह क्यों एक अजनबी का इंतजार कर रही है ? वह कौन होता है उसका ? वह तो कुछ भी नहीं जानती, उसके सम्बन्ध में। जानने से क्या होता है, उसे अपने बारे में इतना कुछ मालूम था—एक शरीफ़ मुस्लिम घराने की बेटी। बाप एक छोटा-सा जागीरदार, घर में एक मोटर। अब्बा के यहाँ लड़का कोई न था, पहले एक लड़की हुई जो ब्याह दी गयी, फिर बहुत समय के बाद रफ़िया हुई, मगर अब्बा ने मुझे लड़का ही समझा। हमेशा लड़कों की तरह ही रखा और क़मीज़ और पाजामे में और तुर्की टोपी में। मुझसे मर्दों की तरह बातें कराते। फिर अब्बा मर गये, वह मोटर भी चली गयी, वह मकान भी चला गया, फिर बड़ी बहन का शौहर मर गया और अम्मा रफ़िया और बड़ी बहन के पाँच बच्चों को लेकर हैदरगुड़े के एक छोटे-से ग़लीज़ मकान में चली आयीं, जिसके आँगन में एक जाम का पेड़ था। अम्मा ने एक बहुत ही ख़ूबसूरत मर्द से रफ़िया की शादी कर दी, असलम आठवीं फेल था; और एक बुड्ढे जागीरदार का लड़का था। अच्छा है, शादी अपने ख़ानदान में हुई। लड़का अपने ख़ानदान का है, गो आवारा है, बदचलन है और बेकार है, मगर है तो अपने ख़ानदान का। ख़ानदान की इज्ज़त रह गई। अम्मा ने बड़ा शुक्र अदा किया और कैसी-कैसी दुआ की है—अल्ला अब जोड़े को खुश रखे। चन्द दिन तो यह जोड़ा खुश ही रहा, मगर फिर पुलिस ऐक्शन हो गया। और असलम के पास चूंकि कोई काम न था, इसलिए वह रज़ाकारों में भर्ती हो गया। इसलिए पुलिस ऐक्शन में वह शहर से बाहर भाग गया नन्दपेठ में, नन्दपेठ में भी पुलिस ऐक्शन हुआ, चुनांचे असलम मारा गया। घरवालों को उसकी लाश नहीं मिली, मगर मौत की ख़बर मिल गयी। रफ़िया बहुत रोई-धोई हालांकि मरने से चन्द महीने पहले असलम ने उसे एक बहुत ही बुरी बीमारी दी थी, जो वह कहीं बाहर से ले के आया था। रफ़िया तो गल-सड़ के कोयला हो गयी होती, अगर अम्मा को वक़्त पर पता न चल जाता, और हैदरगुड़े के हकीम सुल्तान साहब हमदर्दी से इलाज न करते।

फिर भी इतने इलाज के बाद भी रफ़िया की रंगत जो पहले गेहुँआ थी, अब सांवली सी हो गयी थी और उसके चेहरे पर अक्सर दाने निकल आया करते थे। फिर भी रफ़िया अपने ख़ाविन्द के मरने पर रोई थी, कुछ भी हो उसका ख़ाविन्द था और लोग कहते थे कि उसे रोना चाहिए। हालांकि अन्दर से उसे अपने ख़ाविन्द से सख़्त नफ़रत पैदा हो गयी थी, मगर अब क्या हो सकता था ! वह रोई और उसे फ़ाके भी करने पड़े, क्योंकि वे लोग इज्ज़तदार थे। पुलिस ऐक्शन के

दिनों में और उसके बाद भी वह कई दिनों तक घर से बाहर न निकली। आंगन में जाम का पेड़ था, रफ़िया को याद आया कई बार साग न होने से उसने रूखी रोटी के साथ जाम के फल खाये थे, फिर जाम भी खत्म हो गये और घर में कुछ न रहा। एक दिन—बल्कि एक रात रफ़िया घर से निकल भागी और सीधी एक वेश्या के पास पहुँची; क्योंकि वह एक शरीफ़ इज्ज़तदार घराने की औरत थी, और इसलिए उसे कोई काम न आता था। न वह चावल कूट सकती थी न बर्तन साफ़ कर सकती थी, न किसी मिल में काम कर सकती थी, इसलिए सीधी वेश्या के पास गयी, और फिर जब उसने ग्राहक को देखा तो लौट आयी, जाने क्या हुआ, क्यों उसकी आत्मा ने, उसके शरीर ने, उसकी हस्ती के ज़र्रे-ज़र्रे ने उस काम में ऐसी बग़ावत की कि रफ़िया मजबूर होकर रोती हुई वहाँ से वापस आ गयी। उसे मालूम हो गया कि वह यह पेशा अपना नहीं सकती, और जब उसने यह देखा कि वह निकम्मी औरतों का यह धन्धा भी नहीं कर सकती तो फिर वह अपनी अम्मा की सलाह मशविरे के खिलाफ़ पर्दे से बाहर आ गयी। बाहर की दुनिया में उसने सोचा वह मर्दों की दुनिया में औरतों के लिए जगह बनायेगी, इसलिए कि उसे ज़िन्दा रहना है और चूंकि अब वह वेश्या भी नहीं बन सकती तो उसे मजबूरन एक शरीफ़ औरत की तरह रहना होगा, कोई न कोई काम करना होगा। मगर हैदराबाद में रहकर अपनी बिरादरी के उसूलों को तोड़ कर, वह बिरादरी जो उसके लिए कुछ करने के लिए तैयार न थी, वह रह कैसे सकती थी ? फिर भी रेडियो पर उसे कुछ काम मिल गया। और रेडियो पर उसकी पहचान पुलिस ऐक्शन के दिनों में हो गयी थी, जब उसने अपने ख़ाविन्द के साथ में रेडियो पर एक ड्रामा में काम किया था, और हैदराबादी ज़बान में सरदार पटेल के ख़िलाफ़ एक फीचर भी लिखा था। ग़नीमत है कि अब रेडियोवालों को उसका कुछ पता न था, क्योंकि बहुत से पुराने लोग चले गये थे, परमात्मा जाने खुशामद थी कि हकीक़त—उसकी आवाज़ बहुत अच्छी है, इसलिए उसने चन्द मास रेडियो पर काम किया, और जब यहाँ भी एक साहब ने उससे मुहब्बत ज़ाहिर की, जिनका दिलबहलाव ही मुहब्बत ज़ाहिर करना था और जो मुहब्बत से अपना जी इस तरह बहलाते थे, जैसे लोग फ़ुर्सत के वक़्त में हाकी, फुटबाल, गन्जीफ़ा या चौसर से अपना जी बहलाते हैं, तो रफ़िया को इस मुहब्बत के शब्द से एक अजीब नफ़रत सी पैदा हुई। अभी उसकी रगों में पिछली मुहब्बत का ज़हर बाक़ी था, जो उसके शौहर ने उसे दिया था। इतनी जल्दी वह किसी

दूसरी जगह कैसे मुहब्बत कर सकती थी ! लाचार रफ़िया को हैदराबाद छोड़ कर बम्बई आना पड़ा, और फ़िल्म कम्पनियों का सहारा लेना पड़ा ।

× × ×

जागते जागते सुबह हो गई। इस रात रफ़िया ने अपनी सारी ज़िन्दगी फिर से पढ़ डाली, जिसे वह कई बार पढ़ चुकी थी। उसके दिल में जो सिहरन पैदा हुई थी, आँखों के कोने में जो एक आँसू झलमलाया था, अन्धेरे में कहीं से रोशनी की एक किरण आई थी, उसके बाजुओं में जो एक उम्मीद सी कुसमुसाई थी, यकायक वह उसके विचार से टूट-टूट-सी गयी। वह अपने जिस्म के बन्द बन्द में उसे टूटता हुआ देख सकती थी, सुन सकती थी, चख सकती थी। हाय कितना तीखा ज़ायका था ! मगर ज़िन्दगी तो होती ही ऐसी है, हज़ारों आदमियों की ज़िन्दगी, लाखों करोड़ों आदमियों की ज़िन्दगी। खूबसूरत सपना तो एक अंगड़ाई की तरह होता है, और सर से पाँव तक सारे जिस्म को झिझोड़ता हुआ चला जाता है।

चला जाता है, और फिर कभी नहीं आता !

इशरत की तरह—

रफ़िया का जिस्म गुँधे आटे की तरह कचकचा सा हो रहा था।

एकाएक दर्वाज़े पर दस्तक हुई।

अम्मा ने दर्वाजा खोला—

इशरत दर्वाज़े पर खड़ा था, मुस्कराता हुआ, झिझकता हुआ अन्दर आया रफ़िया के पास। उसके चेहरे पर मेक-अप के निशान थे।

इशरत ने कहा—"मुझे रात के लिए एक मेकअप मिल गया था, बोलने का पार्ट था; पैंतीस रुपये का। सप्लायर ने पाँच रुपये खाने के लिए एडवान्स दिये...."

इशरत रुक गया, फिर उसने अपनी जेबों से टटोल-टटोल कर पाँच रुपये का एक पुराना-धुराना सा नोट निकाला, और उसे रफ़िया के हाथ में नज़रें नीची करके दे दिया।

रफ़िया का दिल काँपने लगा, उस हल्के से, कमज़ोर से नोट की तरह जो उँगलियों में काँप रहा था। उसके रोम रोम में खुशी की लहरें दौड़ गयीं, उसका जी चाहा कि वह इशरत का सर झुका के अपने सीने पर रख ले, जो अब इस तरह उसके सामने आँखें नीची करके खड़ा था। मगर उसने अपने आप पर ज़ब्त कर लिया और बड़े धीरज से बोली—"तुम्हारे लिए खाना रात भर से रखा है।" उसके बाद चूल्हे की तरफ़ खाना गरम करने के लिए चली गयी।

१०

बेचारा अकरम

जब अकरम के दिन अच्छे थे और खार में रहता उस वक्त उसके पास चार कमरे का एक उम्दा फ़्लैट था, ग़लीचे थे, उम्दा फ़र्नीचर था, रेडियोग्राम, रेफ्रीज्रेटर, टेलीफ़ोन, चाँदी के बर्तन, किताबों की लाइब्रेरी सभी कुछ मौजूद था। उसकी बादामी रंग की डाज उसे अपनी जान से भी प्यारी थी, मगर जब उसकी तस्वीरें फेल हुईं, और जब प्रोड्यूसरों, डिस्ट्रीब्यूटरों और फिनान्सरों ने उसके सामाजिक उद्देश्य को रुपये के तराज़ू में तौला, और उसमें कम वजन पाया तो इंडस्ट्री ने धीरे धीरे उससे हाथ खींच लिया। धीरे धीरे उसके फ़्लैट की चीज़ें, जिन्हें उसने बड़े शौक़ से ख़रीदा था, बाज़ार में उठने लगीं। रेडियोग्राम गया, रेफ्रीज्रेटर गया, चाँदी के बर्तन गये, आख़िर में डाज गाड़ी भी गयी। किताबें उसने आख़िर तक बचा के रखीं, मगर जब वह फ़्लैट का किराया दस माह तक लगातार न दे सका तो मालिक मकान ने, जो असाधारण तौर पर शरीफ़ था, उसकी किताबों की लाइब्रेरी अपने कब्ज़े में कर ली और उसे फ़्लैट से बाहर निकाल दिया और उससे कह दिया कि जब भी वह फ़्लैट का किराया अदा कर देगा, उसे उसकी लाइब्रेरी वापस मिल जायेगी।

इस बात को आज दो साल होने को आये, अकरम अभी तक अपनी किताबों की लाइब्रेरी न छुड़ा सका था, अपनी किताबों के छिन जाने का उसे बहुत बड़ा दुःख था। अब वह खार से परेल आ गया था जहाँ उसकी बड़ी बहन रशीदा अपने तीन बच्चों के साथ एक कमरे में रहती थी, जगह बहुत कम थी, क्योंकि उसी कमरे में बच्चे सोते थे, लड़ते झगड़ते और पढ़ते थे। उसी कमरे में रशीदा खाना पकाती थी, अपने बच्चों के कपड़े सीती थी, कपड़े धोती थी, कमरे के एक कोने में नल था, जिसके गिर्द दो फ़ुट ऊँची दीवार थी, जो पर्दे के लिए अपर्याप्त थी। लाचार रशीदा ने पर्दा टाँक कर कुछ थोड़ा-सा इन्तज़ाम किया था। कमरे से लगी हुई एक बाल्कोनी थी, अकरम उसी बाल्कोनी में सोता था। यहीं पर उसने अपने कपड़ों का ट्रंक और चन्द किताबें एक एक पर रख ली थीं। बाल्कोनी में खुली हवा आती थी, और सोने के लिए बहुत उम्दा जगह थी, और उसके सामने की बिल्डिंग की दर्जनों ऐसी बाल्कोनियाँ थीं—जहाँ ज़िन्दगी, उसकी अपनी ज़िन्दगी की तरह धड़ से ऊपर नंगी या सिर्फ़ एक बनियान पहने हुए नज़र आती थी। आदमी कपड़े पहन कर कुछ

और ही हो जाता था, ऐसा मालूम होता है, जैसे उसके अनुभवों और विचारों और भावनाओं ने भी एक गिलाफ़ पहन लिया हो। लेकिन बाल्कोनी में आदमी कपड़े उतार कर खाली एक बनियान और तहमद पहने, या एक बाडी और पेटीकोट पहने, गर्मियों में पंखा झलते हुए या बरसात के दिनों में टाट की बोरियाँ बाँधते हुए कुछ और ही नजर आता था। दूसरे इन्सानों को इस क़दर क़रीब, इस क़दर खुले तौर पर देखकर उसे हैरत होती थी कि आजतक किसी को इन्सानी मामलों का सबूत देने के लिए बाल्कोनी की मिसाल देने का ख्याल क्यों नहीं आया ! छः नम्बर की बाल्कोनी में एक फिलास्फर रहता था, पाँच नम्बर में एक मिल-मज़दूर रहता था, चार नम्बर में वह खुद एक फ़िल्म डाइरेक्टर रहता था, तीन नम्बर में एक बढ़ई रहता था, दो नम्बर में एक अखबार बेचनेवाला रहता था, एक नम्बर में रेलवे का एक टी. टी. रहता था। लेकिन जब वे लोग बाल्कोनी में तहमद या धोती पहने, बनियान या बनियान के बग़ैर खड़े होते थे, या अपने बीवी-बच्चों से बात करते थे, या दाँत माँजते हुए दिखाई देते थे, तो इस क़दर एक ही कतार में खड़े दिखाई देते थे, कि उनमें भेद करना मुश्किल हो जाता। पता नहीं इन राजनीतिज्ञों ने युद्ध के बजाय एकता से फासिज्म को खत्म करने का तरीका क्यों नहीं सोचा ! बाल्कोनी के दृश्यों को देखते देखते अकरम का पक्का विश्वास हो गया था कि अगर किसी तरह हिटलर को नंगा करके या उसे सिर्फ़ एक बनियान और एक लंगोट या तहमद पहना के एक बाल्कोनी में खड़ा करके लाखों आदमियों के सामने भाषण करने के लिए कहा जाता, तो फासिज्म उसी दिन खत्म हो जाता, लोग हँसते-हँसते दोहरे हो जाते। और जब वह अपने सीने के उलझे हुए बालों पर अपना हाथ रख के अपनी बटरफ्लाई मूँछ को हिलाते हुए यह कहता—"जर्मन आर्य नसल दुनिया के इन्सानों की श्रेष्ठ नसल है," तो खुद जर्मन लोग टमाटर और गन्दे अण्डे फेंक-फेंक के उसका बुरा हाल कर देते। मुसीबत तो यह है कि इस क़िस्म की बातें बड़े-बड़े सजे हुए प्लेटफार्मों पर चमकती रोशनियों में, दर्जनों माइक्रोफोन के सामने तमगे लटकाए हुए फ़ौजी वर्दियों में सजे हुए सीनों से निकलती हैं, फिर बैंड बजते हैं, मार्च होते हैं, टैंक चलते हैं, लाखों आदमी क़त्ल होते हैं, फिर कहीं जाके यह झगड़ा दबाया जाता है। हालाँकि इस काम के लिए सिर्फ़ एक बाल्कोनी काफ़ी है। परमात्मा जाने इन्सानों को कब अक़्ल आयेगी ?

मगर आज तो अकरम खुद यह सब कुछ नहीं सोच रहा था, आज तो वह खुद बाल्कोनी में औंधा मुँह किये लेटा था, और रशीदा उसे दो बार आके जगा गयी थी, वह—ऊँ-आँ करके फिर औंधा हो जाता था।

रशीदा एक दुबली-पतली औरत थी। रंगत बेहद पीली थी, लेकिन आँखें बड़ी

बड़ी और स्याह ! उन आँखों को देख कर एक अजीब क़िस्म की नपी-तुली ख़ुशी का अनुभव होता है। होठों के किनारे हर वक्त मुस्कराते रहते हैं। मगर यह कोई बेफ़िक्र मुस्कराहट न थी, यह तो ऐसी मुस्कराहट थी, जिसने दुनिया के सारे ग़म देख कर उस पर रोने के बजाय हँसना सीख लिया हो, या व्यंग्य करना सीख लिया हो। रशीदा का बोलने का ढंग बड़ा मुलायम और मीठा था। लेकिन इस लहजे के अन्दर कितने तेज काँटे छिपे हुए हैं, इसका अनुभव बहुत ही समझदार लोग कर सकते हैं और कभी कभी 'अरे !' कह के रह जाते; क्यों कि उन्हें बाद में पता चलता कि रशीदा अपने मुलायम और नरम लहजे में कैसी तेज बात कह गयी।

रशीदा ने पूछा—"दो मर्तबा जगा चुकी हूँ, आखिर उठोगे नहीं।"

"नहीं।" अकरम वहीं बाल्कोनी में औंधा पड़ा पड़ा बोला।

"जोशी की पिक्चर का मुहूर्त्त है इसलिए ?"

"क्या मतलब ? क्या मतलब ?" अकरम जल्दी से उठ के बोला। मगर रशीदा ने कोई जवाब न दिया, वह उस वक्त अपनी धुली हुई सलवार और कमीज़ अरगनी पर टांग रही थी और अब नन्हें जमील को नल पर नहलाने के लिए ले जा रही थी।

रशीदा ने कुछ नहीं कहा, मगर यूँ तो उसने सब कुछ कह दिया था, वह सचमुच आज बिस्तर से उठना नहीं चाहता था। आज जोशी जी की पिक्चर का मुहूर्त था। गो सेठ बांकड़िया ने उसकी पिक्चर का मुहूर्त करने का वायदा किया था, मगर वायदा जाने कब से टलता आ रहा था। "और जाने कब तक और टले" रशीदा नल पर जमील को नहलाते हुए बोली।

"क्या-क्या ?" अकरम ने भयभीत स्वर में कहा। रशीदा कभी कभी उसके उलझे हुए विचारों को यूँ पढ़ लेती थी जैसे वह आदमी न हो, एक खुली हुई किताब हो।

अकरम ने कहा—"तुम चाय बना लो, मैं ज़रूर जाऊँगा।"

रशीदा भी यही चाहती थी, मगर नहीं चाहती थी कि उसे यूँ साफ़ साफ़ कहना पड़े। उसने जल्दी से चाय तैयार की, इतने में अकरम भी हाथ मुँह धोकर कमीज़ और पतलून पहन तैयार हो गया, जब उसने चाय पी ली, तभी रशीदा ने एक अठन्नी उसकी हथेली पर रख दी।

अठन्नी को देखते ही उसे याद आया, कितने दिनों से वह रशीदा से वायदा कर रहा था कि वह सेठ से अपने घर के लिए कुछ रक़म मांगेगा, मगर वह क्या करे, उसकी पिक्चर ही शुरू नहीं हो रही थी, और जब तक पिक्चर शुरू न हो जाय, वह सेठ से रुपया मांगते डरता था। शुरू शुरू के तीन चार माह तो उसने तनख्वाह माँग ली थी, लेकिन अब पिछले पाँच माह से उसने सेठ से एक पाई तलब नहीं की

थी। पहले यह ख्याल रहा कि सेठ खुद देगा और जब सेठ ने तनख़्वाह न दी तो अकरम ने सोचा अच्छा है, सेठ मेरी पिक्चर किसी तरह शुरू कर दे फिर इकट्ठी रकम मांग लूंगा। अब पिक्चर भी शुरू नहीं हो रही थी और तनख़्वाह भी नहीं मिलती थी, ऐसे कैसे काम चलेगा? रशीदा की निगाह कह रही थी—'तू कब तक बहन के आसरे पर.... ?'

"नहीं नहीं।" अकरम बोला—"मैं आज मुहूर्त्त के बाद ज़रूर सेठ से बात करूँगा।"

रशीदा कुछ न बोली। कई बार अकरम ने तय किया था, वह सेठ से बात करेगा, मगर रात को वह इस तरह मुँह लटकाये हुए वापस आ जाता था कि रशीदा फिर कुछ न कह सकती। काश! वह कुछ कह सकती। काश, उसने ज़िन्दगी को इस क़दर न समझा होता।

कैसी व्यंग्य भरी मुस्कराहट थी रशीदा आपा की। जैसे किसी ने ज़िन्दगी के सारे दुःखों और तकलीफ़ों, मुसीबतों और आफ़तों को खींच करके उनका इत्र निकाल लिया हो और उसे एक आकर्षक मुस्कराहट की सूरत में रशीदा के होठों पर फैला दिया हो; ऐसी भी भला क्या मुस्कराहट हुई। अकरम कभी कभी तो इससे परेशान हो जाता। मुझे ऐसी मुस्कराहट बिल्कुल पसन्द नहीं, इस क़दर सूझ-बूझ रखनेवाली हर बात फ़ौरन समझ जाने वाली। मुझे तो शमशाद की मुस्कराहट पसन्द है, बेफ़िक्र मुस्कराहट। बहार में उड़ती हुई तितली की तरह चंचल और खुशरंग। यह मुस्कराहट जो कुछ सोचती ही नहीं।

रशीदा ने कहा—"मुहूर्त में ज़रूर जाओ, शमशाद भी वहाँ होगी न।"

अकरम ने फिर चौंक कर अपनी बहन की तरफ़ देखा। रशीदा पलट कर अपने नन्हें बेटे मासूम को लिहाफ़ ओढ़ाने लगी। मासूम के दोनों फेफड़ों में निमोनिया घर कर चुका था, वह बड़ी मुश्किल से खांस रहा था।

अकरम सर झुका कर कमरे से बाहर निकल गया।

वह क्यों नहीं बदल सकता? वह क्यों 'लड़का या लड़की', 'दुनिया गोल-मटोल है,' 'सात मसखरे एक-एक बीवी' नहीं बना सकता। वह क्यों 'पहली मुलाकात है, दूसरी करामात है।' ऐसे विषय नहीं सोचता? वह क्यों इन्सान की भलाई के पीछे लट्ठ लिये घूम रहा है? वह क्यों अपनी भलाई की नहीं सोचता? वह क्यों लड़कियों को ले के जुहू पर नहीं जाता? वह क्यों इस क़दर रूखा और गम्भीर बना रहता है कि लोग उसे सूखा हुआ आलू कहने लगे हैं! दुनिया में क्या वही एक इंटलेक्चुअल रह गया है? बड़े-बड़े गंजे सरोंवाले, औंघे दिमाग़वाले, उल्टी खोपड़ियोंवाले इन्सान यहाँ बसते हैं, जिनकी तिजोरियों में भी लाखों रुपया

है, वे क्यों समाज की भलाई के लिए तस्वीरें बनाएं ? वे सिर्फ़ उथली छिछोरी बेसिर पैर की बातें करके नाचनेवाली और कूल्हे मटकानेवाली कला देकर अपना घर भर रहे हैं। और एक तुम हो मियाँ अकरम कि सारे संसार का दर्द अपने दिल में लिये फ़ाक़े कर रहे हो, मियां कुछ अक़्ल से काम लो....!

वह रास्ते में एक राहगीर से टकरा गया, राहगीर घूर के उसे देखने लगा। अकरम ने जल्दी से कहा—"सारी !"

"सारी का बच्चा !" राहगीर ग़ुस्से से चिल्लाया, मगर अकरम आगे बढ़ गया। बात यह है कि इस समाज में रहके जसे इस समाज के तरीक़े के मुताबिक काम करना होगा, इस क़िस्म की बातों के लिए जिस क़िस्म की राजनीतिक सूझ-बूझ की ज़रूरत है, वह इस इंडस्ट्री में क़तई नहीं, फिर खाली थनों से दूध निकालने की कोशिश वह क्यों कर रहा है, यह बेवक़ूफ़ी नहीं तो और क्या है ?

जोशी जी की तरफ़ देखो, 'डम्फू' शुरू हो चुकी, आज 'डमरू' का मुहूर्त कर रहे हैं। तीन हिरोइनों को साथ लिये फिरते हैं और एक जनाब अकरम हैं कि क़ौम के ग़म में चक्रम हुए जा रहे हैं....चक्रम....चक्रम....अकरम ने सोचा चक्रम कैसा नाम है ? उम्दा बढ़िया एक दम हिट ! अकरम खुशी से उछल पड़ा, और उछलते ही बिजली के खम्भे से टकराया, आसपास के राह चलते हुए लोग उस पर हँस पड़े। वह तो ख़ैरियत हुई दलजीत स्टुडियो क़रीब आ गया था और अकरम जल्दी से अपनी सनक छुपाये हुए, हाथ से माथे को रगड़ते हुए दलजीत स्टुडियो के गेट में दाखिल हो गया।

अकरम को सर नीचा करके चलने की बहुत बुरी आदत थी, चलते हुए आगे पीछे कुछ नहीं देखता था, बस अपनी धुन में डूबा हुआ चला जा रहा था। अकरम ने सोचा अब उसे अपनी ज़िन्दगी का सारा ढर्रा बदल देना पड़ेगा। आज से वह सर उठा के चलेगा, बढ़ बढ़ के बातें करेगा, मुँह पर घूंसा मार के, गालियाँ बक के प्रोड्यूसरों को प्रभावित किया करेगा। ये लोग शराफ़त से देनेवाले नहीं हैं, उनके सामने तो उसे दूसरा जोशी जी बनना पड़ेगा।

स्टेज नम्बर तीन में मुहूर्त था। मुहूर्त में अभी पंद्रह मिनट बाकी थे, मगर स्टेज फ़िल्म डाइरेक्टरों, प्रोड्यूसरों, फिनान्सरों, डिस्ट्रीब्यूटरों, दलालों, एक्स्ट्रा काम करनेवालों और छोटे मोटे रोल करनेवालों से भरा हुआ था। फ़िल्म इंडस्ट्री में हर रोज़ कहीं न कहीं मुहूर्त होता रहता है, इसलिए बहुत से बेकार लोगों ने यही शग़ल इख़्तियार कर रखा था कि सुबह का नाश्ता मुहूर्त पर जाके करेंगे, कोकाकोला और लड्डू तो खाने को मिल ही जायँगे। ये लोग मुहूर्तिए कहलाते हैं, और कोई भी मुहूर्त हो, कहीं भी मुहूर्त हो, इन्हें कार्ड मिले न मिले वहाँ ज़रूर पहुँच जाते हैं,

बल्कि ज़्यादा तादाद इन्हीं मुहूर्तियों की होती है, मुहूर्त की रौनक इन्हीं के दम से है, वरना काम के आदमी तो दस बारह ही होते हैं। मुहूर्तियों की टोलियों में से गुज़रते हुए सेठ बांकड़िया अकरम को पकड़ कर एक कोने में ले गया, और जल्दी जल्दी फुसफुसाते हुए बोला—"तुम्हारी पिक्चर का भी आज ही मुहूर्त होगा।"

"कब ?"

"अभी, इसी दम ! एक डिस्ट्रीब्यूटर एडवांस देने पर राज़ी हो गया है, अभी चेक मिलता है, तस्वीर का नाम बताओ।"

"चक्रम"

"चक्रम क्या ?" बांकड़िया क़रीब ग़श खाते हुए बोला—"कोई क़ौमी तस्वीर ?"

"क़ौमी तस्वीर की ऐसी तैसी।" अकरम घूंसा तानते हुए बोला—उसने आसपास देखा, लेकिन उसे मेज़ नज़र न आयी; जिस पर घूंसा मार के चीखता और असर पैदा कर सकता। एक क्षण के लिए अकरम के दिमाग़ में ख़्याल आया कि क्यों न यह घूंसा सेठ के जबड़ों में घुसा दे, मगर फिर उसे शान के ख़िलाफ़ समझ के उसने अपना इरादा छोड़ दिया, और घूंसेवाला हाथ नीचे करके बोला—"अरे सेठ ! वह कामेडी दूंगा, वह कामेडी दूंगा कि साला चार्ली चैपलिन भी देखे तो ग़श खाके गिर पड़े...."

सेठ ने ज़रा और दिलचस्पी-सी महसूस की, वह एक नई नज़र से अकरम की तरफ़ देखने लगा, फिर उसने आहिस्ता से कहा—"मगर अकरम भाई ! यह चक्रम नाम कुछ....?"

अकरम जल्दी से बात काट कर बोल—"तो जाने दो और नाम लूँ, नामों की अपने पास क्या कमी है, 'गबड़गोश' कैसा नाम रहेगा ?"

"गबड़गोश क्या ?" सेठ हैरानी से बोला।

'गबड़गोश उर्फ मक्खन टोस।"

"गबड़गोश ! ....मगर इसका मतलब क्या ?"

"तुम मतलब छोड़ो सेठ, सोचो, नाम बोलने से मुँह भरता है कि नहीं ?"

"हाँ !" बाँकड़िया ने सिर हिला के कहा—"मुँह तो भरता है।"

"मुँह भरता है तो एक दिन तिजोरी भी भरेगी सेठ ! जल्दी से ऐलान कर दो गबड़गोश का।"

"ऐलान क्या अभी मुहूर्त करता हूँ, डिस्ट्रीब्यूटर से चेक लेता हूँ।" बाँकड़िया मुस्कराते हुए बोला—"क्या नाम बताया ?"

"गबड़गोश !"

"गबड़गोश क्या फेन्टेसी है ?"

"अरे फेन्टेसी की मासी है सेठ ! तुम जाके डिस्ट्रीब्यूटर से बात तो करो, वह कहानी दूंगा कि दिमाग़ घूम जायेगा।"

सेठ ने खुश हो के अकरम की तरफ़ देखा, उसके गाल पर हाथ रख के कहा—"ऐसी बात तुम मुझसे पहले बोलता तो अब तक तुम्हारा पिक्चर शुरू हो के ख़तम हो गया होता।"

फिर ज़रा रुक कर भेदभरे लहज़े में अकरम की पीठ थपथपा के बोला—"मुहूर्त के बाद पाँच सौ का चेक लेके जाना मुझसे।"

"बहुत अच्छा सेठ !"

जोशी जी, राजलता, शमशाद और नया चेहरा रंजना के बीच खड़े हँस हँस के बातें कर रहे थे, उनका दिमाग़ बार बार रंजना की तरफ़ चला जाता था। सिलवर स्क्रीन मुवी वर्ल्ड के केमरामैन फोटो ले रहे थे। अकरम ने सोचा—बाअदब बामुलाहज़ा होशियार ! अब मेरी बारी आयी है, बेटा जोशी ! मैं अपनी फ़िल्म में पचास लड़कियों का डान्स रखूंगा, डेढ़ लाख का एक ही सेट बनवाऊँगा, देखते जाओ.....! ऐसा नया चेहरा लाऊँगा कि देखते ही श-श-श कर उठोगे।

और जब अकरम को नये चेहरे का ख्याल आया तो उसके दिमाग़ में विलायत बेगम का चेहरा घूम गया।

११

सराय से होटल में

जब विलायत बेगम को अकरम ने पहली बार देखा—वह गुलाबी रंग के पैराशूट सिल्क की क़मीज़ और सफेद साटन की सलवार पहने और काले सिल्क के बुर्क़े का नक़ाब उठाये ग्रांट रोड स्टेशन पर गाड़ी का इन्तज़ार कर रही थी। वह पहली नज़र में भाँप गया कि यह पंजाबी लड़की है और बम्बई में नई आयी है, वरना इसके गालों पर यह सेव की सी चमक न होती और वह अपने बुर्क़े को यूँ लिये-दिये न फिरती। उसके साथ एक नौजवान लड़की थी, जिसका रंग बेहद गोरा था, नक़्श तीखे थे लेकिन बेहद बेजोड़, भौहें कमान की तरह, आँखें बादाम की सी, होंठ पतले, नाक तलवार की धार की तरह, सारी बनावट अपनी जगह ख़ूबसूरत थी, लेकिन उसके चेहरे पर मुहाँसे एक अजीब और अनावश्यक मेल पैदा कर रहे थे। विलायत बेगम के साथ खड़ी होके वह अपनी

बदसूरती का प्रदर्शन और विलायत बेगम के हुस्न को दोचन्द कर रही थी। जब तलक गाड़ी नहीं आयी वह इन दोनों के क़रीब खड़ा हुआ और उनके शारीरिक गठन की जाँच-पड़ताल करता रहा। यकायक किसी बात पर विलायत बेगम हँस पड़ी और उसके बेहद सफ़ेद और सुडौल दाँत देर तक अकरम के दिमाग़ में चमकते रहे और उसकी मुलायम आवाज़ देर तक उसके दिल के कानों में गूँजती रही। फिर गाड़ी आ गयी और वे दोनों लड़कियाँ ज़नाने डिब्बे में चली गयीं, और अकरम पलट कर किताबों के स्टाल पर चला आया, क्योंकि अब उसी गाड़ी में एक अलग डिब्बे में बैठ कर जाने से उसे बड़ी नफ़रत हुई।

'गबड़गोश' के मुहूर्त के कुछ दिन बाद अकरम ने विलायत बेगम को उसी विलायती गुलाबी पैराशूट सिल्क की क़मीज़ और सफ़ेद साटन की सलवार में दलजीत स्टुडियो के बाहर खड़े देखा। अकरम गाड़ी में था इसलिए सिर्फ़ उसे पल भर के लिए देख सका, फिर वह स्टुडियो में चला गया; और दफ़्तर में आते ही उसने अपने यहाँ के एक्स्ट्रा सप्लाई करनेवाले दारा को बुलाया; और उससे कहा कि दलजीत स्टुडियो के बाहर इस डील-डौल की एक लड़की खड़ी है; इसके पहले वह कहीं और जाये या अगर वह राजमहल स्टुडियो में चली गयी हो, तो तुम उसे किसी तरह घेर-घार कर बहला-फुसला के अपने यहाँ ले आओ। दारा इस मामले में बड़ा तेज़ था, उसकी आँखें छोटी-छोटी थीं, उसके चेहरे पर चेचक के दाग़ थे, उसका सर आगे से छोटा और पीछे से बड़ा था और अपने छोटे क़द की वजह से वह दूर से देखने में बिल्कुल 'मिकी माउस' नज़र आता था। लड़कियाँ फाँसने में बेहद उस्ताद था। वह चन्द मिनटों में ही विलायत बेगम को अकरम के पास ले आया। विलायत बेगम के साथ वही गोरे रंग की बदसूरत लड़की थी, और था ज़नानी चाल-ढाल वाला लड़का जो शक्ल व सूरत से विलायत बेगम का भाई मालूम होता था। एक ज़रूरत से ज़्यादा भारी भरकम देहवाली अधेड़ औरत भी थी, जिसकी घरेलू समझदार मुस्कराहट में कई पहलू छिपे थे। यह औरत विलायत बेगम की माँ थी, जो जवानी में विलायत बेगम से कहीं ज़्यादा हसीन होगी। एक अधेड़ उम्र का आदमी था जो बड़ी बड़ी मूँछें रखे था, तहमद पहने हुए था और कुल्ला और पगड़ी लगाये हुए था। उसने अपने दायें हाथ की हथेली पर बिस्मिल्लाह गुदवा रखा था, उसका नाम जलालुद्दीन था। लड़के का नाम शफ़ी और अधेड़ उम्र की औरत को सब लोग बेबे कहते थे। गोरे रंग की बदसूरत औरत का नाम मालूम नहीं हो सका, शफ़ी उसे 'जान' कहता था। बाद में पता चला कि वह शफ़ी की बीवी है, लेकिन शफ़ी से बढ़कर मर्दाना तबियत की दिखती थी।

बातचीत जान ने शुरू की, बोली—"सलाम-आले"। फिर मुड़ के विलायत से कहने

लगी—"डाइरेक्टर हैं, इन्हें सलाम करो।" विलायत बेगम ने अपनी कजलाई हुई आँखों से अकरम को एकबार देखा फिर हंस कर मुँह फेर लिया, लेकिन अकरम अब भी उसका रुख देख सकता था। वह तेज़ तीखी सुर्मई चितवन, वह घनी पलकें और उसके नीचे वह सुनहरी सुनहरी रंगत गालों की, जहाँ कोई पाउडर न था; सिर्फ सफ़ेद महीन कपड़े की चमक थी। उसकी झुकी-झुकी निगाहें अपने पैरों पर पड़ीं और फिर उसने जल्दी से अपनी ख़ूबसूरत पिण्डलियाँ छिपालीं।

जान बोली—"आपने हमको बुलाया है न?"

"जी !"

"पिक्चर में काम करने के लिए ?"

"जी !"

"रोल क्या होगा ?"

"एक छोटा-सा रोल है मगर बहुत अच्छा है।" अकरम ने जवाब दिया।

"तो चलो चलें।" जान कुर्सी से उठते हुए बोली—"हमारी विलायत बेगम सिर्फ़ हिरोइन का रोल करेगी।"

"पहले कहीं काम किया है ?" अकरम ने पूछा।

जान बोली—"लाहौर में 'गई बहार' में हिरोइन का काम था, बाद में डाइरेक्टर से झगड़ा हो गया, वह इससे मुआ लगाव चाहता था।"

विलायत बेगम ने काले बुर्के का सहारा लिया।

जान बोली—"चलो चलें !"

कोई नहीं हिला।

अकरम ने कहा—"बैठिए, बैठिए।" जान बैठ गयी, शफ़ी एक लाल रूमाल निकाल कर अपना मुँह पोंछने लगा। बेबे अकरम की तरफ़ देख के मुस्कराई। अकरम ने कहा—"रोल छोटा-सा है मगर बहुत अच्छा है, पैसे भी कम मिलेंगे, मगर डाइरेक्टर हूँ, हिरोइन के साथ खड़ा कर दूंगा। पब्लिसिटी के महकमे का आदमी मेरा दोस्त है, वह पब्लिसिटी कराऊँगा विलायत बेगम की कि दूसरी पिक्चर में हिरोइन बनने के लिए लोग ख़ुद ख़ुशामद करते फिरें, फिर दूसरी पिक्चर भी मैं ख़ुद डाइरेक्ट कर रहा हूँ।"

अकरम ने बेबे की तरफ़ देखा, उसकी पक्की सूझ-बूझ रखनेवाली मुस्कान में वही छिपा हुआ व्यंग्य था, मगर बड़ा बेसब्रा मीठा मेहरबान व्यंग्य था, जैसे माँ अपने नन्हे से कहे—'मैं तेरी सारी करतूतें जानती हूँ।'

जान ने पूछा—"तनख़्वाह क्या मिलेगी ?"

अकरम ने कहा—"ढाई सौ रुपये माहवार !" जान फिर उठ खड़ी हुई, "तो चलो चलें, ढाई सौ रुपये, वह अन्धेरी के स्टुडियोवाले हैं, साढ़े चार सौ बताते थे और फिर वह लोग मुझे भी काम देते थे, मुझे भी चार सौ रुपये दे रहे थे, मुफ़्त में हमें यहाँ बुला के ख़राब किया।"

शफ़ी बोला—"गई-बहार में इसे पांच सौ मिल रहे थे, सौ रुपया मुझे जेब-ख़र्च मिलता था सिगरेटों के लिए।"

बेबे बोली—"हिरोइन भी न होगी और तनख़्वाह भी न मिली तो बेटा काम कैसे चलेगा ?" बेबे ने लफ़्ज़ 'काम' पर ज़रा ज़ोर दिया इसलिए अकरम के लिए जवाब देना ज़रूरी हो गया। उसने कहा—"काम तो दुनिया में किसी न किसी ढंग से चलता ही है और चलेगा भी, लेकिन तनख़्वाह इससे ज़्यादा न मिलेगी। सेठ लोग नहीं मानेंगे और यह तो मैं अपनी तरफ़ से कह रहा हूँ; मुमकिन है सेठ को यह सब नापसन्द हो।"

जान बोली—"यह कनटराक (कान्ट्रैक्ट) हमको पसन्द नहीं।"

"चलो चलें।" शफ़ी बोला।

"चलो" बेबे ने कहा।

"हाँ ठीक है।" जलालुद्दीन ने धीमे स्वर से कहा।

विलायत बेगम वहीं बैठी की बैठी रही। बेबे ने कहा—"उठ विलैती।"

विलायत उठ खड़ी हुई, वह लोग बाहर चले गये सड़क पर आगे निकल गये। अकरम फिर दारा को भेजनेवाला था कि विलायत एकाएक पलटी। उसके साथ के लोग उसे बुलाते रह गये; लेकिन वह निहायत तेज़ी से चली आ रही थी, वह स्टुडियो के अन्दर दाख़िल हुई; अकरम के कमरे में आयी, उसकी मेज़ के सामने आकर बोली—"मैं काम करूँगी।" उसका चेहरा ग़ुस्से से तमतमा रहा था। अकरम मेज़ बजा रहा था; बजाते-बजाते रुक गया, बोला—"बहुत अच्छा ! मैं अभी ऐग्रीमेंट तैयार करवाये देता हूँ; दस्तख़त करके जाओ।"

वह कुर्सी पर बैठ गयी, क्लर्क ऐग्रीमेंट टाइप करने लगा; वह बोली—"मुझे कुछ रुपये अभी चाहिए सरायवाले के पैसे देने हैं।"

"तुम सराय में ठहरी हो ?"

"और कहाँ ठहरती, अपने पास ज़्यादा पैसे नहीं थे और आज वह भी ख़त्म हो गये। सरायवाला परेशान कर रहा था; आज मुझे कहीं न कहीं ऐग्रीमेंट करना ही था।" उसने बड़े दर्द भरे मुर्झाए थके-थके धीमे लहज़े में कहा। उसके लहजे में बुढ़ापे की थकान थी और बचपन का भोलापन, उसकी उम्र मुश्किल से पन्द्रह वर्ष की होगी।

ऐग्रीमेंट टाइप हो गया, सेठ के दस्तख़त भी हुए और विलायत बेगम ने भी झट से दस्तख़त कर दिये और अकरम ने एक सौ रुपये का नोट उसकी ठण्डी बर्फ़ीली उँगलियों में थमा दिया, इतने में उसके घर के लोग भी चले आये। विलायत ने लापरवाही से नोट बेबे के हाथ में दे दिया। बेबे ने अपने दुपट्टे के आँचल में मज़बूती से बाँध लिया। शफ़ी ने सिगरेट का क़श जोर से अन्दर खींचा और जान ने घूर करके गुस्से भरी निगाहों से अकरम की तरफ़ देखा—"और मेरे लिए तो काम नहीं ?"

"नहीं।"

"अच्छा तो मैं जाऊँ ?" विलायत ने अकरम से पूछा, उसकी आवाज़ काँप रही थी।

अकरम ने कहा—"ठहर जाओ, मैं एक होटल का बन्दोबस्त किये देता हूँ, आप लोगों का सराय में रहना ठीक नहीं है।"

बेबे आंचल फैलाए अकरम को दुआएँ देने लगी और सरायवाले को गालियाँ।

अकरम ने टेलीफ़ोन पर बात करके कहा—"बोरीबन्दर होटल में सत्ताइस नम्बर का कमरा आपके लिए तय कर दिया है, आप लोग सराय से वहाँ चले जाइए।"

१२

विलायत बेगम की आपबीती

शाम को जब अकरम अपने काम से निबट कर बोरीबन्दर होटल पहुँचा तो विलायत बेगम एक गहरी हरी साड़ी में सजी हुई उसकी राह देख रही थी। बेबे ने उसके बाल बड़ी ख़ूबसूरती से सजाए थे। अकरम स्टुडियो की एक गाड़ी साथ लाया था। विलायत बेगम कुछ पूछे बग़ैर उसके साथ होटल के ज़ीने के नीचे उतर आयी, पीछे-पीछे शफ़ी था। बेबे ने ज़ीने के ऊपर से बुलन्द आवाज़ में कहा—"शफ़ी को साथ ले जाओ, यह बाहर बैठा रहेगा।" अकरम गाड़ी जुहू के एक ख़ूबसूरत होटल के लम्बे-चौड़े और खुले हुए आँगन में ले गया। रास्ते भर उसने विलायत से कोई बात नहीं की और विलायत ने भी उससे कोई बात नहीं की। उसने देखा कि अकरम बार-बार ललचाई दृष्टि से उसकी तरफ़ देख लेता था और उसकी कमर के लचीले पतलेपन को। फिर भी वह मुस्कराई नहीं, गम्भीर बनी खिड़की के बाहर देखती रही, जहाँ लोग चले जा रहे थे, जहाँ नौजवान बीवियाँ

अपने खाविन्दों से हँस-हँस के बातें करती हुई गुज़रती जा रही थीं। माओं ने अपने प्यारे-प्यारे बच्चे गोद में उठाए हुए थे, जहाँ क्लर्क थैलियों में खाने का सामान या राशन भर-भर के लिये जा रहे थे। एक जगह नया मकान बन रहा था। मोड़ पर पुलिस का सिपाही इत्मीनान से आवागमन का बन्दोबस्त कर रहा था। होटल में चारों तरफ़ समुद्र के किनारे-किनारे काटेज बने हुए थे, वे लोग एक काटेज में चले गये।

शफ़ी गाड़ी में बैठा रहा और लाल रूमाल में गाँठें लगाता और खोलता रहा। अकरम ने जाते वक्त पाँच का नोट और सिगरेट का डिब्बा उसके हाथ में थमा दिया। शफ़ी ने ख़ुशी से उछल कर अकरम के घुटने छू लिये—"तू सख़ी बादशाह है; एक पार्ट फ़क़ीरों को भी दे दे, विलायत को मैं लाहौर से लाया हूँ, मुझे फ़िल्म में पार्ट करने का बहुत शौक़ है, विलायत को इसीलिए लाया हूँ कि उसको पार्ट मिल जायेगा तो फ़क़ीरों को भी मिल जायेगा, क्योंकि सख़ी बादशाह....."

अकरम ने कहा—"दोस्त सिगरेट पियो और समुद्र पर टहलो; कल बात करेंगे।" शफ़ी ने अकरम की तरफ़ हाथ ऊँचा करके कहा—"जियो छमिया।"

अन्दर काटेज में पहुँच कर अकरम ने देखा पलँग पर विलायत बेगम लेटी अधखुली आँखों से छत को तक रही है; और छत के पंखे के हल्के हल्के झोंकों में उसका हरे साटन का पेटीकोट थरथरा रहा है।

अकरम ने कहा—"यह क्या बेहूदगी है, पलंग से उठो और इधर सोफे पर बैठो।" वह बोली—"ख़ैर, जैसा तुम कहो।" वह उठी और अकरम के पास सोफे पर आकर बैठ गयी, उसने मेज़ पर पड़े डिब्बे से एक सिगरेट सुलगा लिया और दो गिलासों में शराब उंडेल ली। बोली—"तुम्हारे लिये सोडा डालूँ ?"

अकरम ने कहा—"हाँ !"

वह बोली—"मैं सोडा नहीं पीती हूँ।" उसने सिगरेट का एक क़श लगाया और फिर अपना पैग सोडा डाले बग़ैर एक ही साँस में चढ़ा गयी। बोली—"कितना तीखा ज़ायका है, मगर घरवाले मुझे कभी शराब और सिगरेट नहीं पीने देते, छुप कर पीती हूँ।"

"वह क्यों ?"

"पता नहीं एक बार मैंने अब्बा के सामने सिगरेट पी थी; अब्बा ने मुझे बहुत मारा। एक बार मैं शराब के नशे में मदहोश मस्त घर आयी तो पहले तो रास्ते में शफ़ी ने मुझे मारा फिर घर पर जलाल अब्बा ने।"

"और बेबे ने क्या कहा ?" अकरम ने पूछा।

"बेबे मुझे बड़ा प्यार करती हैं, चोरी छिपे हम दोनों सिगरेट पी लेती हैं, मगर

शराब को वह भी मना करती हैं। अजीब चीज़ है; मगर कितना तीखा ज़ायका है इसका।" उसने दूसरा पैग उँडेल लिया। "यह कड़वा कड़वा ज़ायका मुझे बहुत अच्छा लगता है;. इससे भी अगर कड़वी शराब मिल जाये तो मुझे बेहद पसन्द आये।"

अकरम ने कहा—"शफ़ी तुम्हें पीटता है और तुम उसे कुछ नहीं कहती हो ?"

वह बोली—"मुझे उसका पीटना अच्छा लगता है, जैसे यह सिगरेट इस वक्त मुझे अच्छा लग रहा है।" वह कमरे को चारों तरफ़ देख के बोली—"कितना अच्छा कमरा है। यह ख़ूबसूरत पलँग, रंगीन दीवारें, यह पंखा, यह मद्धम-मद्धम नीली रोशनीवाले बल्ब, यह सुनहरी शराब, यह सफेद सिगरेट, यह चमकते हुए बिल्लौर के गिलास। ईमान से मेरा होटल तो बहुत बुरा है। और वह सराय कितनी बुरी थी; जहाँ हम आकर चन्द रोज़ पहले ठहरे थे, और लाहौर में मेरा घर कितना बुरा था, यूँ तो अच्छा था मगर इसके मुकाबले में...." उसने चुप होकर सर हिलाया।

"लाहौर में तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"शालामार बाग़ के क़रीब है; बागबानपुरे में। कच्चा घर है मगर बड़ा लम्बा आँगन है। बचपन में हमारे यहाँ भैंस भी थी, बेबे उसका दूध और मक्खन मुझे दिया करती थी चोरी छिपे। एक दफ़ा क्या हुआ—"वह इतना कह के खिलखिला के हँस पड़ी और उसके सफ़ेद और सुडौल दाँतों की लड़ी से बिजली कौंध गयी। "एक बार क्या हुआ--बेबे ने मेरे लिये मक्खन ढेर सा रख दिया, और मिश्री की डली अलग रख दी और घी में तले हुए नरम-नरम चार पराठे भी रख दिये और एक गिलास दूध, इतना गाढ़ा दूध होता था वह कि क्या बताऊँ तुम्हें। ख़ैर जी ! जब मैं स्कूल से वापस आयी....।"

"तो तुम स्कूल में पढ़ती थीं ?"

"हाँ मैं उन दिनों तीसरे दर्जे में पढ़ती थी। उस वक्त मेरी उम्र कोई आठ साल की होगी। ख़ैर जी ! जब मैं घर आयी तब बेबे तो यह सब सामान छींके में डाल कर चली गयीं थी अपने किसी पड़ोसी के यहाँ। मैंने घर आते ही बस्ता ज़मीन पर पटका और उचक कर छींका नीचे उतार लिया और जल्दी-जल्दी से खाने लगी, इतने में शफ़ी कहीं से आ गया।

"मैंने अपना खाना छुपाना चाहा मगर उसने देख लिया, बोला—बेबे तुम्हारी तरफ़दारी करती हैं; तुम्हें अच्छा-अच्छा खाने को देती हैं और इतना ज़्यादा खिलाती हैं। और हमें कोई नहीं पूछता है। ऐसा क्यों होता है ? दूसरों के घर में लड़के देखता हूँ, उनकी ख़ातिर सब से ज़्यादा होती है, यहाँ हमें कोई पूछता नहीं है; बस

लड़की को खिलाये जाओ। देर तक मेरी उसकी लड़ाई होती रही। वह छीन-झपट के मेरा मक्खन भी खा गया और पराठे भी और दूध का गिलास भी पी गया। और मैं ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। इतने में बेबे बाहर से आ गयीं और उन्होंने शफ़ी को ख़ूब धड़ाधड़ मुक्कों, तमाचों, लातों से पीटा। रात को जब वह सोया तो मेरी तरफ़ गुस्से में पीठ कर के सोया। मैं धीरे-धीरे उसके जिस्म को दबाती रही, उस रोज़ मैं रात भर अपने भाई का जिस्म दबाती रही और फिर आखिर में उसके जिस्म के ऊपर सर रख के सो गयी। सुबह हम दोनों को इस तरह सोये देख के बेबे बहुत हँसीं।" और इतना कह के विलायत फिर खिलखिला के हँस पड़ी। फिर यकायक उदास हो के बोली—"उस वक़्त मेरी उम्र आठ साल की थी; अब पन्द्रह साल की हूँ मगर ऐसे मालूम होता है, जैसे आठ सौ साल गुज़र गये।" उसने तीसरा पैग उँडेल लिया। अकरम ने मना करती हुई नजरों से उसे देखा। वह बोली—"आज मुझे कुछ न कहो, जी भर के पीने दो, मुद्दत के बाद पी रही हूँ।"

उसने तीसरा पैग भी जल्दी से ख़त्म कर लिया, अकरम अभी पहले ही में था। जब वह आगे चलने लगी तो अकरम ने कहा—"मर जाओगी।" वह बोली —"नहीं, इससे क्या होता है, मैं तो पूरी बोतल पी जाऊँ और मुझे कुछ न हो।" अकरम ने आश्चर्य से उसे देख कर कहा "कब से पी रही हो ?"

वह बोली—"मैं जब ग्यारह साल की थी, तब पहली बार शराब पी थी, उन दिनों हम लोग नये नये कराची आये थे।"

"तो क्या तुम कराची की रहने वाली हो ?"

"नहीं हम तो लाहौर के हैं, बागबानपुरे के। वहाँ हमारी ज़मीन है, मकान है, अब्बा खेती करते थे और हम लोग बड़े मज़े में रहते थे। फिर अब्बा कर्ज़दार हो गये और हौले-हौले घर से सब कुछ उठता गया। यह उन दिनों की बात है जब मैं पैदा न हुई थी। बेबे सुनाती हैं, कि जब घर में कुछ न रहा और नौबत फ़ाक़ो पर आ गयी तो बेबे ने पेशा कर लिया। बेबे बड़ी हसीन औरत थीं। जलाल अब्बा उनको बुर्क़ा पहना कर बाहर ले जाने लगे। एक दफ़ा किसी होटल में बेबे और अब्बा पकड़े गये। बेबे तो बच गयीं लेकिन अब्बा को तीन माह की क़ैद हुई। जब वह तीसरे माह रिहा हो के आये तो बेबे ने लाहौर छोड़ दिया और कराची चली गयीं। वहीं पर शफ़ी और मैं पैदा हुई। हम लोग जलाल अब्बा की औलाद नहीं है। वैसे वह हमारे अब्बा हैं; मगर हम उनकी औलाद नहीं हैं।"

अकरम के कहा—"हाँ मैं भी ग़ौर कर रहा था कि तुम दोनों बहन-भाई की सूरत उनसे बिल्कुल नहीं मिलती है।"

विलायत ने फुसफुसाकर अकरम से कहा, हालाँकि उस वक्त उनके कमरे में कोई नहीं था जो उसे सुन सके—"हम दोनों—शफ़ी और मैं चचा नबीबख्श की औलाद हैं।"

"चचा नबीबख्श ?"

"हाँ, चचा नबीबख्श का कराची में पिट्रौल का पम्प था और सैकड़ों की आमदनी थी; वह बचपन ही से हमारी बेबे को चाहते थे; मगर बेबे की शादी माँ-बाप ने जलाल अब्बा के साथ कर दी और जलाल अब्बा तो निरे आलसी और निखट्टू हैं, जिन्हें काम करना तो आता नहीं, दिन भर हुक्का पीते रहते हैं। इसी आलस में ज़मीन भी हाथ से गयी। फिर सर पर पग्गड़ बांध के और लम्बी-लम्बी मूँछें रख के अपनी बीवी की कमाई पर रहने लगे। मेरा जी चाहता है मुँह झुलस दूँ जलाल अब्बा का; मगर डर लगता है।"

"काहे को डर लगता है ?"

वह बोली—"जब से वह क़ैद से रिहा हुए हैं उनका ढंग भी बदल गया है। अब वह हमेशा अपने पास एक चाक़ू रखते हैं, लम्बा-सा चाक़ू। घर में ज़रा-ज़रा-सी बात पर चाक़ू निकाल लेते हैं। एक दफ़ा तो शफ़ी को जान से मार देनेवाले थे कि बेबे ने बचा लिया, फिर भी शफ़ी की बाहों पर कई जख़्म आ गये; दो महीने मरहम-पट्टी होती रही। सुनती हूँ पहले जलाल अब्बा ऐसे न थे, जब अपने यहाँ ज़मीन थी, मकान थे, पर अब तो....ख़ैर जी जाने दो इन बातों को। लो तुम दूसरा पैग पियो। तुम इतने चुप-चुप जो रहते हो मुझे बड़े अच्छे लगते हो।" विलायत बेगम ने कहा।

अकरम बिल्कुल फिदा होके उसकी तरफ़ देखने लगा, वह हर पल हसीनतर होती जा रही थी। शराब के हर घूँट के साथ नीले प्रकाश में पलंग पर तनी हुई मच्छरदानी किसी रहस्यपूर्ण जहाज़ का केबिन मालूम होती थी। पलंग के ऊपर पंखा था; जिसकी चाल से मच्छरदानी की ऊपरी सतह पर हल्की-हल्की लहरें पैदा हो रही थीं। अकरम ने विलायत बेगम के हाथ में हाथ डाल दिया और उससे कहा—"यह पलंग कितना खूबसूरत है, बिल्कुल किसी जहाज़ के केबिन की तरह मालूम होता है।"

वह बोली—"मैंने इससे भी खूबसूरत पलंग देखे हैं; लायलपुर में डिप्टी कमिश्नर के पलंग के पायों पर चाँदी के पतरे जड़े हुए थे।" अकरम ने चौंककर कहा—"तुम लायलपुर के डिप्टी कमिश्नर को जानती हो ?" वह बोली—"हाँ ! उसके पास मेरा अमीर ड्राइवर था।"

"अमीर कौन है ?"

"अमीर मेरा खाविन्द है।"

"तुम्हारा खाविन्द ?"

"हाँ," विलायत बेगम की आँखें आँसुओं से डबडबा गयीं, उसकी आवाज़ काँपने लगी। काँपते हुए लहजे में बोली—"वह दुष्ट मुझे कभी नहीं भूलता, जब कभी शराब पीती हूँ वह कम्बख़्त सामने आके खड़ा हो जाता है, यूँ आँखों के सामने जैसे तुम इस वक्त मेरे सामने हो....। तुम मुसलमान हो न ?"

"हाँ"

"ग्यारहवें वाले पीर को मानते हो ?"

"मानता हूँ।"

"मैं ग्यारहवें वाले की क़सम खा के कहती हूँ—मुझे अगर किसी से इस दुनिया में मुहब्बत हुई है; तो वह सिर्फ अमीर से; बाक़ी झूठे हैं और इस तरह मैं भी झूठी हूँ।"

अकरम ने उसकी आँखों में आँखें डाल के कहा—"सचमुच अब तुम्हें कुछ महसूस नहीं होता ?"

"कुछ नहीं, रत्तीभर नहीं, मेरी रूह मर चुकी है, कुछ महसूस नहीं होता।"

"हैरत है।" अकरम ने अपने गिलास में शराब का आखिरी बूँद पीते हुए कहा।

वह बोली—"हैरत तो है; मगर अमीर पर अब भी मेरा इतना ईमान है कि वह इस वक्त भी मेरे सामने आ जाये तो मैं तुम्हें तो क्या सारी दुनिया को छोड़-छाड़ के चली जाऊँ!"

"कहाँ ?"

"जहां वह कहे।"

"डिप्टी कमिश्नर के पास ?"

"वहाँ नहीं, वह तो मज़बूरी की बात थी।"

अकरम ने ग़ुस्से में आ के कहा—"क्या मजबूरी थी ? दूसरा पैग बनाओ।"

वह बोली—"जब अमीर मुझे बहका कर के ले गया, उस वक़्त मेरी उम्र मुश्किल से चौदह साल की थी। कुछ महीने कम ही थी; यानी नाबालिग़ थी। लेकिन मैं ग्यारहवें साल ही से अमीर से मुहब्बत करने लगी थी। वह हमारे रिश्ते-नातेवालों ही में है। एक दिन—यह मेरे ग्यारहवें वर्ष की बात है, मैं छठे दर्जे में पढ़ती थी, और स्कूल से पढ़ कर वापस आ रही थी कि हमारे खेतों के पास से अमीर निकला, और मुझे उठा ले गया।...ख़ैर! जब मैं घर पहुँची तो अब्बा बहुत परेशान थे बेबे भी मुझे धड़ाधड़ पीटने लगीं, 'कौन था वह हरामी ?' मैंने कहा—'अपना चचेरा भाई, अमीर!' फिर उन्होंने अमीर को वह खरी-खोटी

सुनाईं कि क्या कहूँ ! बेबे सर पीटने लगीं, जलाल अब्बा गँडासा ले कर अमीर को जान से मारने के लिए निकल पड़े। अमीर छुप गया; कहीं मिला नहीं। मैं तीन-चार दिन के बाद जब स्कूल गयी तो रास्ते में मुझे अमीर मिल गया। मैंने कहा—अब्बा तुम्हें जान से मार देंगे।

"दरअसल अमीर बड़ा ख़ूबसूरत जवान था, तुमने नहीं देखा—गोल साँवला चेहरा, छोटी-छोटी मूंछें, घुंघराले बाल, जब वह उन बालों को झिटक के माँग निकालता, तो दिल पर लकीर-सी खिंच जाती है। कमर उसकी कितनी पतली है, और छाती इतनी चौड़ी है। और उसने अपनी छाती पर अपना नाम खुदा रखा है। वह बचपन ही से मुझे चाहता है और मैं भी उसे चाहती हूँ, मगर हमारे घर वाले उस रिश्ते के ख़िलाफ़ थे।"

"वह क्यों ?"

"बेबे मुझसे पेशा कराना चाहती थीं, मगर मैं अमीर से शादी करना चाहती थी, इसलिए कि मुझे उससे मुहब्बत थी। उसे देखकर मेरा दिल यूँ होने लगता; जिस तरह शिकारी को देखकर हिरनी चौकड़ियाँ भूल जाती है—है न ?"

अकरम ने कहा—"सच्ची मुहब्बत में ऐसा ही होता है।"

वह बोली—"तुम मुसलमान हो न ?"

"हाँ !"

"ग्यारहवें वाले पीर पर यक़ीन करते हो न ?"

"करता हूँ।"

"इस ग्यारहवें वाले पाक पीर फ़क़ीर की क़सम खाके कहती हूँ; मैं घरवालों की मर्ज़ी के खिलाफ़ घरवालों से छुपकर; घरवालों की मार-पीट सहकर भी अमीर से मिलती रही, पहले मैं ग्यारह बरस की थी, फिर मैं बारह बरस पूरे करके तेरहवें में आ गयी, तब मैं आठवीं में पढ़ती थी; और अमीर से बराबर मिलती थी।"

"वह क्यों ?"

विलायत बोली—"दिल मिलना चाहिए; तो कौन रोक सकता है ? दिल तो कब से मिले हुए थे, फिर मैं एक रोज़—अमीर के साथ लायलपुर.....तुमने देखा है कि नहीं; तुम कहाँ के रहने वाले हो ?"

अकरम ने कहा—" मैं यू० पी० का रहनेवाला हूँ।"

वह बोली—"ख़ैर! लायलपुर बड़ा अच्छा शहर है, सड़के चौकोर-सीधी एक दूसरी को काटती हुईं, और शहर बिल्कुल गोल एक जगह से सैर के लिए निकलो; घूमकर फिर वहीं आजाओगे। लायलपुर में कोई बच्चा भी खो जाये तो गुम नही हो सकता।"

"ख़ैर तुम दोनों बच्चों का क्या हुआ ?"

"मैं चलते वक़्त कुछ ज़ेवर लेके आयी थी; कुछ रुपये अमीर के पास भी थे, पहले तो अमीर ने रुपये ख़र्च किये; हम लोग दिन-रात पलंग पर पड़े रहते, और जब थक जाते तो उठकर सैर करने को चले जाते। मुझे अमीर ने दो सूट सिलवा दिये और ख़ुद भी बोस्की की क़मीज़ सिलवा ली; और काज़ों में सोने के बटन लगाये और रेशमी तहमद और पम्प शू पहनकर जब वह और मैं अपने घर से निकलते तो सारे बाज़ार की निगाहें हम दोनों पर होतीं। बड़े अच्छे दिन थे वह। ऐसे अच्छे दिन अब नहीं आयेंगे।"

"क्यों ?"

"अब मेरी देह मर चुकी है।" विलायत ने एक साँस में गिलास ख़त्म करते हुए और दूसरा उँडेलते हुए कहा—"और फिर पैसे ख़त्म हो गये; फिर अमीर ने मुझे पीटना शुरू कर दिया; और मैं हाँडी तवे चूल्हे में लग गयी; और अमीर मेरा ज़ेवर बेच-बेच कर शराब पीने लगा। पहले वह शराब नहीं पीता था, मगर अब बीवी वाला था और बेकार था। उसे साइकिलों की मरम्मत का काम आता था और वह फ़ुटबाल बड़ा अच्छा खेलता था; मगर साइकिल मरम्मत करने वाले ख़ुद सब काम करते थे उन्हें उसकी ज़रूरत न थी। फ़ुटबाल तो एक खेल था; अब वह बेचारा करे तो क्या करे ? जब ज़ेवर भी ख़त्म हो गये और हम लोग दो दिन और दो रात फ़ाक़े से रहे, तो अमीर मुझे बुर्क़ा ओढ़ा के लायलपुर के डिप्टी कमिश्नर की कोठी पर ले गया। उसका बैरा अमीर का दोस्त बन गया था; और डिप्टी कमिश्नर के ड्राइवर ने उसे डिप्टी कमिश्नर की मोटर पर बिठा के मोटर चलाना भी थोड़ा-थोड़ा सिखा दिया था; और डिप्टी कमिश्नर का बैरा और डिप्टी कमिश्नर का ड्राइवर दोनों कहते थे कि अगर अमीर मान जाये तो उसकी सारी मुश्किलें हल हो सकती हैं। मैं बहुत रोई-धोई; चिल्लाई; गंदी-गंदी गालियाँ दीं; उसकी माँ बहन को अच्छी तरह कोसा मगर जब दो रात और दो दिन फ़ाक़े करते गुज़र गये और मुँह में उड़ के एक खील भी न गयी तो अमीर मुझे बुर्क़ा ओढ़ा के डिप्टी कमिश्नर की कोठी पर ले गया और वहाँ पर मैंने वह पलँग देखा; जिसके पायों पर चाँदी के पतरे चढ़े हुए थे।"

"फिर क्या हुआ ?" अकरम ने पूछा।

"फिर क्या होता; अमीर मोटर का क्लीनर बन गया; मेरे लिए बड़े अच्छे-अच्छे कपड़े बन के आ गये और ज़ेवर भी; मगर घर का चूल्हा वीरान हो गया और आग बुझ गयी और मेरा दिल बुझा-बुझा सा रहने लगा। फिर मेरे माँ-बाप एक रोज़ मुझे लेने के लिए आ गये; उनके साथ पुलिस भी थी।"

"पुलिस क्यों थी ?"

"मैं नाबालिग़ जो थी न ! लाहौर की पुलिस आयी थी; उन्होंने मेरे और मेरे अमीर के हथकड़ी लगा दी और हमें बाँध के ले चले। लायलपुर के डिप्टी-कमिश्नर ने मुझे बचाना चाहा; मगर वारन्ट लाहौर के मजिस्ट्रेट ने निकाले थे। वह दाँत पीस के रह गया। चलते-चलते मैंने सबइन्सपेक्टर को जो मुझे गिरफ़्तार करने आया था; वह गालियाँ दीं कि बेचारा अपना सा मुँह ले के रह गया। हँस के कहने लगा—'इतनी ख़ूबसूरत लड़की के मुँह से इतनी बुरी गालियाँ मैंने आज तक नहीं सुनीं।' मुझे सचमुच बहुत बुरी-बुरी गालियाँ याद हैं; एक दिन तुम्हें सुनाऊँगी।"

"कब सुनाओगी ?"

"जिस दिन तुमसे लड़ाई होगी, जिस दिन तुम मुझे शादी के लिए कहोगे; क्या तुम्हारी शादी हो चुकी है ?"

"नहीं तो। मगर क्या तुम शादी के ख़िलाफ़ हो ?"

"हाँ यह सारे मर्द बड़े हरामज़ादे होते हैं; मेरा बस चले तो उनकी खाल खींच कर उन्हें फाँसी पर लटका दूँ।"

अकरम ने कहा—"तुमने तो अभी से गालियाँ देनी शुरू कर दीं; अभी तो मैंने तुम से शादी नहीं की।"

वह बोली—"तुम मुझसे क्या खाके शादी करोगे।"

अकरम ने मेज़ पर घूँसा मार के कहा—"मैं तुमसे शादी करूँगा, मैं तुम्हारी ज़िन्दगी सुधार दूँगा, तुम मेरी नेक तबीयत बीवी बनोगी, मैं तुम्हारा फरमाँ-बरदार ख़ाविंद और हमारे घर के आँगन में हमारे प्यार जैसे प्यारे बच्चे खेलेंगे; और....."और वह आहिस्ता से बोली—"और फिर तुम मुझे लायलपुर के डिप्टी कमिश्नर के पास ले जाओगे।"

वह ज़ोर जोर से हँसने लगी; अकरम भी ज़ोर ज़ोर से हँसने लगा। फिर वह चुप हो गयी, फिर अकरम निगाह ऊँची करके उस ख़ूबसूरत पलंग की तरफ़ देखने लगा जो नशे के आलम में और भी हसीन दिखायी दे रहा था। अकरम ने विलायत की आँखों में आँखें डाल कर कहा—"यह पलंग कितना हसीन है।"

वह बोली—"मैंने इससे भी ख़ूबसूरत पलंग देखे हैं—लाहौर में नवाब मीरां शाह के पलंग में सोने के पाये लगे हुए हैं और उसकी गुलाबी रंग की मच्छरदानी में मोती और जवाहर लगे हुए हैं और उसके इर्द-गिर्द आदमी के क़द बराबर आईने हैं और आर-पार औरतों की तस्वीरें हैं। और जब मैं उसके कमरे में दाखिल हुई तो पहले अपने आपको चारों तरफ़ आईनों में देख कर घबरा गयी और शरमा गयी,

लेकिन नवाब बेचारे बड़े अच्छे आदमी हैं, उनकी उम्र पचास के ऊपर होगी, बाल खिचड़ी हैं, होंठ और गाल लटके हुए हैं, और सोते वक्त दवा खाते हैं। उनके पास बेशुमार दौलत है, बेशुमार ज़मीन है, बेशुमार जायदाद है। सुनते हैं नवाब मीरां शाह की दौलत का कोई हिसाब नहीं, खुद छोटे लाट उनके घर खाना खाने आता है—इतना बड़ा आदमी मुझ पर आशिक़ हो गया।"

"कैसे हुआ, क्या उसने तुम्हें देखा था कहीं पहले ?" अकरम ने पूछा।

"नहीं, कहीं पहले तो नहीं देखा था; लेकर तो मुझे मेरे अब्बा ही वहाँ गये थे। लायलपुर से जब मैं और अमीर गिरफ़्तार होके आये तो अमीर मुझे रो रो के सलाम करता था और मैं उसे रो रो के दुहाई देती थी और दुनिया हमारा तमाशा देखती थी, फिर जो सब-इन्सपेक्टर था वह शफ़ी का बड़ा दोस्त बन गया और शफ़ी उसके साथ हवालात में मुझे मिलने आता था और मैं उसके सामने सब-इन्स-पेक्टर को और शफ़ी को और अपने माँ-बाप को खूब खरी-खोटी सुनाती थी। बेचारा सब-इन्सपेक्टर चुपके चुपके सब कुछ सुनता। मैंने उससे कहा—मैं अमीर से मिलना चाहती हूँ। उसने कहा—मैं तुम्हें अमीर से मिला दूंगा मगर उसका तुम्हें बदला देना होगा। मैंने दिया, क्योंकि मैं अमीर से मिलना चाहती थी, और जब हम मिले तो खूब एक दूसरे से गले मिल के रोये और मैंने अमीर से वादा किया कि अगर मेरे माँ-बाप ने उसके खिलाफ़ मुक़दमा चलाया तो मैं साफ़ कहूँगी कि मैं अपनी मर्ज़ी से अमीर के साथ गयी थी। आखिर में जब मुक़दमा चला तो मैंने साफ़ साफ़ ऐसा ही कह दिया, इस पर मजिस्ट्रेट ने अमीर को ज़मानत पर रिहा कर दिया और मुझे अपने माँ-बाप के हवाले कर दिया, और जिस दिन मैं घर आयी, उसके दूसरे रोज़ अब्बा मुझे बुर्क़ा ओढ़ा के नवाब मीराँ शाह के घर ले गये। मैं बहुत रोई-धोई, मगर बेबे ने कहा—घर में कुछ नहीं है; तेरे जाने के बाद हम लोगों ने दस दस दिन फ़ाक़े किये हैं तू कुछ तो घर का ख्याल कर, हम बुड्ढे हैं, शफ़ी नालायक़ है, उससे कुछ नहीं होता, तू भी अगर घर बार नहीं संभालेगी तो रोटी भी नसीब न हो सकेगी। इतना कह के बेबे रोने लगीं और मैं भी उनके साथ रोने लगी, और फिर आँसू पोंछ कर नवाब मीराँ शाह के महल में चली गयी।"

वह देर तक चुप रही, फिर रुक रुक के कहने लगी—"नवाब के मुंह से बुरी बदबू आती थी; जैसे उसने मुर्दे खाये हों, गली-सड़ी लाशों की बू।"

अकरम ने कहा—"मैं बदबू दूर कर दूंगा, मैं तुम से ब्याह कर लूंगा, तुम मेरी ज़िन्दगी में चाँद की किरण, समुद्र की लहर, भैरवी की तान बन के आओगी और कोई तुम्हें छू न सकेगा। और एक छोटा-सा आँगन होगा जिसमें तुम और मैं और हमारे बच्चे !"

उसकी आँखें चमकने लगीं और वह बोली—"सच कहते हो, कई बार इस फ़रेब को सुन चुकी हूँ फिर भी हर बार यह सच मालूम होता है।" इतना कह के वह सिसकियाँ ले ले के रोने लगी। उसके दिल की आग बुझ गयी थी, और उसकी आत्मा मर गयी थी, और उसके सपनों के फूल मुर्झा गये थे और ज़िन्दगी के सारे दुःख, एशियाई औरत के सारे आँसू, शराब की बून्दों में घुल चुके थे। अकरम ने पलंग की ओर देखा और वह पलंग बहुत बुरा नज़र आया, पुराना-धुराना पलंग था, जगह-जगह से उखड़ा हुआ, मच्छरदानी भी मैली-मैली दिखाई दे रही थी, और नीले रंग के बल्बों के इर्द-गिर्द मक्खियाँ भिनभिना रही थीं।

विलायत रोते रोते वहीं सोफे पर सो गयी। अकरम आश्चर्य से उसके चेहरे की तरफ़ देखने लगा। नींद में उसके असली गुण उभर आये थे; उसका मुँह थोड़ा सा खुला था सोते हुए बच्चे की तरह। गालों पर ताज़े सेव सी चमक थी, और पलकें थकने से निढाल होके गिर पड़ी थीं और उसकी उलझी हुई आस्तीन से उसकी (चन्दन के रंग की) कलाई की गोलाई नजर आ रही—एक बच्चे की कलाई की तरह और एक पाँव सोफे पर और दूसरा सोफे से नीचे लटक रहा था, एक बच्ची की तरह और इस बच्ची की उम्र मुश्किल से पन्द्रह बरस की होगी और फिर जैसे यह बच्ची ग़ायब हो गयी और विलायत की बनावट व निशानों में बेबे का व्यंग्य और उसकी नाक की बनावट में जमाल अब्बा की खासियत उभरती नजर आयी और जबड़े की बनावट में शफ़ी का गुन्डापन! एक ही चेहरे में दो तस्वीरें जमा हो गयीं, सोते वक्त भी जैसे इन्सान के चेहरे पर जंग हो रहा हो। सोचते-सोचते अकरम भी ऊँघने लगा और फिर अचानक चौंक कर बिल्कुल बेक़ाबू सा हो गया, अकरम ने विलायत को एक ठोकर देके कहा—"उठो आज की रात सोने के लिए नहीं है—जागने के लिए है और उन तमाम पलँगों की कहानी सुनाने के लिए है जिन्हें तुमने अपनी छोटी सी ज़िन्दगी में देखा है—अच्छा यह तो बताओ सोने चाँदी और जवाहरात के अलावा क्या तुमने कभी किसी लोहे के पलँग को भी देखा है?"

वह आँखें मलती-मलती बोली—"हाँ हवालात में।" और फिर सो गयी; और हल्के हल्के खर्राटे लेने लगी। दर असल उसने बहुत पी ली थी। अकरम ने बोतल खाली करके उसमें दियासलाई सुलगा के फेंक दी और बोतल में एक नीली आग की लपट पैदा हुई, और आग की लपट से एक हल्की सी गूँज पैदा हुई और फिर अकरम ने बोतल के मुँह पर अपनी हथेली रख दी और नीली लपट बुझ गयी और गूँज गायब हो गयी और अकरम ने सोचा—विलायत भी शराब की खाली बोतल है, उसके अन्दर नीले रंग की लपट भी है, धमाके की गूँज भी है; मगर यह आग की लपट और गूँज शीशे की चारदीवारी और ज़ालिम हथेली के बाहर नहीं जा सकती।

क्यों नहीं जा सकती ? भला जा क्यों नहीं सकती ? एकाएक यह सवाल अकरम के दिल में चकराने लगा, जिस तरह रात के अन्धकार में कमरे में कोई भूली-भटकी चमगीदड़ी बार-बार चक्कर लगाती हो। इस तरह यह सवाल समझ के तहखाने में चक्कर लगाने लगा। आखिर सोच-सोच कर अकरम ने फ़ैसला किया कि बाहर जाकर शफ़ी की राय जाने। अकरम लड़खड़ाते क़दमों से बाहर निकल कर शफ़ी के पास गया। शफ़ी होटल के बड़े खुले आँगन में मोटर में बैठा सिगरेट पी रहा था।

अकरम ने शफ़ी से पूछा—"क्यों शफ़ी यह लपट क्यों बुझती है ? यह गूंज क्यों दब जाती है- शफ़ी मेरे....?"

शफ़ी ठहाका मार कर बोला—"वाह ! ग़नी बादशाह ! तेरी शराब के सदक़े, एक घूंट फ़कीरों को भी चखा दे।"

× × ×

गाड़ी में बैठकर अकरम ने शफ़ी से कहा—"अन्दर जाओ, विलायत बेगम को बाहर ले आओ।"

"क्यों ?"

"मुझे ख़ुद मालूम नहीं क्यों ? हम वापस चलेंगे।"

वापसी में अकरम गाड़ी चला रहा था, पीछे की सीट पर, शफ़ी और विलायत बेगम थे, विलायत बेगम बार-बार उठ के उल्टी करती। बार-बार अकरम को अपनी गाड़ी रोकनी पड़ती। एक अजीब बेचैनी-सी उसके दिल व दिमाग़ में बढ़ती ही जा रही थी। वह शब्दों और भावनाओं को ऊपर ही ऊपर से क्यों मंज़ूर नहीं कर लेता, जोशीजी की तरह ? उसे क्या ज़रूरत है कि वह हर शब्द की सतह को खुरच कर देखे कि उसके अन्दर क्या है ? वह चीज़ों और रिश्तों को—जैसी वे हैं, क्यों मंज़ूर नहीं कर लेता ? फिर आदमी कितना ख़ुश रह सकता है, हर रोज़ टाँगें पसार कर आराम की नींद सो सकता है। अकरम ने सोचा—आखिर वह क्या चाहता है ? ज़िन्दगी से, अपने काम से, लोगों से, इर्द-गिर्द से, वह क्या चाहता है ? क्यों वह उन्हें मंज़ूर नहीं कर लेता—जैसा जोशीजी ने मंज़ूर कर लिया है, राजलता ने मंज़ूर कर लिया है, और बाँकड़िया ने मंज़ूर कर लिया है ! क्यों नहीं, क्यों नहीं वह भी मंज़ूर कर लेता ?

१३

चलती का नाम गाड़ी

विलायत बेग़म और शफ़ी को उनके होटल में छोड़ कर जब अकरम वापस परेल पहुँचा तो रात के दो बज रहे थे। रशीदा अभी तक जाग रही थी। उसने सीढ़ियों पर अकरम के लड़खड़ाते हुए पैरों की चाप सुनी और चुपचाप दर्वाज़ा खोल दिया, अकरम अन्दर आ के एक ट्रंक पर बैठ गया और अपने उलझे हुए घुंघराले बालों में उँगलियाँ फेरने लगा, धीरे-धीरे।

रशीदा कुछ बोली नहीं, चुपचाप उसके पास खड़ी थी; यकायक अकरम ने कहा—"मैं गबड़गोश नहीं बनाऊँगा।"

"क्यों ?" रशीदा ने चौंक कर पूछा।

"बस ! मैं मंज़ूर नहीं कर सकता।" अकरम के स्वर में एक नयी सख़्ती थी।

"क्या मंज़ूर नहीं कर सकते ?"

"वह—वह सब कुछ जो वे लोग कहते और करते हैं।"

"वे लोग कौन हैं ?"

"वे बहुत बड़े हैं, सैकड़ों हैं, हज़ारों हैं, और उन्होंने फ़िल्म इंडस्ट्री को अपनी मुट्ठी में कर रखा है।"

"पर उनका मुक़ाबला कैसे करोगे ?"

"क्योंकि वह सैकड़ों हैं, हज़ारों हैं, मगर लाखों नहीं हैं।"

"और वे लाखों क्या तुम्हारे साथ हैं ?"

"मेरे साथ तो नहीं हैं, लेकिन मैं उनके साथ हूँ आपा !"

"मेरे ख़्याल में तुम्हें ठंडे पानी की ज़रूरत है।" रशीदा ने अकरम को गर्दन से पकड़ा और उसका सर नल के नीचे रख दिया और ऊपर से नल छोड़ दिया।

अकरम बाँकड़िया की कमज़ोरी था, इसलिए अकरम ने जब बाँकड़िया से कहा कि वह उसकी पिक्चर गबड़गोश का डाइरेक्शन नहीं कर सकता, तो बाँकड़िया ने उसे बहुत समझाया, बहुत ऊँच-नीच दिखाई, इंडस्ट्री की बुरी हालत, फ़ाक़ों की तस्वीरें, भविष्य का लालच कि अगर वह तस्वीर सफल बना सका तो आगे अपनी मर्ज़ी की तीन-चार तस्वीरें बना सकेगा। "तुम तो जानते हो" बांकड़िया बोला—"मेरे यहाँ तो डाइरेक्टर ही सभी कुछ होता है। एक तरह से वही पिक्चर का प्रोड्यूसर होता है। रुपया भी उसी के कहने से खर्च होता है, बस एक दफ़ा मैं कहानी पसन्द कर लूँ और कलाकारों का चुनाव हो जाये, आगे में कभी

दख़ल नहीं देता। मैं अभी तुम्हारी मर्ज़ी का सब्जेक्ट दे देता, मगर क्या करूँ ज़माना ख़राब है, लोग अच्छा मज़ेदार सब्जेक्ट चाहते हैं।"

"अच्छा सब्जेक्ट कौन-सा होता है ?" अकरम ने पूछा।

"जो चले !" बाँकड़िया ने बड़े इत्मीनान से कहा।

"अच्छा कलाकार कौन-सा होता है ?"

"जो चले।"

"अच्छा संगीत कौन-सा होता है ?"

"जो चले।"

"हीराबाई बड़ोदकर और लता मंगेशकर में कौन अच्छा आर्टिस्ट है ?"

"लता मंगेशकर।"

"तलत महमूद और बड़े गुलाम अलीखाँ में से कौन अच्छा है ?"

"तलत महमूद।"

"बालगंगाधर तिलक के बुत और रीता हेवर्थ में से कौन अच्छा है ?"

"क्या मूर्खता की बात करते हो," बांकड़िया ने ज़रा गुस्से से कहा।

अकरम बोला—"मैं तुमको बताता हूँ। रीता हेवर्थ अच्छी है, क्योंकि वह चलती है, और बालगंगाधर तिलक का बुत चौपाटी पर खड़ा रहता है। तुम बिल्कुल ठीक कहते हो, उस दिन तिलक की बर्पी थी और इत्तफ़ाक़ से उस दिन रीता हेवर्थ बम्बई के हवाई अड्डे से गुज़र रही थी, उस दिन हवाई अड्डे पर हज़ारों आदमी जमा थे, और चौपाटी पर मुश्किल से पन्द्रह बीस आदमी होंगे; क्योंकि रीता हैवर्थ चलती है बल्कि उड़ती है और तिलक का बुत अपनी जगह खड़ा है, इसलिए मैं गबड़ग़ोश नहीं बनाऊँगा।"

"क्यों ?"

"क्योंकि तुम ठीक कहते हो, तुम चलते हो और मैं बैठा हूँ। एक दिन न्यूटन भी इसी तरह बैठा था और फिर एक सेव उसकी झोली में गिरा और उसे ज़मीन की आकर्षण शक्ति मालूम हो गयी। एक दिन एडीसन बैठा-बैठा पतंग उड़ा रहा था; बादल की बिजली उसकी पतंग से लगी हुई लोहे की चाभी पर गिरी और बिजली मालूम हो गयी। एक दिन तुम्हारा सिनेमा न था, एक दिन उसकी तस्वीरें हिलती-डुलती न थी, वे बैठी थीं; इस बैठे और चलने के बीच में एक सौ साइन्सदाँ की कोशिशों की दास्तान है। उन लोगों का शुक्र अदा करो सेठ, जिनकी वजह से आज यह सिनेमा चलता है और तुम लाखों कमाते हो।"

"मैं आर्टिस्ट नहीं हूँ, बिज़नेसमैन हूँ।" बाँकड़िया ने उसे याद दिलाया।

अकरम ने कहा—"सेठ ! हर चीज़ जो आज चलती है; कभी नहीं चलती थी।"

"उस दिन मैं उसको खरीद लूंगा।" सेठ बोला।

"तो तब तक मुझे खून थूकने दो।" अकरम ने अपनी मुट्ठी भींच कर कहा।

"तुम खून क्यों थूको, मोटर में आराम से क्यों न घूमो ?" बाँकड़िया ने मुस्करा कर कहा।

"अपना-अपना हौसला है सेठ।" अकरम ने कहा—"किसी न किसी को यह काम करना है, मगर मैं तुमसे ही यह बात क्यों कर रहा हूँ ?"

अकरम मुड़ गया, और सेठ केबिन का दर्वाजा खोल कर मैडम के केबिन में दाखिल हो गया। जोशी के केबिन का दर्वाज़ा खोल कर बाहर हाल में चला गया। हाल से बाहर नवभारत प्रोडक्शन के दफ़्तर के बाहर चला गया। मैडम और जोशी दोनों उसके चले जाने के बाद बाँकड़िया के कमरे में आये।

मैडम ने पूछा—'नहीं माना ?"

"नहीं।"

"तो फिर तुम यह पिक्चर भी जोशी को दे दो।"

"मगर इनके पास पहले से ही दो पिक्चरें मौजूद हैं।"

"कोई बात नहीं सेठ, मैं इसे भी पूरा कर दूँगा।" जोशी जी ने कहा।

"अच्छा !"

जोशी की आँखें खुशी से चमकने लगीं, उसे अकरम ज़रा भी पसन्द न था। इस तरह मेरी तरफ़ देखता था; जैसे मैं कोई लोफ़र हूँ। आज हिसाब बराबर हो गया।

१४

दिल की बहस

बाहर अकरम दादर मेन रोड से गुज़र रहा था। फ़िल्म एक्स्ट्रा यूनियन के दफ़्तर के बाहर, बहुत से एक्स्ट्रा भाइयों के हाथ उसे सलाम करने के लिए उठे; अकरम हाथ हिलाता हुआ आगे के ईरानी रेस्तोराँ में चला गया। "लोग आज मुझे सलाम करते हैं, क्योंकि इनका ख्याल है कि मैं गबड़गोश का डाइरेक्टर हूँ। कल इनका रवैया और होगा।" चाय की प्याली मँगवा कर अकरम सोचने लगा—"मगर कल तुम क्या करोगे ? अकरम आज तुम बड़े बहादुर थे, बड़े हिम्मतवाले निहायत साफ़ बात करनेवाले। आज तुमने अवतारों और पैग़म्बरों की तरह बात की; लेकिन कल तुम क्या करोगे अकरम ?" चाय बड़ी कड़वी थी,

अकरम का दम रेस्तोराँ की कलौंस और धुएँ से घुटने लगा, वह जल्दी से चाय पी कर शिवाजी पार्क की तरफ़ पैदल चल खड़ा हुआ; आज वह समुद्र से बातें करेगा, दूसरे लोग उसे समझ नहीं सकते।

बहुत देर तक वह शिवाजी पार्क के समुद्रतट पर घूमता रहा, उसकी भौंहें तनी हुई थीं और होठ भिंचे हुए और उनसे मालूम होता था कि अभी उसके दिल की बहस ख़त्म नहीं हुई। फिर यकायक अकरम तट की रेत पर बैठ गया और मुट्ठियों में रेत भर-भर के गिराने लगा और सोचने लगा—ज़िन्दगी बार-बार नहीं आती सिर्फ़ एक बार आती है। और वक़्त—समुद्र के किनारे-किनारे फैली हुई इस विशाल रेत की तरह है। तुम अकरम इसमें से एक बारगी कितनी मुट्ठियाँ भर सकते हो? एक! और अकरम ने रेत से एक मुट्ठी भर ली। शायद दो, और अकरम ने रेत से दूसरी मुट्ठी भर ली, बस एक मुट्ठी या दो मुट्ठी। वक़्त, पचास वर्ष या सौ वर्ष, मगर इससे ज़्यादा नहीं।....फिर! सोचो, तुम इस रेत को खा नहीं सकते; ज़्यादा से ज़्यादा तुम इस रेत को दूसरों की आँख में झोंक सकते हो, सेठ बांकड़िया की तरह, और बहुत से लोग अपनी ज़िन्दगी में यही करते हैं और वे लोग ज़ालिम होते हैं। फिर कुछ लोग होते हैं, जो इसी रेत को दूसरों की आँखों में डालने के बदले अपनी आँखों में डाल लेते हैं और ऐसे लोग ख़ुद को तकलीफ़ देना पसन्द करते हैं। कुछ लोग इस रेत से महल बनाने लगते हैं, और वे लोग मूर्ख होते हैं। कुछ लोग अत्यन्त सतर्कता से रेत के एक एक कण को गिनने लगते हैं, और ऐसे लोग इस दुनिया के कन्जूसों जैसे हैं। कुछ लोग इस रेत को अपने सर पर उठाकर डाल लेते हैं और हँसने लगते हैं और ऐसे लोग इस दुनिया के बच्चे जैसे हैं और इस दुनिया की सारी सुन्दरता और निरीहता उन्हीं के दम से स्थिर है। कुछ भी हो जाए, अकरम ने सोचा—मैं बच्चा ही बनूंगा। और वह तट की रेत से उठकर घर की तरफ़ चल खड़ा हुआ।

१५
औरत और आईना

आज रफ़िया बहुत उदास थी, इस माह उसे काम बहुत कम मिला था, वह भी दो-चार बार रज़िया की सिफ़ारिश से और दो-एक बार तुरन्त ज़रूरत पड़ जाने पर डाइरेक्टरों ने उसे सेट पर बुलवा लिया था, वरना पूरा सन्नाटा था। वजह वही पुरानी थी और वह जानती थी; मगर अपनी आदत से मजबूर थी। अपनी बहन के एक बच्चे की फटी नेकर सीते-सीते उसके मुंह से

अकस्मात एक आह निकल गयी, क्योंकि वह बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर बम्बई आयी थी। क्या हुआ अगर उसका रंग साँवला था, मेकअप के बाद फ़िल्म में साँवलापन तो दिखाई नहीं देता, फिर उसके चेहरे की बनावट इतनी बुरी तो न थी। रफ़िया ने वह नेकर, जो वह उस वक़्त सी रही थी, यह ख़्याल आते ही वहीं फ़र्श पर छोड़ दी और आईने के सामने जाकर खड़ी हुई, और ग़ौर से अपना चेहरा देखने लगी। वह दिन में कई बार जब भी उसे मौक़ा मिलता था ऐसा ही करती थी। ऐसा मालूम होता था जैसे उसके दिल के अन्दर कोई सन्देह है; जिसे वह बार-बार मिटाने की कोशिश किया करती है। इस वक़्त भी उसने ऐसा ही किया। बड़े ग़ौर से अपने चेहरे की तरफ़ देखने लगी; दिल ही दिल में विचार करते हुए उसने अपने चेहरे—नाक, कान, आँखें, भौंह, होंठ, दाँत, गाल, ठोढ़ी—के एक-एक भाग को अपनी समझ के पेचकस से खोलकर किसी मशीन के पुर्ज़ों की तरह काँच की सतह पर रख लिया और उन्हें बड़े आराम से उलट-पलट कर टटोल-टटोल कर देखने लगी कि किसी में कहीं नुक़्स है!

औरत जब अपना चेहरा देखती है तो सब कुछ भूल जाती है; वह वक़्त भूल जाती है, परिस्थिति भूल जाती है और भूल जाती है कि वह कहाँ खड़ी है? इससे पहले वह क्या कर रही थी और उसके बाद उसे क्या करना है? मर्द अपना चेहरा दिल के अन्दर छुपा के रखता है लेकिन औरत अपने चेहरे को आँख, गाल और होठों की सतह पर बाहर ले आती है। अपना चेहरा देखते हुए रफ़िया को यह मालूम न हुआ कि कब उसकी खोली का दर्वाज़ा खुला, कौन अन्दर दाख़िल हुआ और दबे पाँव धीरे-धीरे आगे आते हुए उसके पीछे खड़ा हुआ, इस क़दर तन्मयता से वह अपना चेहरा देखने में लगी थी। फिर किसी ने हँस कर कहा—"क्यों आईने में अपनी सूरत देखती हो; तुम तो ज़रा भी ख़ूबसूरत नहीं हो।"

एक हल्की-सी हैरत की चीख़ मार के वह पीछे को मुड़ी; यह इशरत था, और एक हरी धारियोंवाली टी शर्ट और नई पतलून पहने हुए जूते चमकाते हुए उसकी तरफ़ देख देख कर मुस्करा रहा था, बग़ल में उसने एक बन्डल दबा रखा था।

"यह क्या है?" रफ़िया ने पूछा, और उसका दिल धड़कने लगा।

इशरत ने मुस्कराकर बन्डल खोला उसमें से पाँच सूती नेकरें निकालीं जो रफ़िया के बहन के बच्चों के लिए थीं, फिर उसने एक कमीज़ और चूड़ीदार पाजामे का कपड़ा निकाला, यह रफ़िया की अम्मा के लिए था, फिर उसने बन्डल का खाली काग़ज़ उठा के खिड़की से बाहर फेंक दिया। रफ़िया खुश भी हुई; लेकिन कुछ उदास भी; वह उसके लिए कुछ नहीं लाया था।

"और यह लो तीस रुपये।" इशरत ने उसे दस-दस के तीन नोट देते हुए कहा।

"यह काहे के लिए ?" रफ़िया के दिल में एक हल्की सी आशा की किरण आहिस्ता से जागी।

इशरत ने कहा—"तुम्हारे घर में रहता हूँ, रोटी खाता हूँ, सोता हूँ। तुम कौन सी सूरत की महारानी हो ? कब तक खैरात बाँटती जाओगी ?"

रफ़िया को इन रुपयों की सख़्त जरूरत थी। उसने रुपये के लिए एक बार भी इन्कार नहीं किया; लेकिन उसका दिल अन्दर से जैसे बैठ गया हो। इशरत एक माह से यहाँ रह रहा था; उसके सम्बन्ध बेतकल्लुफ़ दोस्तों के से थे। वह उसे बहुत पसन्द करता था, लेकिन उसकी इज्ज़त भी करता था। उसकी निकटता में भी एक दूरी थी और उसके नज़दीक आने में भी एक फ़ासला था, एक मनभावनी सी झिझक जो, कभी-कभी तो रफ़िया को बहुत अच्छी मालूम होती थी, जो कभी-कभी खुल जाती, कई बार बातों और बहसों के दौरान में। रफ़िया ने महसूस किया जैसे इशरत उसे अजीब सी निगाहों से देख रहा है जैसे उसका ध्यान उसकी बातों में नहीं है; इशरत की निगाह रफ़िया के जिस्म पर छिछलती हुई जा रही है। रफ़िया को अपने चेहरे पर शक था, अपने जिस्म पर शक नहीं था। उसे मालूम था कि वह एक बहुत ही मोहिनी अदाओं वाले शरीर की मालिक है; जो चलते-चलते अक्सर लोगों को पलट कर उसकी तरफ़ देखने के लिए मजबूर कर देता था। मगर यह क्या ? एक बार भी तो एक माह में इशरत ने कोई छिछोरी हरकत नहीं की और वह निगाह तो इतनी भोली, मासूम, ऐसी छिछलती हुई होती थी कि वह उसका कुछ भी मतलब ले सकती थी; अच्छा भी, बुरा भी। शायद इशरत मुझे पसन्द नहीं करता है; मगर वह चाहती क्यों थी कि इशरत उसे पसन्द करे। जाने क्यों चाहती थी ? उसे तो उन बातों से पूरी नफ़रत थी; फिर वह क्यों चाहती थी कि इशरत और कोई नही, उसे जरूर चाहे। एक बार उन निगाहों से उसकी तरफ़ देख ले, नहीं-नहीं, वह कहाँ वैसा चाहती है, लानत भेजो जी, इशरत पर और इन मर्दों पर, बड़े वैसे होते हैं !

इशरत ने कहा—"अब तुम यह आईना छोड़ो, और जल्दी से साड़ी बदल के मेरे साथ बाहर चली चलो।"

"कहाँ ?"

"कहीं भी चलेंगे।" इशरत ने बड़ी ज़िन्दादिली से इस तरह बाज़ू फैला के कहा—जैसे आज सारी ज़मीन और सारा आसमान उसका हो।

"यही साड़ी ठीक है ?" रफ़िया ने ज़रा सन्देह के लहज़े में अपनी साड़ी की तरफ़ देखते हुए कहा।

"ऊँ हूँ ! नहीं चलेगी मैडम !"

इशरत खिड़की पर जाकर खड़ा होके बाहर देखने लगा। रफ़िया साड़ी बदलने लगी।

× × ×

भायखला स्टैण्ड पर इशरत ने ज़ोर से सीटी बजायी और एक खाली टैक्सी चक्कर लगा के बड़े झन्नाटे से उनके पास आकर फ़ुटपाथ के क़रीब खड़ी हो गयी। रफ़िया ने आश्चर्य से कहा—"टैक्सी में ?"

इशरत ने टैक्सी का दर्वाज़ा उसके लिए खोल कर और बड़े अदब से झुक कर कहा—"मलिका-आलम के लिए।"

रफ़िया टैक्सी में बैठ गयी, उसके पास इशरत आके बैठ गया, टैक्सी का दर्वाज़ा ज़ोर से बन्द हो गया।

"कहाँ चलेंगे ?" इशरत ने पूछा।

"तुम-तुम कहो।" रफ़िया को अपनी आवाज़ बड़ी अजनबी मालूम हुई।

इशरत ने थोड़े समय के लिए सोचा फिर मुस्करा के टैक्सी ड्राइवर से कहा—"ठेठ कोलाबे चलो।"

टैक्सी ड्राइवर ने मुस्करा के अपनी टोपी टेढ़ी की और टैक्सी की चाल यकायक तेज़ कर दी और रफ़िया एक हिचके से इशरत के कंधे से जा लगी और इशरत के तरसे नथुनों में किसी ज़ोरदार खुशबू की महक तैर गयी। रफ़िया ने जल्दी से अपने आप को इशरत से अलग किया, और अपनी सीट पर सम्भल कर बैठ गयी। मगर कुछ क्षणों का वह स्पर्श बहुत देर तक किसी साज़ के मद्धम मीठे स्वरों की तरह उसके दिल व दिमाग़ में काँपता रहा।

कोलाबे में जूते वाले की दूकान पर इशरत ने टैक्सी को रोका और रफ़िया को लेकर अन्दर चला गया; अन्दर जाते ही एक बाँकी छरहरी एंग्लोइण्डियन सेल्स गर्ल से कहने लगा—"वह शो केस में जो हरे रंग की ऊँची एड़ी की सैन्डिल है, वह ले आओ।" वह ले आयी।

इशरत ने रफ़िया से कहा—"ट्राई करो।"

सैन्डिल जरा बड़ी थी।

सेल्स गर्ल बोली—"मैं आपके साइज़ की सैन्डिल लाती हूँ।"

रफ़िया ने वह सैन्डिल पहन ली।

"चलो !" इशरत ने रफ़िया से कहा।

रफ़िया अपनी हरी साड़ी सम्भालते हुए दूकान के अन्दर बिछे ग़लीचे पर चलने

लगी, चलते चलते ख़ुद बख़ुद उसकी कमर का लोच ज़ाहिर होता गया। चाल में एक नमकीनियत और अदा पैदा हो गयी। इशरत ने ताली बजा के कहा—"फर्स्ट क्लास!"

सेल्स गर्ल बोली, "इसे बाँध दूं?"

इशरत ने कहा—"इसे नहीं, इन्हें" इशरत ने रफ़िया के घिसे हुए पुराने चप्पलों की तरफ़ इशारा किया।

सेल्स गर्ल ने मुस्करा कर उन्हें एक ख़ाली डिब्बे में रख दिया। इशरत ने वह डिब्बा उठा लिया, बिल अदा कर दिया और रफ़िया के साथ आके बाहर टैक्सी में बैठ गया, टैक्सीवाले से कहने लगा—"इण्डिया गेट चलो।" इण्डिया गेट पहुँच कर इशरत और रफ़िया दोनों टैक्सी से उतरे, इशरत की बग़ल में पुरानी चप्पलों वाला डिब्बा था। समुद्र के किनारे किनारे एक ऊँची दीवार थी। इशरत ने बाज़ घुमा के ज़ोर से वह डिब्बा समुद्र में फेंक दिया। रफ़िया चिल्लाती रह गयी।

"क्या करते हो? क्या करते हो? मेरी चप्पलें।"

इशरत ने कहा—"मैडम! यह पुराने पत्तड़ तुम्हें अच्छे नहीं मालूम होते; अब ज़रा इस ऊँची एड़ी वाले हरे रंग के सैन्डिल में अपनी हरी साड़ी को झुलाते हुए चलो, देखो तुम्हारी ख़ूबसूरती का हर बांकपन कैसा झलकता है। तुम्हारे जिस्म का भूगोल कैसे झलक झलक कर बाहर आ जाता है। मैडम तुम औरत नहीं हो ख़ूबसूरती की एटलस हो!"

रफ़िया की आँखें यकायक ख़ुशी से चमकने लगीं, आश्चर्य, प्रसन्नता और एक अज्ञात सी थरथरी। वह बोली—"यह आज तुम्हें हुआ क्या है?"

इशरत ने कहा—"कुछ नहीं, हवा चलती है, फूल झूलते हैं, समुद्र क़हक़हे लगाता है, बोलो अब कहाँ चलोगी?"

रफ़िया ने कहा—"मैं तो खट्टी-मिट्ठी चाट खाऊँगी।"

चौपाटी पर उन्होंने खट्टी-मिट्ठी चाट खायी, वहाँ से कोलाबे वापस जाके उन्होंने साल्ज़वर्ग में आइसक्रीम खायी, साल्ज़वर्ग से वे लिबर्टी के सामने गये जहाँ रफ़िया और इशरत ने संतरे के फलों का रस पिया। यहाँ हल्की-हल्की बारिश शुरू हो गयी। रसवाले के टेण्ट के नीचे खड़े-खड़े इशरत लिबर्टी की रंगीन फिल्मों की रोशन झलकियाँ रफ़िया के चेहरे पर गुज़रते हुए देखता रहा। बैंगनी रंग, गहरा लाल रंग, गुलाबी, मानक, पन्ना, पुखराज कितने ही ख़ूबसूरत जवाहरात के से रंग रफ़िया के चेहरे पर से गुज़रते जा रहे थे और इस वक्त वह कितनी खुश थी; अपने आप में खोई हुई सांस तेज़-तेज़ लेती रही, बच्चों की तरह ख़ुश, मासूम और विश्वास भरी।

धीरे-धीरे बारिश हो रही थी।

बारिश, रोशनियाँ, गुज़रते हुए लोगों की बात-चीत, किसी दूसरी दुनिया से आयी हुई। रफ़िया का ज़िस्म सुडौल और जवान और किसी पुरानी अजनबी पुर-ज़ोर खुशबू में महका हुआ! इशरत ने अपनी आँखें बन्द करके रस का घूंट पिया, आहिस्ता आहिस्ता जैसे वह उसकी पवित्र मिठास की एक एक बूँद से आनन्द उठा रहा हो! यकायक बारिश तेज़ हो गयी और दोनों टैक्सी में जा पहुँचे। टैक्सी चलने लगी। बारिश के तेज़ छींटे ज़ोरदार गूंज से कांच की खिड़कियों से टकरा कर बजने लगे। बाहर तूफ़ान बढ़ रहा था, लेकिन अन्दर कितनी ख़ामोशी थी, कितनी शान्ति थी। वह और इशरत कल फिर ग़रीब होंगे। उदासी और नाकाम मुहब्बत का भूखा खेल, धोखा, और वह फ़रेब जो यह समाज मुहब्बत को हमेशा से देता आया है। मगर, आज यह इस वक़्त का साथ किस क़दर प्यारा है, किस क़दर ख़ूबसूरती और ख़ुशी का है। रफ़िया ने सोचा—हाय यह क्षण कितनी मुद्दत के बाद आता है, हाय मैं कैसे उसका दामन पकड़ के उसके पाँव से लिपट जाऊँ, ताकि यह क्षण कहीं भाग न जाये! मेरे क्षण, मेरे अपने क्षण, मेरे अपने प्यारे क्षण! आ, मेरे सीने से लग जा, मैं तुझे अपनी छाती से लगा के लोरी सुनाऊँगी और तू मेरी गोद में, मेरे सारे अधूरे सपनों, मेरे सारे सुनहरे ख़्वाबों को देखता हुआ सो जायेगा। मेरे नन्हें क्षण सो जा...सो जा! शायद चलता हुआ वक़्त सो गया कि रफ़िया की भावना सो गयी, उसके सारे संदेह सो गये। वह भटकी हुई राहें और दिशाएँ, वह ख़ौफ़ और डर और बेग़ानगी के सारे साये सिमट कर सो गये और उसने एक ऐसी आह भरी; ऐसी संतोष की, ऐसी प्रसन्नता और ख़ुशी से भरपूर आह जैसे वह अपनी उदास देह के अन्दर सारे जहान की प्रसन्नताएँ छुपाए हुए थी। कोई मर्द इस तरह से आह नहीं भर सकता। औरत भी कभी कभी एक बार ज़िन्दगी में या दो बार या तीन बार; लेकिन बार बार नहीं। यह आह जो आह नहीं होती; ज़िन्दगी की गहरी गम्भीर वाह होती है।

जब रफ़िया टैक्सी से उतरी तो ऐसे लड़खड़ा रही थी, जैसे उसने ख़ुशी की शराब पी हो! इशरत ने टैक्सी छोड़ दी। अब वे मरीन ड्राइव के आख़िरी सिरे पर खड़े थे, और बँध के उस किनारे की तरफ़ जा रहे थे, जो समुद्र के बीच में चला जाता है। अब बारिश रुक गयी थी और चारों तरफ़ धुन्ध छा गयी थी, और वे दोनों ख़ामोशी से बँध पर बैठकर समुद्र की बेक़रार लहरों को पत्थरों से टकराकर वापस जाते हुए देखने लगे।

बड़ी देर तक ख़ामोशी रही। रफ़िया ऊपर से ख़ामोश थी लेकिन अन्दर से उसका दिल एक अजीब तड़प और बेक़रारी से भर गया। बेक़रारी जो बोलती नहीं

है, लेकिन दिल में एक खन्जर की तरह चुभी रहती है। इशरत रफ़िया को एक पुरानी ग़ज़ल सुनाने लगा।

ग़ज़ल सुनकर भी रफ़िया मौन रही, समुद्र की लहरों की तरफ़ ताकती रही।

कुछ अरसे के बाद रफ़िया ने कहा—

"इशरत !"

इशरत रफ़िया की तरफ़ देखने लगा।

रफ़िया ने कहा—"मुझे भूख लगी है।"

इशरत ने कहा—"यहाँ चनों के सिवा कुछ नहीं मिलेगा।"

"चने ही ले आओ।"

हल्की हल्की सरदी में गरम कुनकुने भुरभुरे भुने हुए चनों का खस्तापन, वह चनों के कुट-कुटाने की धीमी धीमी आवाज़ !

रफ़िया का जी चनों के लिए ललचा उठा। इशरत चने लेने चला गया, वह देर तक इशरत को धुन्ध में ग़ायब होते हुए देखती रही। ऐ ख़ुदा ! यह कितना हसीन है, वह तो इस पल के क़ाबिल कभी न थी, इस लायक़ न थी, कि कभी ऐसी खूबसूरती के नाज़ुक पंख छू सकती, ऐसी गहरी आकर्षक धुन्ध जो दुनिया की बदसूरतियों को एक मेहरबान माँ की तरह ढंक देती है, और खूबसूरतियों को उभार देती है। जो चलती हुई चीज़ों को अपने सहारे में आराम से सुला देती है, और गतिहीन चीज़ों को चलने में बल प्रदान करती है। रफ़िया ने घूमकर देखा, जिधर इशरत ग़ायब हुआ था, मरीन ड्राइव की बिल्डिगें सतह से ऊपर उठ गयी थीं और धुन्ध में पड़े हुए जहाज़ों की तरह अपने प्रकाशित कांच की खिड़कियाँ खोले हुए तैर रही थीं। और उन बिल्डिगों से परे थियेटर की आखिरी गिरजानुमा मन्ज़िल किसी पालवाले जहाज़ के लम्बे मस्तूल की तरह धुन्ध में बही जा रही थी। फिर रफ़िया ने धुन्ध में आते हुए इशरत का चेहरा देखा और वह क्षण और वह चेहरा हमेशा-हमेशा के लिए उसकी आत्मा में अंकित हो गया। वह चेहरा, वह कभी भूल नहीं सकती। धुन्ध में लिपटा हुआ, खामोश, खूबसूरत, आगे बढ़ता हुआ चेहरा। वह चेहरा जैसे उसकी तरफ़ तकता हुआ आ रहा था या उससे भी परे किसी फैली हुई विशाल दुनिया की तरफ़ तक रहा था, कैसा खामोश सुता हुआ, अपने आप में खोया हुआ, दूर किसी दूर-दुनिया की आवाज़ सुनता हुआ चला आ रहा था। और यकायक रफ़िया का दिल भय से थरथरा गया। एक पल के लिए उसके दिल में ख़्याल आया कि यह चेहरा कहीं ग़ायब हो जायेगा, उसकी आँखों के ऊपर से तैरता हुआ इन बिल्डिगों के टैरेस पर तैरता हुआ अजनबी आकर्षक स्याह सफ़ेद रास्तों पर चला जायेगा, जो ज़िन्दगी और मौत के बुलावे हैं। मगर नहीं, वह चेहरा

क़रीब आता गया, क़रीब आता गया, बिल्कुल उसके क़रीब आके रुक गया और उस वक्त रफ़िया की सारी भावनाएँ उसकी आँखों में सिमट आयी थीं और न वह कुछ सुन सकती थी, न देख सकती थी, न महसूस कर सकती थी। सिर्फ़ यह एक चेहरा था, एक वह थी और कुछ न था। काला समुद्र था, काली ज़मीन थी, काली धुन्ध थी और वह चेहरा था—रोशनी के मीनार की तरह तूफ़ान में खड़ा मज़बूत और अटल। रफ़िया ने बेक़रार होकर इशरत की बाँह पकड़ ली। इशरत ने चनों की पुड़िया उसे देते हुए कहा—

"बड़ी भूखी हो ?"

"भूखी तो वह है, मगर इशरत क्या तुम मेरी भूख को समझ सकते हो ?"—रफ़िया ने अपने दिल ही दिल में कहा। इशरत ने समुद्र की लहरों में चने का एक दाना फेंकते हुए कहा—"रफ़िया आज मैं बहुत खुश हूँ; आज मुझे जोशी जी की पिक्चर में एक छोटा सा रोल मिला है, बहुत छोटा सा है, मगर रोल है और यह उन्हीं जोशी जी की पिक्चर में है जिन्होंने मुझे फ़िल्म टेस्ट में फ़ेल कर दिया था। आज उन्होंने मुझे एक सौ रुपये एडवान्स में दिये। अब हम....अब हमारी हालत वह नहीं रहेगी।" "ये हम—हमारे—लोग कौन हैं ?" रफ़िया का दिल काँपने लगा, वह कुछ पूछना चाहती थी मगर चुप रही।

इशरत हौले-हौले कहने लगा—जैसे अपने-आप से कह रहा हो—"इस माह मैंने तीन सौ कमाये हैं, अगले माह चार-पाँच सौ कमाऊँगा; फिर हम यहाँ भिण्डी-बाज़ार की इस गन्दी खोली में थोड़े रहेंगे, कोई उम्दा छोटा-सा फ़्लैट लेंगे, एक कमरा तुम्हारा होगा, एक मेरा, एक अम्मा और बच्चों के लिए, एक सौ रुपया हर माह अपनी अम्मी को भेजा करूँगा; फिर हम....."

'फिर वही हम !'—रफ़िया ने गोया अन्दर से अपने कान बन्द करते हुए अपने-आप से कहा—'इस 'हम' को मत सुनो, इस हम के क़रीब मत जाओ, इस हम को अन्दर मत आने दो, देखो तुम कैसे काँप रही हो। यह 'हम' कोई नहीं है, यह कहीं नहीं है, यह 'हम' तो बिल्कुल अजनबी है, यह हम जो शाम की हवाओं में आया है, इस हम से बच निकलो। रफ़िया, अपनी आत्मा की सारी खिड़कियाँ, दर्वाज़े और रोशनदान बन्द कर लो, और इस 'हम' को कभी भी अन्दर मत आने दो।'

"फिर हम हर रोज़ यहाँ सैर के लिए आयेंगे, और कैसे खुश-खुश घूमा करेंगे हम।" इशरत ने रफ़िया का हाथ अपने हाथ में ले लिया। "सुनो रफ़िया, तुम और हम—!"

"फिर वही हम ?"—यकायक रफ़िया ने कान ही नहीं आँखें भी बन्द कर लीं और अपनी आत्मा का सारा ज़ोर इस 'हम' को न सुनने में लगा दिया, फिर उसे मालूम भी न हुआ कि वह खाँस रही है, इशरत कुछ कह रहा है। उसे सिर्फ़ इतना मालूम हुआ कि आँखें बन्द करने पर भी आँसू बिल्कुल सीमा तोड़ कर उसकी आँखों से बह रहे हैं, वह सिसक रही है, और वही हम है, और वह हम उसकी सारी कोशिशों के बावजूद भी रोशनी की लकीर की तरह सारे बन्द दर्वाज़ों और खिड़कियों और रोशनदानों से गुजरता हुआ उसकी रूह के कोने में पहुँच रहा है।

रफ़िया बेक़रार होकर उठ खड़ी हुई। दूर कहीं बिल्डिंग में काँच की कोई प्रकाशमान खिड़की खुली और संगीत धुन की नाव पर बहता हुआ उस किनारे आ लगा, जहाँ इशरत और रफ़िया खड़े थे, एक दूसरे की तरफ़ ख़ामोश से ताकते हुए। धीरे से इशरत ने रफ़िया की ओर अपनी बांहों को फैला दिया। रफ़िया का सारा जिस्म कांपा, और फिर कांप कर एकबारगी उन बांहों में घुल गया।

इन बांहों के बाहर ग़रीबी थी और बेकारी, और ज़िन्दगी की कड़ुआहट!

रफ़िया ने सोचा—लेकिन अन्दर, इन बांहों के अन्दर, कुछ क्षणों की चैन है और है संगीत का उलाहना, उसकी महत्ता और ख़ूबसूरती की नाव, जिसका कोई किनारा न था। चन्द क्षणों के बाद वह इन बांहों से बाहर जायेगी। फिर वही घुटन; जिसमें है ग़रीबी; और वह ग़रीबी का मुक़ाबला करेगी। मगर कुछ क्षणों के लिए, तो वह इस ख़ूबसूरत संगीत से अपनी आत्मा को ताक़त से भरपूर करेगी--संगीत—एशियाई रात के फूलों की तरह हौले-हौले महकता हुआ संगीत, लहरों की सतह पर डोलता हुआ, जिसकी धुन किसी अजनबी किश्ती के घमण्डी पाल की तरह अपना मुंह उठाए धुन्ध में बहती जा रही थी।

धुन्ध बहती गयी, बहती गयी, यकायक रफ़िया ने महसूस किया कि वह और इशरत दोनों अकेले खड़े हैं, मुहब्बत के एक द्वीप में और चारों तरफ वक्त बह रहा है।

१६

मन का मीत

रोहिणी स्टुडियो अन्धेरी में जोशी जी के सेट पर बहस चल रही थी; बहस करने वाले थे जोशी और अकरम और हँसने वाले थे—जोशी जी के असिस्टेन्ट क़यूम, राजलता और शमशाद, चन्द नाचनेवाली लड़कियां; जिनमें रफ़िया भी शामिल थी। सेट बहुत बड़ा था, तस्वीर वैसे सामाजिक थी लेकिन सेट फेन्टेसी

था। राजलता हीरो के बिछोह में रोते-रोते सो जाती है और सपने में एक दृश्य देखती है; जो इस सेट में दिखाया गया था।

लेकिन जोशी और अकरम की बहस इस सेट या इस सेट मे लिये जाने वाले शाट से सम्बद्ध न थी। जब से अकरम ने गवड़गोश की डाइरेक्टरी पर लात मारी थी, उसकी बेरोज़गारी बढ़ती जा रही थी और अब तो उसके ख़ूबसूरत चेहरे पर भी प्रकट हो चली थी। अकरम ने परेशान होके गाने लिखने शुरू कर दिये थे। जोशी जी ने अकरम पर तरस खाके (और कुछ लोग कहते हैं कि तरस प्रतिशोध का दूसरा रूप है) उसे नाच का एक दृश्य गीत में बांधने के लिए दिया था। आज अकरम वह गीत ले के आया था, और इसलिए भी जोशी जी ने उसका गीत नामन्ज़ूर कर दिया था। वैसे अगर वह गीत उन्हें दिल से पसन्द भी होता फिर भी वह उसे नामन्ज़ूर कर देते। उन्हें वास्तव में अकरम से कोई गीत लिखवाना नहीं था सिर्फ़ उसे अपमानित करने का अभिप्राय था। इस वक्त बहस का रुख तेज़ी की तरफ़ था। जोशी जी ने सामने पड़ी हुई तिपाई पर इतने जोर का मुक्का मारा कि तिपाई उलट गयी। और वह लाल भभूका होके बोला—"नहीं अकरम भाई! नहीं चलेगा; यह गीत मुझे अपने डान्स में नही चाहिए। कुछ इस तरह का—कि रात जवान है, आसमान पर चाँद है, मेरे पास आ जाओ!" अकरम ने कहा–"मगर हर डान्स के बोल प्राय यही होते हैं—रात जवान है, आसमान पर चाँद है, मेरे पास आ जाओ। तुम्हारे इसी सेट के नाच के बोल भी लगभग यही हैं। क्या नाच इसके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकता? तुम्हारा नाच यह भी तो कर सकता है—

'धूप चमकीली है, गेहूँ की बालियाँ सरसराती हैं, आओ काम करो—'

'कुँवारी ज़मीन बुला रही है हल के इन्तज़ार में है, मेहनत इन्सान के हाथों की है।'

'बर्फ़ ने सारे रास्ते बन्द कर दिये हैं, घरों से कोई बाहर नहीं निकल सकता, आओ बर्फ़ हटाएँ।'

"तुमने लालसागर में जूतों का डान्स देखा था, और अखबार का डान्स कितना आकर्षक और दिलचस्प था, हम लोग किताबों का नाच मिसाल के तौर पर क्यों नही दे सकते?"

जोशीजी ने अकरम से कहा—"ऐ भाई मेरे! तुम अपना दर्शनशास्त्र यहाँ मत बघारो, अपने को और कुछ नहीं चाहिए, अपन किसी का भला करना नहीं माँगता, कोई ख़तरा मोल लेना नहीं माँगता, अपना तो यह डान्स भी घूम फिर के बस यही

रहेगा—रात जवान है, आसमान पर चाँद है; मेरे पास आ जाओ। हम तुम्ह तरह नाकाम डाइरेक्टर होना नहीं माँगता, अपन को कोई और नाच नहीं चाहि कोई और गीत नहीं चाहिए, कोई और ख्याल नहीं चाहिए, तुमको पैसा माँगता तो इसी ख्याल को घुमाकर दूसरे बोल में बाँध के लाओ, भूखा मरना माँगता इन्डस्ट्री से बाहर जाओ।"

"मगर मुल्क और क़ौम....?"

"ऐसी की तैसी मुल्क और क़ौम की, सब से पहले अपनी जेब गरम क देखो भाई, हमारा फिनान्सर प्रोड्यूसर बाँकड़िया सेठ भी यही करता है, उस डिस्ट्रीब्यूटर लाला भगतलाल भी यही करता है, उसका एग्जिबिटर चोरघड़े यही करता है। और फिर लोग भी तो यही चाहते हैं।"

"लोगों की बात मैं नहीं मानता कि सभी हमेशा इसी तरह की शायरी पसन्द करते हैं। माना मुहब्बत की शायरी को बहुत पसन्द करते हैं," अकरम कहा—"और यह एक बड़ी ख़ूबसूरत चीज, इन्सानी प्रेम, समाज की बेहतर चीज़ों में से है। लेकिन आप मुहब्बत के साथ-साथ मेहनत की चाशनी भी दे स हैं, मिसाल के तौर पर फ़ैज़ की शायरी।"

"कौन फ़ैज़ ?" राजलता के कान खड़े हुए, क्योंकि हिरोइनों में वह ब इन्टलेक्चुएल समझी जाती थी। शमशाद भला कहाँ पीछे रहनेवाली थी, उसने साथ दिया, "हमें तो कमज़ात की ग़ज़लें बहुत पसन्द हैं, उस दिन तूने सुनाई न ?" शमशाद राजलता की तरफ़ देखने लगी।

राजलता ने उसे टोक के कहा—"कमज़ात नहीं, हमज़ाद। तुझे दस ब बताया है।"

"हाँ हमज़ाद ! हमज़ाद !!" शमशाद ने देहातियों की तरह अपने कानों हाथ रखते हुए ज़रा तुतलाते हुए कहा। वह निहायत ही अनजानपने में बिल्कु बच्चों की तरह कभी-कभी ज़रा-सा मुस्कराती थी और लोगों को उसका यह मुस्क राना इस क़दर पसन्द था कि उसको हर तस्वीर में इस मुस्कराहट का जगह-जग ख्याल रखा जाता था।

साहित्य और कला पर जब इन्डस्ट्री की दो चन्द्रमुखी हिरोइनें अपने विचा को व्यक्त कर चुकीं तो अकरम चुप हो गया; उसके बाद उसे कुछ कहने का साह न हुआ, उसने फ़ाइल बग़ल में दबायी और चुपके से सेट से बाहर निकल गया उसके जाने के बाद जोशी जी ने ज़ोरों का क़हक़हा लगाया और बोले—"आ ज हैं अलीगढ़ से इन्डस्ट्री की हालत ठीक करने, अपनी पतलून की हालत तो ठी कर नहीं सकते।"

इस पर एक ज़ोर का ठहाका लगा।

"एक्स्ट्रा डान्स गर्ल्स आन दि सेट!" जोशी ज़ोर से अंग्रेज़ी में चिल्लाया और रफ़िया, रज़िया और विलायत बेगम और दूसरी लड़कियाँ जल्दी से सेट की तरफ़ भागीं। बाबूलाल उन्हें हिदायतें देने लगा।

जोशी ने बाबूलाल से कहा—"लड़कियां इस शाट में ज़ोर से कूल्हे मटका सकती हैं, लांग शाट है, मेन्सर लांग शाट पर आपत्ति नहीं करेगा।"

फिर जोशी जी ने मुड़ कर शमशाद और राजलता से कहा—"दिलबरो! तुम भी मेक-अप कर लो; अगला शाट आपका है।"

राजलता और शमशाद मेक-अप रूम में जा बैठीं।

शमशाद ने राजलता से कहा—"मुझे बेचारे अकरम पर बड़ा तरस आता है।"

राजलता बोली—"बुला ले न उसे अपने पास, वैसे देखने में खासा खूबसूरत है।"

शमशाद हँस कर मेक-अप करने लगी।

उसके मेक-अप रूम से दो कमरे परे एक्स्ट्रा भाइयों का मेक-अप रूम था, वहाँ हो-हल्ला मचा हुआ था जैसे उन लोगों के मेक-अप रूम में हमेशा होता है। शमशाद ने यह शोर सुनकर राज से कहा—"यह खुला हुआ दर्वाज़ा तो बन्द कर दे, ये लोफर लोग किस क़दर शोर मचाते हैं।"

राज दर्वाज़े की ओर मुड़ी, यकायक सामने से उसने इशरत को एक्स्ट्रा मेक-अप रूम की तरफ़ जाते हुए देखा। हरे रंग की धारीदार शर्ट और भूरी ऊनी पतलून में वह बहुत जंच रहा था। राजलता यकायक दर्वाज़े पर खड़ी की खड़ी रह गयी। फिर सांस अन्दर खींच कर बोली—"हाय शमशाद! बिल्कुल एलन की तरह!"

"कहाँ?" शमशाद ड्रेसिंग टेबिल से भागी भागी दर्वाज़े पर आयी, इशरत उन दोनों की तरफ़ पीठ किये एक्स्ट्रा मेक-अप रूम की तरफ़ जा रहा था। दर्वाज़े पर जा के वह रुका और ज़रा-सा घूम के उसने राजलता की तरफ़ देखा। राजलता और शमशाद दोनों दर्वाज़े की ओट में हो गयीं।

राजलता ने शमशाद का हाथ अपने सीने पर रख कर कहा—"कैसे दिल धक-धक कर रहा है।"

शमशाद ने कहा—"सचमुच! बिल्कुल दूसरा एलन है।"

राजलता ने कहा—"और बेचारा एक्स्ट्रा में काम करता है। हाय री कम्बख़्ती!" शमशाद ने अर्थपूर्ण निगाहों से राजलता की तरफ़ देखकर पूछा—"किसकी कम्बख़्ती आयी है?"

मगर राज ने कोई जवाब न दिया; वह पेन्सिल लेकर अपनी भौंहें ठीक करने लगी।

× × ×

शाम के पाँच बजे के क़रीब रफ़िया का आख़िरी शाट ख़त्म हो गया, इशरत का सिर्फ़ एक शाट बाकी था। रफ़िया ने इशरत से कहा—"मैं केबिन में चलके बैठती हूँ।"

इशरत ने कहा—"हाँ तुम चलो; मैं अभी आता हूँ।"

उसके कोई बीस मिनट के बाद इशरत का शाट भी ख़त्म हो गया और जोशी जी ने तमाम एक्स्ट्रा लोगों को छुट्टी दे दी; अब सिर्फ़ दो क्लोज़अप बाक़ी थे। एक शमशाद का, एक राजलता का।

राजलता ने कहा—"मेरे सर में दर्द हो रहा है।"

जोशी जी ने कहा—"बस एक ही तो शाट है।"

राजलता जल्दी से बोली—"कल ले लेना, इस वक्त मुझे जाने दो; सर फटा जा रहा है।"

यह कह कर और जोशी जी का उत्तर सुने बिना राजलता जल्दी से सेट से बाहर निकल आयी। केबिन रास्ते में पड़ता था; लेकिन केबिन से पहले स्टेज के बाहर एक खुली जगह में राज की गाड़ी पार्क की हुई थी। राज जल्दी से मेकअप उतारे बिना गाड़ी का दर्वाज़ा खोल स्टेरिंग व्हील पर बैठ गयी।

थोड़ी देर के बाद इशरत मेक-अप रूम से अपना चेहरा साफ़ करते हुए बाहर निकला और केबिन की तरफ चला, रास्ते में उसके कानों में आवाज आयी —"कहां जाओगे ?"

इशरत ने पलट के देखा राजलता अपनी गाड़ी में बैठी उसकी तरफ़ देख रही थी।

"जी !" इशरत ने पूछा, उसके कानों को विश्वास न आ रहा था।

"आप—आप कहाँ जा रहे हैं ?" राजलता ने पूछा, "मैं आप को छोड़ दूँ।"

इशरत के मुँह से सहसा निकला, "मैं भिण्डीबाजार में रहता हूँ।"

"आइए, बैठिए, मैं आपको वहाँ छोड़ दूँगी" राज ने अपनी गाड़ी को स्टार्ट करते हुए कहा।

मगर बस, एक, सिर्फ़ एक क्षण के लिए इशरत हिचकिचाया, फिर वह गाड़ी के अन्दर बैठ गया, राज ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। गाड़ी धीरे-धीरे बढ़ती हुई केबिन के सामने से गुज़र गयी। "अरी वह देख तेरा इशरत !" रज़िया ने रफ़िया को ज़ोर से आवाज़ दी। दोनों एक बेंच पर बैठी चाय पी रही थीं, रफ़िया

के हाथ से प्याली गिर गयी, और फ़र्श पर झन्न से टूट गयी, मगर रफ़िया को कुछ होश न था। वह भाग कर दर्वाज़े में जा खड़ी हुई, अब कार आगे जा चुकी थी और राज और इशरत के चेहरे भी वह देख सकती थी, वे मुस्कराते हुए चेहरे दुधारी तलवार की तरह उसके सीने में चले गये।

आहिस्ता-आहिस्ता राज की गाड़ी स्टुडियो के दफ़्तर के सामने से चक्कर खा के बड़े गेट की तरफ़ मुड़ी और फिर नज़रों से ओझल हो गयी।

रफ़िया ने रज़िया का हाथ ज़ोर से पकड़ रखा था।

रज़िया चिल्लाई—"अरी क्या करती है भूतनी! नाखून गड़ा दिये मेरी कलाई में।"

× × ×

गाड़ी अन्धेरी से निकली, स्टेशन के गेट से गुजरी, बम्बई की तरफ़ मुड़ी; विलेपार्ले गया, सान्ताक्रुज गया, खार गया, लेकिन गाड़ी भिण्डी बाजार जाने के लिए बांदरा की तरफ़ न मुड़ी, पालीहिल की ओर घूम गयी; जहाँ राजलता का बंगला था।

× × ×

रज़िया रफ़िया को पिक्चर में ले गयी लेकिन कभी कभी इन्सान आँखें होते हुए नही देख सकता, कान होते हुए भी नही सुन सकता। तस्वीरें रफ़िया की पुतलियों से फिसलकर बहती चली जा रही थीं उसके दिमाग की परतों में नहीं पहुँच रही थीं। अभिनेता बातचीत कर रहे थे, मगर उनका एक भी शब्द रफ़िया के कान में न पहुँचता था। उसके कानों में तो कोई समुद्र की तरह गरज रहा था, और उसकी आँखें एक गाड़ी को देख रही थीं; जो धीरे-धीरे चलते हुए इस क़दर उसके क़रीब आ जाती कि उसे अनुभव होने लगता जैसे गाड़ी के नीचे आके दब जायेगी।

रफ़िया ने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

"तस्वीर नही देखेगी?" रज़िया सहानुभूति से बोली।

रफ़िया ने कहा—"मैं अभी बाथरूम से आयी।"

लेकिन वह वापस नहीं आयी। रज़िया जानती थी कि वह वापस नहीं आ सकेगी; तो भी उसने उसे जाने दिया, कभी ऐसा क्षण आता है कि रोकना बेकार होता है, रज़िया ने सोचा, जाने दो, खुद ही ठीक हो जायेगी।

पिक्चर से निकल कर रफ़िया सीधी घर गयी, मगर इशरत अभी तक न आया

था। रफ़िया खाना तैयार करने लगी, खाना तैयार हो गया, मगर इशरत फिर भी न आया, रज़िया ने बच्चों और अम्मी को खाना खिला दिया।

अम्मी ने पूछा—"और तू—?"

"मुझे भूख नहीं है।"

"इशरत कहाँ है ?" अम्मी ने पूछा।

"उसकी शूटिंग है।" रफ़िया ने झूठ कह दिया।

अम्मा ध्यान से रफ़िया का चेहरा देखने लगी।

नौ बज गये, इशरत नहीं आया। यकायक रफ़िया व्याकुल हो के अपनी जगह से उठी, अम्मी ने उसका हाथ पकड़ लिया, "कहाँ जाती है ?" उसने काँपती हुई दर्दनाक आवाज़ में पूछा।

"जहन्नुम में !" रफ़िया अपनी अम्मा का हाथ छुड़ा के कमरे से बाहर निकल गयी।

कितनी गन्दी गलियाँ थीं, कितने ही अन्धेरे रास्ते थे, कितने ही चमक दमकवाले बाज़ार थे, कितनी ही बसें, ट्रामें। वह कहाँ गयी, किधर घूमी ? कहाँ ट्राम में बैठी; कहाँ बस में ? इसका उसे कुछ पता न था। वह किसे तलाश कर रही थी, कहाँ घूम रही थी, किससे भाग के कहाँ जा रही थी ? तमाम दूरियाँ, तमाम मजबूरियाँ, लज्जा की सारी सीमाएँ उसके लिए मर चुकी थीं, सिर्फ़ उसके दिल के दर्वाज़े पर कोई ज़ोर-ज़ोर से हथौड़े मार रहा था, ठक ! ठक !! ठक !!! क्या जहन्नुम में शैतान इन्सान के दिल को इसी तरह कुचला करता है ?

१७

कायापलट

राजलता इशरत को साथ लेकर बाँदरा से कोलाबे में गयी, वे लाशान की दूकान में गये। लाशान से गाड़ी ताज के पीछे सैम्पसन की पोर्च में जा रुकी, वहाँ से गाड़ी जो वापस हुई; तो गाड़ी की पिछली सीट तैयार सूट, मोजे, वुडबेन की टाइयाँ, पार्कलेन की हैट, रेन्डाल के जूते, केम्बरीक रूमाल और पेरिस गाउन से लदी-फँदी थी। गाड़ी फिर वहाँ से बाँदरा की तरफ़ हुई, और पालीहिल पर चली गयी।

जब इशरत ग़ुसलखाने में नहाने के लिए गया तो अभिमन्यु ने अपनी बहन से पूछा—"यह क्या ?"

"शट अप।" राजलता गरज के बोली।

अभिमन्यु ने पैंतरा बदल के फ़ौरन फ़ौजी सैलूट में जाते हुए कहा—"आलराइट मदाम!—मगर एक सूट मेरे लिए भी ले आयी होतीं; रिश्ते में भाई होता हूँ।"

"यू शट अप।" राजलता फिर चिल्ला के बोली।

"बहुत अच्छा मदाम!" अभिमन्यु ने कहा, "मैं अपने कमरे में चलता हूँ; मगर इस वक्त की भंग के लिए—नशे की टूट हो रही है।" राज ने उसे बटुवे में से दस रुपये निकाल के दिये। अभिमन्यु नोट को उँगलियों में नफ़रत से घुमाता हुआ अपने कमरे में चला गया। कुछ देर तक राज वहीं अपने कमरे के बाहर खड़ी सोचती रही, फिर अपने कमरे में चली गयी।

बड़ी साफ़-सुथरी महकी हुई रात थी, आसमान तारों से भरा हुआ, ज़मीन दीपकों से जगमग। राज पोर्च की सीढ़ियों से उतर कर इठलाती हुई बँगले के बाहर आ गयी; जहाँ उसने अपनी गाड़ी खड़ी रखी थी। आज वह रात के वक़्त अपने ड्राइवर पति को नहीं ले जा रही थी, इस वक़्त उसने गोल्ड ब्रोकेड का फ़्राक पहन रखा था और बालों में फूलों के बजाय सुफेद क्वार्टस के जवाहरात की वेणी लगा रखी थी, और वह इस वक़्त गाड़ी के मडगार्ड से लगी कोई गीत गुनगुना रही थी और इशरत का इन्तज़ार कर रही थी, जो अभी अन्दर था, अपने कमरे से बाहर न आया था। लेकिन राजलता ने उन फैली हुई, हैरान पुतलियों को मुड़ के न देखा; जो बंगले के बाहर गाड़ी के पास गुलमोहर के एक पेड़ के नीचे से उसे देख रही थीं। 'ख़ूबसूरत है, बेहद ख़ूबसूरत है।' रफ़िया ने पेड़ के नीचे से राजलता की तरफ़ देखते हुए अपने दिल से कहा; फिर यकायक वह ज़ोर से एक साँस अन्दर खींच कर रह गयी। इशरत पोर्च से होता हुआ, लम्बे-लम्बे मर्दाना डग भरता हुआ बंगले से बाहर आ रहा था, मगर यह वह इशरत न था—एक मैली, बिना इस्त्री पतलून और टी शर्ट पहने हुए। इस वक़्त उसने ड्रेस सूट पहन रखा था, और उसकी सफ़ेद क़मीज़ पर काली बो अजीब बहार दे रही थी। इशरत की आँखों में एक गर्वीली चमक थी। और जब वह राज के सामने आके रुका, तो उसका मुस्कराता हुआ और खिलता हुआ गोरा रंग सड़क की बत्ती की रोशनी में जगमग-जगमग करने लगा।

बिल्कुल बेबस होकर रफ़िया ने जोर से साँस खींच ली; जैसे कहीं बहुत दूर उसके दिल की गहरी तहों तक कोई खन्ज़र उतर गया हो।

राज ने मुड़कर देखा, लेकिन गुलमोहर के पेड़ के आस-पास अन्धेरा था और वह कुछ न देख सकी; शायद यह रात की ग़लती थी, यह रात भी शायद इशरत की सुन्दरता से मजबूर हो गयी थी।

"एलन !" राजलता ने बड़े प्यार से इशरत की तरफ़ देखकर कहा और फिर वह उसका हाथ अपने हाथ में लेकर गाड़ी का दर्वाजा खोलने के लिए मुड़ी और उसकी घेरदार गोल्ड ब्रोकेड की फ़्राक झूलते हुए घेरों की शक्ल में घूम गयी—नाच के लिए, संगीत के लिए, गाने के लिए। राज के जिस्म का हर लोच और हर बाँकपन इशरत के दिल में जादू जगाता था।

"ताज में चलेंगे ?" राज बहुत धीमे से, आहिस्ता से बोली जैसे वह नहीं कोई प्यार बोल रहा हो। रात और नाच, समुद्र और किनारा, रफ़िया और गुलमोहर !

मगर गुलमोहर के फूल बहुत दूर थे, ऊपर डालों में तारों की तरह अपनी आँखें झिपका रहे थे; और उनसे बहुत दूर पीछे गुलमोहर के तने से लगी रफ़िया सिसकियाँ ले रही थी; मगर दरख़्त का तना कठोर होता है; उसकी छाल भी बड़ी कठोर और खुर्दरी होती है, और उसमें कहीं नरमी और लोच और वह दर्द को समझने की ताकत नहीं होती जो रगों में लहू के दौड़ने से आती है, तने की रगों में तो पानी चलता है; और पानी लहू का दर्द कैसे समझ सकता है ?

१८

हर ओर अन्धेरा

खोली में बहुत अन्धेरा था, अम्मा जाग रही थीं, बूढ़ी अम्मा हौले-हौले काँपते हुए हाथों से बिस्तर टटोल रही थीं; मगर बिस्तर खाली था, अम्मा को मालूम था; सिर्फ़ चन्द क़दम परे रफ़िया सो रही थी; सो नहीं रही थी; जाग रही थी। अम्मा को मालूम था उसकी बच्ची तकिये में सर दिये सो रही है; मगर वह कुछ नही कर सकती। उसका जी चाहता था कि वह रफ़िया के पास चली जाये, उसके सर पर अपना झुर्रियोंवाला हाथ फेरे; मगर वह कुछ नहीं कर सकती थी। कितने ही सालों से अम्मा ने जान लिया था कि वह कुछ नहीं कर सकती। उसका पति मर गया और वह कुछ नहीं कर सकी, उसकी बड़ी बेटी का पति मर गया और वह कुछ न कर सकी, उसकी बेटी मर गयी और वह कुछ न कर सकी, छोटे-छोटे पाँच बच्चे रह गये और वह कुछ न कर सकी। क्योंकि उसे कुछ करना सिखाया ही न गया था। वह सिर्फ़ इतना जानती थी कि औरतें ब्याहने के लिए, और बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए बनाई गयी है। उनके कुल में हमेशा से ऐसा होता आया था, और उनके आस-पास के मज़दूर परिवारों में हज़ारों

सालों से ऐसा ही होता आया था, और ऐसा ही होता रहेगा। इसलिए जब भी कोई मुसीबत आती तो औरत प्रार्थना के लिए दोनों हाथ उठा देने के सिवा और क्या कर सकती है; और अम्मा की तो ज़िन्दगी का अब हर क्षण प्रार्थना था। दोनों हाथ ऊपर उठे हुए दुआ करती थी अपने खुदा से। हर रोज़ माँगती थी, मेरी रफ़िया ठिकाने से लग जाये, यह छोटा-सा घर किसी तरह सँवर जाये। ऐ खुदा ! ऐ खुदा !! ऐ खुदा !!!

लेकिन आज अन्धेरा बहुत था, और इस अन्धेरे में रफ़िया धीरे-धीरे—बहुत ही धीरे जैसे अपने दिल की सारी जलन को अपनी मुट्ठी में दबाये होले-हौले सिसक रही थी; और अम्मा का दिल अपने बिस्तर पर लेटे-लेटे टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। मगर यह दिल टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाता ? यह खून का सोता रगों में खुश्क क्यों नहीं हो जाता ? यह धीमे-धीमे चलनेवाली साँस एकबारगी आके खत्म क्यों नहीं हो जाती ? वह कब तक अपनी बच्ची की हर मुसीबत देखती रहेगी ? ऐ खुदा ! तुम इस क़दर दूर क्यों हो, इतने दूर हमसे क्यों हो ? आसमान में रहने-वाले, आओ न, इस खोली में उतर आओ ! इसका अन्धेरा देखो, इसकी गरीबी देखो, इसकी आहों में सांस लो। मेरे रब, मेरे मौला, मेरी बच्ची इस तरह सिसक रही है, और तुमसे कुछ नहीं होता, कुछ नहीं हो सकता तुमसे ?

यकायक अम्मा ने अपने कानों को हाथ लगाया, "तोबा तोबा, मैं किसकी शान में यह गुस्ताखी कर रही हूँ ! मेरे मौला मुझे माफ़ कर दे; मेरे गुनाह बख्श दे ! यह मैं क्या बक रही हूँ; सचमुच इन मुसीबतों ने मेरी अक़्ल मार दी है....!"

मगर रफ़िया को इस बहस से कोई सरोकार न था, वह खुदा और दुआ, गुनाह और सज़ा के झगड़ों से अलग हो के एक कोने में बैठी सिसकियों और हिचकियों के बीच रोती जाती थी। आज चारों तरफ़ घुप अन्धेरा था, और कहीं रोशनी न थी। इन्सान के दिल में एक शहर होता है; उसकी गलियाँ और बाज़ार होते हैं जहाँ पर हज़ारों इच्छाओं की भीड़ रहती है। उसकी दूकानों में हज़ारों तरह की इच्छाएँ बिकती हैं, ख़रीदी और बेची जाती हैं, उसके कारख़ानों में मेहनत साँस लेती है और उसके बाग़ों में कभी-कभी चाँद चमकता है और फूल महकते हैं और धीमे चलनेवाले भाव एक दूसरे की कमर में हाथ डाले मौन निगाहों से प्रेम का संदेश देते हैं।

दिल का शहर भी इन्सान के शहर की तरह बसता है, मेहनत करता है, काम करता है, हँसता है और रोता है। कभी-कभी ऐसे दिन आते हैं जब हर क्षण त्यौहार होता है। हर आशा उजले वस्त्र पहन कर निकलती है, हर इच्छा बनी-सँवरी

हथेलियों पर मेंहदी की तस्वीरें सजाए, हर उमंग नन्हें-नन्हें बच्चों की तरह ख़ुशी से हँसती हुई, किलकारियाँ मारती हुई, हर आवाज़ जवान और ख़ुशी की सुगन्ध से महकती हुई दिल की गलियों और बाज़ारों में निकल आती है, और ख़ुशियों के मेले में और उमंगों के कोलाहल में खो जाती है।

मगर आज इस शहर में कैसा सन्नाटा है, आज दिल की बस्ती में हर कूचे और गलियों में, बाज़ारों और सड़कों पर कैसा अन्धेरा है ? आज कहीं पर रोशनी नहीं है, आज कोई कामना नहीं चलती, कोई इच्छा नहीं महकती, कोई उमंग नहीं हँसती। आज सारे झरोखे बन्द हैं, और सारे दर्वाज़ों पर ताले लगे हैं और सारे बाज़ार ख़ाली हैं, सिर्फ़ कहीं-कहीं सड़कों पर कुछ बूढ़ी यादें गुज़रे हुए वक़्त का काला लबादा ओढ़े हौले-हौले एक दूसरे से कानाफूसी कर रही हैं।

आज सारा शहर खाली है, आज सड़कों पर रोशनी नहीं, बागों में चाँद नहीं, पेड़ों पर फूल नहीं। आज वह बेंच भी खाली है, जहाँ रफ़िया और इशरत बैठा करते थे। यकायक रफ़िया को ऐसा लगा; जैसे आज के बाद यह बेंच हमेशा ख़ाली रहेगी।

इन्सान का दिल भी एक अजीब चीज़ है, वह किसी याद को तो एक सुगन्ध में बदल देता है, जो ज़िन्दगी भर महकती रहती है और कभी एक याद को काँटे में; जो ज़िन्दगी भर चुभता रहता है और कभी एक तस्वीर में, जो ज़िन्दगी भर एक ही चौकठे में जड़ी, एक ही दीवार पर टँगी, एक ही रुख से दिखायी देती चली जाती है। एकाएक रफ़िया को लगा जैसे आज के बाद वह उस बाग में कभी नहीं जायेगी; जहाँ वह इशरत के साथ घूमने जाया करती थी, उस बेंच पर नहीं बैठ सकेगी, जहाँ इशरत के हाथ अपने आप उसके गिर्द आ जाया करते थे। नहीं, वह बेंच आज के बाद हमेशा खाली रहेगी। पता नहीं ऐसे क्यों हुआ, लेकिन जब उसने इस तस्वीर को चौकठे में जड़ के वहाँ सामने की दीवार में जैसे लगा दिया, तो उसे भरोसा-सा हुआ; उसकी सिसकियाँ और हिचकियाँ बन्द हो गयीं, उसकी पलकें भारी होती गयीं और आखिर वह मद्धम मद्धम साँसों के बीच नींद के झूले में बहती हुई खो गयी। और चूंकि वह रात भर की जागी हुई थी, इसलिए सुबह बहुत देर तक सोती रही। सुबह हो गयी सूरज निकल आया, बाज़ारों में ट्रामों और बसों और राह चलते लोगों का शोर बढ़ गया, मगर रफ़िया बड़े आराम से सोती रही, उसकी अम्मा ने भी उसे नहीं जगाया; उसने अपनी बेटी के गालों पर रात के आँसुओं के सूखे निशान देखे और उसे सोते रहने दिया, और ख़ुद ही थके हुए हाथों से घर का सारा कामकाज करती रही।

बर्तन साफ़ करके, घड़े में पानी भरके, बच्चों को नहला के, खाना पका के, अम्मा जब फ़ारिग़ हुई तो उसने देखा रफ़िया अभी तक बेसुध फ़र्श पर सो रही थी। खिड़की से जब रोशनी रफ़िया के चेहरे तक आने लगी, तो अम्मा ने आहिस्ता से खिड़की के पास जाके उसके पट बन्द कर दिये और वापस आकर बच्चों के लिए खाना निकालने लगी। इतने में दर्वाज़े पर खटखटाहट हुई। अम्मा ने उठकर दर्वाज़ा खोला, और आश्चर्य से उनकी घिग्घी-सी बँध गयी, और वह फटी-फटी निगाहों से इशरत की तरफ़ देखती रह गयी। इशरत था; मगर शायद कोई और ही इशरत था; इतने अच्छे कपड़े पहने हुए, इस तरह सुन्दर और सुगन्धों में लिपटा हुआ दिखाई दिया था कि अम्मा तो दर्वाज़े में खडी की खड़ी रह गयी। कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद इशरत ने मुस्करा कर कहा—"अम्मा मुझे अन्दर नहीं आने दोगी ?"

अम्मा दर्वाज़ा छोड़ कर एक तरफ़ खड़ी हो गयी, लेकिन अब भी एक शब्द उसके मुँह से नहीं निकल सका।

इशरत अन्दर आ गया, उसने एक बच्चे के सर पर हाथ फेरा, फिर आगे बढ़-कर सोती हुई रफ़िया की तरफ़ देर तक देखता रहा; फिर झुक कर उसके पास बैठ गया। रफ़िया का मुँह ज़रा सा खुला था, होंठ भी ज़रा से खुले थे; आँखें भी, मगर वह सो रही थी; इशरत को नहीं देख सकती थी।

इशरत ने कहा—"रफ़िया !"

रफ़िया सोती रही।

फिर इशरत ने रफ़िया को एक ठोका दिया, रफ़िया हड़बड़ा के जागी और अपने सामने इशरत को इतने पास देखकर हैरान और परेशान भौंचक्की और घबरा-सी गयी। उसे अपनी आँखों पर विश्वास न आया था; उसने दो एक बार अपनी आँखें मल कर इशरत की तरफ़ देखा, उसे छुआ जब जाके उसे यक़ीन आया तो उसकी आँखें आँसुओं से डबडबा गयीं।

इशरत यह सब कुछ देख रहा था, उसने रफ़िया का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"पगली ! तू क्या समझती थी मैं नहीं आऊँगा ?"

रफ़िया ने उसके नये सूट की तरफ़ देखा, उसकी निगाह उसके हुए जूतों पर पड़ी, ख़ूबसूरत टाई पर, आसमानी रंग की धारीदार क़मीज़ पर, उसके सोने के बटनों पर.....

वह चुप रही, उसने कोई जवाब न दिया। इशरत ने रफ़िया की चुप्पी के खिंचाव को महसूस किया और बोला—"तुमने पूछा नहीं तुम रात कहाँ रहे ?"

रफ़िया बोली—"पूछने की ज़रूरत है क्या ?" एकाएक उसके दिमाग़ में कटुता महसूस होने लगी। इशरत खामोश हो गया; वह निगाहें झुका के रफ़िया

के दुपट्टे को अपनी उँगलियों पर लपेटने और खोलने लगा। रफ़िया चुपचाप बैठी रही।

इशरत आहिस्ता—आहिस्ता बोला—"बात यह है रफ़िया, यह दुनिया बड़ी ज़ालिम है।"

"मैं जानती हूँ, कोई नई बात बताओ।"

इशरत फिर ख़ामोश हो गया, थोड़ी देर तक; फिर कहने लगा, "मैं बेवफ़ा नहीं हूँ।"

"मैंने तो कुछ भी नहीं कहा।" रफ़िया बोली।

इशरत ने कहा—"मान लो रफ़िया! मैं बेवफ़ा नहीं हूँ। यह जो मैं कर रहा हूँ अपनी और तुम्हारी अच्छाई के लिए कर रहा हूँ; यही सिर्फ़ एक तरीका है; अच्छे दिनों को लाने के लिए। तुम्हें तो मालूम है; तुम्हे तो मालूम है कि यह फ़िल्म इन्डस्ट्री कैसी है? यहाँ जब तक कोई किसी की सिफ़ारिश न करे काम नहीं चलता। तुम ख़ुद ही अपने आप को देख लो, राज को देखो, शमशाद को देखो, रंजना को देखो, भरतकुमार को देखो, किसी भी हीरो या हिरोइन को ले लो, किसी न किसी के कंधे पर सवार होकर आगे बढ़े हैं।"

"तुम किसका कन्धा पकड़ रहे हो?" रफ़िया ने पूछा।

इशरत ने इसका कोई जवाब नहीं दिया, बोला—"दुनिया इसी तरह की है, मेरा मतलब है, एक सीढ़ी की तरह। जब आदमी एक ज़ीना चढ़ता है, तो पिछला ज़ीना छोड़ देता है। मेरे लिए राज एक ज़ीने से ज्यादा नहीं है। उसने मुझे हीरो का चान्स दिलाने का वायदा किया है; ज्यों ही मैं हीरो बना मैं उसे छोड़ दूँगा। और तुम जानती हो राज इस इन्डस्ट्री की मशहूर हिरोइनों में से है, वह मुझे चान्स दिलवा सकती है।"

"एक ज़ीने की तरह?" रफ़िया ने पूछा।

इशरत ने रफ़िया का दूसरा हाथ भी अपने हाथ में ले लिया, उसकी आँखों में आँखें डालकर बोला—"रफ़िया! मैं सिर्फ तुमसे प्यार करता हूँ। सिर्फ़ तुम्हें चाहता हूँ; क्या तुम समझती हो मुझे तुम्हारे दुःख का पता नहीं है? वही दुःख तो मुझे भी है, तुमसे जुदाई, क्या मेरे लिये जुदाई न होगी, तुमसे जुदा होकर मुझे तक़लीफ़ न होगी? मगर डार्लिंग अपने लिए, तुम्हारे लिए, इन बच्चों के लिए मुझे ऐसा करना होगा। मैं जब हीरो बन जाऊँगा तो एक शानदार बँगला ख़रीदूँगा। और उम्दा गाड़ियाँ होंगी। एक मेरे लिए, एक तुम्हारे लिए; फिर मैं अपनी अम्मी और अपने छोटे-छोटे भाई-बहनों को भी यहाँ बुला लूँगा, फिर तुम्हारे लिए फ़िल्म में काम करना ज़रूरी न होगा; बल्कि मैं तुम्हें काम करने भी न दूँगा, यह नीच काम!"

"मेहनत कभी नीच नहीं होती; अगर इज्जत से की जाये।" रफ़िया गुस्से में आके बोली—"तुम्हारा क्या ख्याल है मैं अगर चाहूँ तो यह खोली बदल नहीं सकती? एक बँगला न सही एक फ़्लैट तो ले ही सकती हूँ। ब्यूक गाड़ी न सही सेकेण्ड हैण्ड गाड़ी तो ख़रीद ही सकती हूँ; क्या तुम समझते हो हार्नबी रोड पर मादाम सुजीन की काँच की आलमारियों में सिल्वर ब्रोकेड के फ़्राक देखकर मेरा मन बेकरार नहीं हो जाता? क्या तुम समझते हो मैं औरत नहीं हूँ? मेरा जी खूबसूरत साड़ियों, रंगीन ब्लाउज़ों और नये नये फैशन के कपड़े पहनने के लिए नहीं ललचाता? क्या मैं नहीं चाहती कि मेरा भी अच्छा घर हो, सुन्दर पर्दे हों, रात की मद्धम-मद्धम रोशनी में रेडियोग्राम एक कोने में बजता हो, मेरी बहन के बच्चे अच्छे खूबसूरत कपड़े पहने उसके आसपास जमा हो बच्चों का प्रोग्राम सुनते हों? क्या तुम समझते हो मेरे दिल में यह तस्वीरें नहीं हैं? सभी हैं, लेकिन मैं यह सब नहीं कर सकती। उन तस्वीरों को ख़रीदने में जो कुछ बेचना पड़ेगा, उससे यही अच्छा है कि मैं उन तस्वीरों को फाड़ डालूँ। मैं खाली दीवारों में रहूँगी एक अन्धेरी खोली में। फ़िल्मवाले अगर मुझे काम नहीं देंगे तो मैं किसी घर में झाड़ू दूँगी, बर्तन साफ़ करूँगी, किसी के बच्चे की आया बन जाऊँगी, सड़क पर पत्थर कूटने लगूँगी। कल तक तुम्हारा भी यही ख्याल था; आज तुम कैसे बदल गये?"

"ग़रीबी" इशरत ने कहा—"ग़रीबी बहुत कुछ करा देती है।"

"मैं नहीं मानती कि ग़रीबी में आदमी इज्ज़त भी खो देता है। यह हमारे पास पड़ोस की सैकड़ों औरतें काम करती हैं। चावल कूटती हैं, बाज़ार में सब्जी बेचती हैं, कारख़ानों में काम करने जाती हैं। ग़रीब आदमी पर बुरे काम का दोष न लगाओ। अपनी कमज़ोरी दूसरों के गले में न डालो। हर रोज, मैं देखती हूँ, उनमें से कई एक बेहद सुन्दर हैं। उनके पास न रेडियोग्राम है, न कार है, न फ़्लैट हैं, न सोने के गहने हैं, मगर--मगर उनका दिल तो बेशर्म बनने को नहीं चाहता। मैं क्यों उन्हें बाज़ार में बैठे हुए नहीं देखती, कभी-कभी उनके यहाँ फ़ाक़े भी होते हैं, कभी किसी का बच्चा दवा न मिलने से मर भी जाता है, फिर? वह रोती है, दो दिन हाय तोबा करती है; फिर जी मज़बूत कर के कारखाने में काम करने चली जाती है; क्यों उन्होंने अपने आपको नहीं बेचा जैसे तुमने आज अपने आपको बेच दिया है? तुम्हारा ख्याल है इस गैबरडीन के सूट में, खूबसूरत टाई और चमकते हुए जूतों में, तुम बहुत हसीन मालूम हो रहे हो—मैं तुम्हें बताऊँ, तुम बाज़ारू मालूम होते हो, एक बाज़ारू मर्द।"

इशरत एक क़दम पीछे हट गया कि जैसे किसी ने उसे गोली मारी हो; फिर

यकायक उसका चेहरा लाल हो गया, वह अपने होंठ काटता हुआ वहाँ से उठ खड़ा हुआ; उसने रफ़िया से मुँह फेर के कहा—"तुम दीवानी हो गयी हो...तुम दीवानी हो गयी हो।"

फिर वह अम्मा की तरफ़ मुड़ा, और उन्हें एक सौ का नोट देते हुए बोला—"अम्मा यह तो पगली है; आप तो मुझे जानती हैं, मैं.....मैं, यह सौ का नोट रखिये; मैं हर माह कभी न कभी इधर आया करूँगा; पूछ लिया करूंगा; अगर आपको किसी चीज़ की ज़रूरत हो, आप रफ़िया से नहीं मुझसे कह दिया कीजिए मैं खुद ख्याल रखूंगा; मैं हर माह आपके लिए—मेरा मतलब है—आपका खर्चा यहाँ पहुँचा दिया करूँगा।"

रफ़िया ने गरज के अम्मा के हाथों से वह सौ का नोट छीन लिया और उसके सामने उसके टुकड़े-टुकड़े करते हुए बोली—"यह तुम मेरी मेहनत की क़ीमत चुकाने आये हो ?" रफ़िया की आँखों से आग की लपटें निकल रही थीं।

इशरत ने खिसियाने होके कहा—"तुम समझती नहीं हो।"

"जाओ, चले जाओ, इशरत ! आज के बाद कभी अपनी सूरत न दिखाना।" और जब इशरत चला गया तो यकायक रफ़िया के दिल की सारी दीवारें ढह गयीं और वह मुँह फेर के एक कोने में अपने हाथों में अपना मुँह छिपा के कहने लगी—न जाओ; इशरत कहीं न जाओ, यह खोली तुम्हारी है; मैं तुम्हारी हूँ, मेरी सारी ज़िन्दगी तुम्हारी है, आ जाओ इशरत—मेरी, ज़िन्दगी के जूते बना के अपने पांव में पहन लो; मगर यहाँ से न जाओ, उस गन्दी घिनौनी बदसूरत दुनिया में न जाओ !

रफ़िया फूट-फूट कर रोने लगी।

१६

राज बाहर आ गयी !

पहले पन्द्रह रोज़ राजलता बिल्कुल पागलों की तरह रही। ये दिन कुछ इस तरह के थे, जैसे गर्मियों की चढ़ी हुई आँधी हो, या मानसून की मूसलाधार बारिश हो या समुद्र में लहरें थपेड़े लेती हों और अपनी उछाल में किश्ती को कभी बहुत ऊपर और कभी बहुत नीचे डुलाती हुई ले जायें। उन पहले पन्द्रह दिनों में राजलता क्यों, कब कहाँ और कैसे के तमाम सवालों को, जो हर औरत की ज़िन्दगी में आते हैं, बिल्कुल भूल चुकी थी। वह एक क्षण

के लिए भी इशरत को अपनी नज़रों से ओझल नहीं होने देती थी। इन पन्द्रह दिनों में वह अपने बंगले से बाहर नहीं निकली और अगर कहा जाये कि अपने कमरे से बाहर नहीं निकली तो ज़्यादा सही होगा। कभी कभी वह सुबह की चाय, नाश्ता, दोपहर का खाना, शाम की चाय और रात का खाना भी वहीं मंगा लेती थी। कभी कभी खुद स्टोव जला के इशरत के लिए खाना पकाती थी। राजलता बहुत अच्छा खाना बना सकती थी, क्योंकि जिस घर से वह आयी थी, वहाँ उसे खुद खाना बनाना पड़ता था। हिरोइन तो वह बाद में हुई। पहले तो वह शंकर की बीवी थी, शंकर जो उसके गैराज में रहता था। मगर अब राज को जैसे किसी की परवाह न थी, इससे पहले उसने कभी ऐसा नहीं किया था। यह नहीं कि उससे पहले उसके आशिक न थे। राज को तो अब उनकी संख्या भी याद न थी; मगर यह चीज़ अलग थी।

'बस यह बात सच है।' राज ने सोचा—'इशरत के बिना तो वह ज़िन्दा कैसे रह सकेगी? स्टुडियो शूटिंग करने कैसे जायेगी?' शुरू के पन्द्रह दिनों में उसने ऐसा ही किया, न सिर्फ़ कि वह कमरे से बाहर नहीं निकलीं, शूटिंग पर भी नहीं गयी, बहुत से प्रोड्यूसर आये और वापस चले गये; किसी की मुलाक़ात न हो सकी। इन दिनों में वह इशरत के सिवा किसी की सूरत भी देखना न चाहती थी; ऐसी मर मिटी थी उस पर!

घर में सब लोग परेशान थे, यूँ तो राज के बेराह हो जाने से सब परिचित थे; बल्कि एक तरह से उसे उकसानेवाले भी वही थे। राज के माँ-बाप बहुत ग़रीब थे, राज बहुत सुन्दर थी। शंकर उन दिनों धनवान था, क्या हुआ अगर वह अधेड़ उम्र से ऊपर का था; उन्होंने पाँच हज़ार रुपये लेकर राज को शंकर से ब्याह दिया। जब शंकर ग़रीब हो गया और समाज में यह कहना बहुत मुश्किल होता है, कौन अमीर कब ग़रीब हो जाये और कौन ग़रीब एक दिन अमीर हो जाये। ज़िन्दगी की दौड़ अविश्वसनीय होती है। राज अपने बूढ़े खाविन्द से झगड़ के अपने माँ-बाप के पास चली आयी। अभिमन्यु—उसके भाई को बचपन ही से बुरी आदतें पड़ चुकी थीं, राज को घेरघार के फुसला के, बड़ी बड़ी आशाएं दिला के बम्बई ले आया। राज की शोखियाँ, उसकी चुलबुलाहट, अदाएँ, उसका बेमिसाल सौन्दर्य, प्रोड्यूसरों को बहुत पसन्द आया। थोड़े ही दिनों में उन्नति के रास्ते की सीमाएँ पार करती हुई वह अव्वल दर्जे की हिरोइन बन गयी, अब कोई रुकावट न थी। राज ने अपने पति शंकर को अपने पास बुला लिया।

पति चाहे बूढ़ा ही हो धोखे की एक उम्दा टट्टी होता है, और फिर चचा रामेश्वर थे; उनकी पत्नी गनेशी थी, मौसी दुलारी थी, उनकी बेटी रामप्यारी थी; रामप्यारी का पति अजीतसिंह था। ये सब लोग राज के टुकड़ों पर पल रहे थे, और इस तरह पलने के सिवा और किसी दूसरे तरीक़े से चलना भी नहीं चाहते थे। काम करना तो एक अपमान है, जिसे आदमी इस समाज में बेबसी के अधीन करता है। उनमें से हर आदमी घर में एक छोटा-सा ख़ुदा था। हर आदमी स्वार्थपरता का एक बोझिल पग्गड़ बाँधे अपने निकम्मेपन को छुपाने की कोशिश में था। हर आदमी की कोशिश यह होती थी कि किस तरह से राज का कृपापात्र बन जाये। इस छोटी-सी शासन व्यवस्था की केन्द्र राज थी; और ये सब लोग उसके आसपास घूमा करते थे, इसलिए यहाँ प्रतिष्ठा घटने या मानहानि का प्रश्न न था। वह तो कभी से पसन्द ही न हुआ था। प्रश्न था कि कहीं अगर यह मामला बढ़ गया, तो फिर क्या होगा? अगर कहीं इशरत और राज ने शादी कर ली तो हमारा क्या बनेगा? यद्यपि इस प्रश्न पर इस तरीक़े से कभी बहस न हुई थी, यह सवाल तो दिल में अन्दर ही अन्दर रहता था। मगर था यही मूल प्रश्न। मेरा हलवा-माँडा कैसे सलामत रहे? अगर राज उन पन्द्रह दिनों में किसी तरह से उन्हें इस बात का विश्वास दिला देती; तो वे काहे को इतने परेशान होते; मगर राज को इतना सोचने की फ़ुर्सत कहाँ थी?

एक पुरानी स्पोर्ट्स कार पौर्च में आके रुकी, और मिर्ज़ा राहत हुसेन, फ़िल्म जोड़तोड़ के डाइरेक्टर उसमें से उतर के बरामदे की ओर बढ़ते हुए दिखाई दिये। अभिमन्यु ने भाग के उन्हें रास्ते में ही रोक लेना चाहा; मगर तब तक वह अन्दर ड्राइंग रूम में चले आये थे। मिर्ज़ा राहत हुसेन बड़े रंगीले और शौक़ीन मिज़ाज डाइरेक्टर थे। मुँह में हर वक्त पान रखते थे और पीक घोलते रहते थे; इसलिए जब कभी बातचीत करते तो बीच में हमेशा बुलबुले छोड़ते जाते थे; ऐसा मालूम होता था कि दूर कहीं पानी की किसी निचली सतह से बोल रहे हैं। बोले—"आज अवां है? (राज कहाँ है?)"

अभिमन्यु ने हाथ जोड़कर कहा—"हुज़ूर क्या बताऊँ बहन को एक सौ तीन बुख़ार है।"

"मैं उसे देख सेताऊँ (मैं उसे देख सकता हूँ?)" यह कहकर मिर्ज़ा आगे बढ़े, बेडरूम उनका देखा-भाला था; मगर अभिमन्यु ने आगे बढ़के रास्ता रोक लिया। बड़ी नर्मी से बोला—"वह इस वक्त सो रही है; अभी-अभी आँख लगी है; डाक्टर ने हिलने से भी मना किया है।" मिर्ज़ा बहुत चकराये बोले—"आज उसकी शूशिंग है, शेस उगा हुआ है। (शूटिंग है सेट लगा हुआ है)"

अभिमन्यु चेहरे से अपनी विवशता प्रकट करते हुए बोला—"क्या किया जाय मिर्ज़ा जी, आज तो शूटिंग कैंसिल करनी पड़ेगी।"

मिर्ज़ा जी ने घबराकर इधर-उधर देखा, कहीं पीकदान नज़र न आया और पीक अब मुँह के अन्दर लबालब भर चुकी थी, बिल्कुल समीप था कि वह पीक को कहीं भी उगल देते, अभिमन्यु ने जल्दी से पीकदान सामने लाकर रख दिया। मिर्ज़ा जी पीक थूक के, रूमाल से मुँह को पीक से और माथे को पसीने से साफ़ करते हुए बोले—"एक हज़ार का नुकसान हो जायेगा; मिस्टर अभिमन्यु तुम तो जानते हो, अहमद भाई बोहरा मेरा प्रोड्यूसर किस क़दर कन्जूस है, उसका तो हार्ट फेल हो जायेगा; बड़े जोड़तोड़ से मैंने फ़िल्म जोड़तोड़ की डाइरेक्टरी हासिल की थी, वह सब चौपट हो रही है, अभिमन्यु भाई किसी तरीक़े से राज को सेट पर ले आओ!"

"यह तो नामुमकिन है।"

"व्हिस्की की एक बोतल दूँगा!"

"मैं तो आधी बोतल में ही राज़ी हो जाता;" अभिमन्यु बोला—"मगर वह इस बीमारी में कैसे आ सकती है?"

मिर्ज़ा जी ने दूसरा पान कल्ले में दबाया और चलने के लिए तैयार हो गये। अभिमन्यु ने मुस्कराकर कहा—"मिर्ज़ा जी आज कोई शैर नहीं सुनाइयेगा?"

मिर्ज़ा जी गन्दी और अश्लील गज़लें कहने में अपना सानी नहीं रखते थे, इस बात में उनका कोई जोड़ न था। कितनी ही मुश्किल से मुश्किल जमीन निकाल के दीजिए वह उसमें भी गन्दी गज़ल कह देंगे। कोई फ़िल्मी प्राइवेट पार्टी उनके बग़ैर पूरी न हुई थी। शौक़ीन मिज़ाज़ लोग, जो अश्लीलता के बाहर समझे जाते थे, वे दवाई की गोलियाँ, नंगे पोस्टकार्डों के अलावा एक दो मिर्ज़ा जी की गन्दी शायरी की नकल करके अपने पास रखते थे।

मिर्ज़ा जी मुस्कराते हुए बोले—"फिर सुनाऊँगा यह मौक़ा नहीं है, अहमद भाई बोहरा मेरा इन्तज़ार कर रहा होगा।"

मिर्ज़ा जी ने अपनी चिकनी खुली बाहों पर आहिस्ता से हाथ फेरा; अपने सफ़ेद पायजामे पर से एक कल्पित मक्खी उड़ाई और बड़ी अदा से झूमते हुए बाहर निकल गये।

उनके जाने के बाद अभिमन्यु ने सन्तोष की साँस ली, इतने में टेलीफ़ोन की घण्टी ज़ोर से बजी। अभिमन्यु ने भाग के टेलीफ़ोन का रिसीवर उठाया।

"राजलता है?"

"आप कौन बोल रहे हैं?"

"मैं सेठ छेदीलाल हूँ।"

"नमस्ते सेठ जी नमस्ते, कहिए।"

"नमस्ते तुम रहने दो; यह बताओ, अब राजलता की तबियत कैसी है ?"

'पहले की तरह बीमार है।"

"तो अच्छी क्यों नहीं हुई, पाँच दिन से मेरा सेट लगा पड़ा है भेदी जंगल का। क्या बात है ? मैं अपना डॉक्टर भेज दूँ ?"

"नहीं सेठ जी आप क्यों तकलीफ़ करेंगे; डॉक्टर तो यहाँ मौजूद है; उसका इलाज भी हो रहा है।"

"अजीब मुसीबत है ! राजलता का इस सेट में काम है और पाँच दिन से सेट लगा हुआ है। कब तक इन्तज़ार करूँ ?"

"क्या बताऊँ सेठ जी ! अच्छी होने को तो वह कल भी अच्छी हो सकती है और न हो तो एक माह तक और ठीक न हो।"

"बाप रे !" सेठ छेदीलाल ने टेलीफ़ोन बन्द कर दिया।

अभिमन्यु ने अपने माथे पर पसीना पोंछते हुए कहा—"यह आज तीसरा टेलीफ़ोन है।"

चाचा और उनकी पत्नी गनेशी उसके पास चुपचाप सुनते रहे, अन्त में चाचा दामोदर बोले—"इस तरह से तो हम बदनाम हो जायेंगे।"

"इसमें क्या शक है।" अभिमन्यु उनका समर्थन करते हुए बोला।

"सब प्रोड्यूसर नाराज़ हो जायेंगे।"

"बेशक !"

"फिर कोई राज को काम नहीं देगा।"

"बहुत मुमकिन है।"

"सबको भूखा मरना पड़ेगा।"

"यह भी हो सकता है।"

चाचा ने चिल्ला के कहा—"तुम दर्वाज़ा क्यों नहीं तोड़ देते; साली दिन भर वहाँ अन्दर बैठी हुई क्या करती रहती है ?"

अभिमन्यु ने बड़े विश्वास से कहा—"दर्वाज़ा सामने मौजूद है, तोड़ दीजिए।"

चाचा दामोदर आगे बढ़े—अभिमन्यु ने उन्हें नहीं रोका; चाचा को बहुत गुस्सा आया। राज पर नहीं बल्कि अभिमन्यु पर; क्योंकि वह जानता था कि वह दर्वाज़ा नहीं तोड़ेंगे। और वह जानते थे कि अभिमन्यु जानता है कि चाचा दामोदर दर्वाज़ा तोड़ने की हिम्मत नहीं रखते; फिर भी उसने उन्हें नहीं रोका।

चाचा दर्वाज़े पर कुछ देर खड़े सोचते रहे; फिर पलट आये और चुपके से एक सोफे में धँस गये। चाची गनेशी उनके पास गयीं और बड़ी मुहब्बत से उनके

सर पर हाथ फेर के बोलीं—"उठो ज़्यादा परेशान न हो; तुम्हारी अफ़ीम का वक्त हो रहा है; चलो चल के चुस्की लगा लो।"

चाचा अपनी पत्नी के कहने सुनने पर घर अफ़ीम लेने चले गये, और उनके जाने का भाव यह भी था कि अगर मेरी अफ़ीम का वक्त न हो गया होता तो मैं ज़रूर दर्वाज़ा तोड़ देता।

उनके जाने के बाद अभिमन्यु राज के कमरे के दर्वाज़े की ओर मुड़ा। वहाँ जाकर उसने दो बार हल्के-से कुन्डी खटखटाई। अन्दर से राज बोली—"कौन है?"

अभिमन्यु ने कहा—"मैं हूँ, वह मिर्ज़ा जी आये थे।"

"आने दो।"

"सेठ छेदीलाल का भी टेलीफ़ोन आया था।"

"सबको दूर करो।"

"कर दिया।" अभिमन्यु ज़रा अभिमान से बोला। थोड़ी देर चुप्पी रही और अभिमन्यु ने कहा—"बहन टूट लग रही है, बीस रुपये दे दो।"

"बकवास मत करो।" राज अन्दर से चिल्लाई। अभिमन्यु चुपचाप ख़ामोशी से मुस्कराता हुआ दर्वाज़े के बाहर खड़ा रहा। थोड़ी देर के बाद किसी ने दर्वाज़े के नीचे से दस के दो नोट सरका दिये, अभिमन्यु ने नोट उठा लिये और अपने कमरे की तरफ़ जाने ही वाला था कि पोर्च में एक गाड़ी के रुकने की आवाज आयी और मैडम तेज़ी से अपनी ऊँची एड़ी के जूतों से टपटप करती हुई अन्दर आ गयीं।

अभिमन्यु ने लपक के उन्हें रास्ते में ही रोककर कहा—"अरे आप भी ख़ूब वक़्त पर आयीं। एक नई ग़ज़ल लिखी है।"

"ग़ज़ल सुनने का यह वक़्त नहीं है।" मैडम गुर्राई।

"तो चलिए एक दो बाज़ी फ़्लश की हो जाये।"

"पत्तों की तो सूरत भी मैं इस वक़्त देखना नहीं चाहती, मुझे तुम किसी तरह से राज की सूरत दिखा दो।"

"बस यही तो नामुमकिन है।"

"अरे यह कैसे नामुमकिन है, कल मेरा सेट है और वह उसमें काम कर रही है।"

"वह तो बेचारी बीमार है।"

"क्या बीमारी है उसे?" मैडम ने डपट के पूछा।

अभिमन्यु ने मुस्करा के इधर-उधर देखा; जैसे कोई भेद की बात कहनेवाला हो। मैडम उसके क़रीब आयी अभिमन्यु चुपचाप खड़ा रह गया, उसके चेहरे से मालूम होता था; जैसे उसने अपना इरादा बदल दिया है।

मैडम ने उसे हाथ पकड़ के अपने क़रीब बिठा लिया, बटुवे में से दस का एक नोट निकाला; बोली—"अब बताओ राज को क्या बीमारी है ?"

"इशरत !"

मैडम ने कहा—"आह ! मुझे शमशाद ने बताया था; लेकिन मैंने यक़ीन नहीं किया था। अरे अव्वल दर्जे की हिरोइन और एक एक्स्ट्रा से,...क्या इन्डस्ट्री के सारे हीरो मर गये थे। आदमी बुरा काम करे तो कम से कम ढंग से तो करे।"

"जी हाँ !" अभिमन्यु ने सर हिला के कहा—"यही तो मैं भी कहता हूँ।"

"एतराज़ बुरे काम पर नहीं है; ढंग पर है और ढंग बड़ी चीज़ है।"

"मैडम ! एक नज़्म मैंने लिखी है; सलीक़ा।"

"ना भाई ! इस वक़्त नज़्म मुझसे नहीं सुनी जायेगी; तुम किसी तरह से राजलता को कल मेरे सेट पर ले आओ।"

"यह नामुमकिन है।" अभिमन्यु ने आह भर के कहा। मैडम ने सौ का नोट जेब से निकाल के उसे दिया—"अब मुमकिन है ?"

अभिमन्यु की बाँछें खिल गयीं, उसने सौ का नोट जल्दी से जेब में रख के कहा—"देखिए कोशिश करता हूँ; दो-एक गुर मुझे भी याद हैं।"

"मुझे मालूम है, तुम बहुत कुछ कर सकते हो।"

मैडम ने उसकी पीठ थपथपाते हुए अपनी बड़ी बड़ी आँखों से इस अन्दाज़ से उसकी तरफ़ देखा कि अभिमन्यु अपनी सारी चालाकी के बावजूद सिट्टी-पिट्टी भूल गया। मैडम उठ खड़ी हुई; उसे मालूम था उसकी आँखें किस हद तक किस की तरफ़ निडर हो कर देख सकती हैं। अब वह जल्दी से उठ खड़ी हुई।

"मैं रात को फिर टेलीफ़ोन करूँगी।"

मैडम के चले जाने के बाद अभिमन्यु फिर राज के कमरे के दर्वाज़े पर जाके दस्तक देने लगा; अन्दर से राज फिर चिल्लाई—"कौन है ?"

"मैडम आयी थीं।"

"निकाल दिया होता।"

"निकाल दिया।"

"क्या कहती थी ?"

"कल शूटिंग है।"

"लानत भेजो।"

"ज़रूर....भेजो।" अभिमन्यु ने समर्थन करते हुए कहा—"मगर मुझसे बीस रुपये ले गयीं, जो तुमने दिये थे; किचिन में इत्तिफ़ाक से पर्स भूल गयीं; गाड़ी में पेट्रौल डलवाना है।"

थोड़ी देर के बाद दर्वाज़े के नीचे से किसी ने दस के दो नोट फिर सरका दिये।

अभिमन्यु ने बीस रुपये अपनी जेब में रखकर अपनी भरी हुई जेब को इत्मीनान से थपथपाया, फिर उसने चाची गनेशी के पास जाके उसे बीस के नोट दिये—

"यह लो और घर का ख़र्च चलाओ।"

"और मेरे लिए ?" चाचा ने बेचैन होके पूछा। वह दो रोज़ से अपनी रंडी के यहाँ नहीं गया था।

"सब्र करो, यह मूहूर्त टल जाने दो।" अभिमन्यु ने बड़ी बेरुख़ी से कहा; और फिर वहाँ से उठकर मौसी दुलारी की बेटी रामप्यारी के पति अजीतसिंह के पास गया और उससे कानाफूसी में कहने लगा—"आज व्हिस्की का बन्दोबस्त करो; दो लड़कियाँ भी बुला लो, जुहू चलेंगे।" ख़ुशी से अजीतसिंह ने उसे गले लगा लिया।

× × ×

दिन गुज़रते चले गये, एक हफ़्ता गुज़र गया, दूसरा हफ़्ता गुज़र गया; तीसरा हफ़्ता गुज़र गया, एक महीना गुज़र गया।

अन्दर कमरे में इशरत ने एक जम्हाई लेकर कहा—"डार्लिंग ! अब तो इस कमरे में दम घुटने लगा।"

"खिड़की खोल दूँ ?" राज ने बड़े प्यार से उससे पूछा।

इशरत बोला—"सर में बेहद दर्द है।"

राज बोली—"सर दबाऊँ प्यारे !"

इशरत ने कहा—"नहीं, बात यह है कि अब बाहर घूमने को जी चाहता है।"

"उकता गये ?"

इशरत ने कहा—"तुम तो मेरी जान हो, मगर ताज़ी हवा; खुला आसमान—क्या ख़्याल है, हमें इस कमरे में आये हुए कितने दिन हुए होंगे ?"

"बस एक पल" राज ने कहा—

इशरत उठ खड़ा हुआ बोला—"बाहर जाएँगे।"

राज उसकी तरफ़ शिकायत भरी नज़रों से देखने लगी।

इशरत ने कहा—"आज मैं बहुत उदास हूँ; अम्मी याद आ रही हैं, और मेरे छोटे-छोटे भाई बहन।"

"जितने रुपये कहो उन्हें भेज दूँ ?"

"वह तो मैं जानता हूँ, डार्लिंग ! मगर यह भी तो सोचो मुझे भी तो कुछ करना चाहिए; मैं ख़ुद कमा के तुम्हें खिलाना चाहता हूँ। अपनी राज को...."

राज बोली—"मैं तुम्हें एकदम हीरो का चान्स दिलवा दूँगी।"

"यह चान्स, जब तक हम इस कमरे से बाहर नहीं निकलेंगे कैसे हाथ आयेगा ?"

राज निरुत्तर हो गयी; कुछ सोच के बोली—"अच्छा है, मैं कल ही तुम्हारे लिए एक शानदार पार्टी का बन्दोबस्त करती हूँ। इन्डस्ट्री के तमाम बड़े-बड़े डाइरेक्टरों और प्रोड्यूसरों और दूसरे लोगों को बुलाती हूँ, सब की तुमसे जान-पहिचान कराऊँगी; वहाँ बातों ही बातों में तुम देख लेना; तुम्हें किसी न किसी पिक्चर का चान्स दिलवा दूंगी, यह क्या मुश्किल है।"

"तो उठो दर्वाज़ा खोलो।"

"ऊं हूँ ! जी नहीं चाहता।" राज एक अदा से बोली।

"उठो ना !" इशरत ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा। राज ने उठ के बड़ी अनिच्छा से दर्वाज़ा खोला, इशरत लड़खड़ाता हुआ बाहर निकला। एक माह की क़ैद के बाद आज वह बाहर आया था, दुनिया उसे नई नई मालूम हो रही थी।

राज बाहर आ गयी। अभिमन्यु ने दौड़कर चचा से कहा। गनेशी दौड़ती हुई मौसी दुलारी के यहाँ पहुँची—राज बाहर आ गयी। मौसी दुलारी भागती हुई अपनी बेटी के कमरे में पहुँची, वहाँ उसका दामाद उसकी बेटी को पीट रहा था; राज के बाहर आने की ख़बर सुनकर उसने मारे ख़ुशी के अपनी पिटती हुई पत्नी को गले से लगाया, और सब दौड़ते हुए ड्राइंग रूम की तरफ़ चले।

राज टेलीफ़ोन कर रही थी।

थोड़ी देर में यह ख़बर टेलीफ़ोन पर स्टुडियो से स्टुडियो और एक फ़िल्म के दफ़्तर से दूसरे फ़िल्म के दफ़्तर में चक्कर लगाने लगी—'राज बाहर आ गयी।'

"राज बाहर आ गयी !"

"राज बाहर आ गयी !!"

"राज बाहर आ गयी !!!"

फ़िल्म के दफ़्तरों से यह ख़बर फ़िल्मी अख़बारों तक पहुँची। फ़िल्म आकाशवाणी के एडीटर ने ख़ुशी से अपने असिस्टेन्ट एडीटर, क्लर्क और चपरासी से, जो एक ही आदमी था, और जो वह ख़ुद ही था चिल्ला के कहा—

"राज बाहर आ गयी !"

हिरोशिमा पर बम गिरने की ख़बर ऐसी सनसनीखेज न थी; जैसी राज के बाहर आ जाने की ख़बर थी। दूसरे दिन राज की तस्वीर तमाम फ़िल्मी पत्रों और अख़बारों में मुखपृष्ठ पर थी, और हर प्रोड्यूसर यह सोच रहा था—"साली ! इससे पहले पचास हज़ार लेती थी; अब किसी हालत में सत्तर हज़ार से कम न माँगेगी।"

२०

'रोशनी गुल कर दो'

आज के बगीचे की बेलों और पेड़ों की डालों में रंग-बिरंगे बिजली के बल्ब आँख मिचौनी खेल रहे थे। राज ने आज पार्टी की खुशी में अपने परिवार के सभी लोगों—चचा दामोदर से लेकर मौसी की बेटी रामप्यारी के पति अजीतसिंह को गेराज और गेराज के साथ लगे हुए नौकरखाने में ढकेल दिया था, और अब पूरा बँगला फ़िल्म की मशहूर हस्तियों की शराबी आवाज़ों से गूँज रहा था।

राज का पति शंकर और चाची गनेशी और परिवार के दूसरे व्यक्ति एक अजीब आश्चर्य से बँगले में आते-जाते लोगों की तरफ़ देख रहे थे। शंकर के चेहरे पर कोई सवाल न था और कोई जवाब न था। उसने अब सारे जवाब पा लिये थे और उसकी आँखें अब ऐसे मोड़ को तक रही थीं जिसके आगे कोई रास्ता नहीं निकलता।

बारह बज चुके थे; और पार्टी अब जवानी पर आयी थी। बाहर पोर्च के एक तरफ़ सीढ़ियों पर व्हिस्की के दो गिलास रखे बजनदत्त म्यूज़िक डाइरेक्टर विलायत बेगम से कह रहा था—"ये पंजाबी और मराठे, मदरासी और गुजराती, सिंधी और पारसी पीकर क्या धमाचौकड़ी मचाते हैं; सुनो सुनो, अन्दर से शोर व गुल की आवाज़ सुनाई देती है, कितने असभ्य हैं ये लोग; अब अगर यह पार्टी हमारे कलकत्ते में होती; हमारे बंगाल में होती; तुम समझती हो ?"

"जी फ़र्माइए !" विलायत बेगम ने कहा।

"नहीं नहीं, मगर यह समझने की बात है; पीते हम भी हैं, पीते यह लोग भी हैं, मगर अपने पीने में अन्तर है, हमारे कल्चर में जो एक ख़ास तरह की सभ्यता, एक ख़ास तरह का रख-रखाव, एक ख़ास तरह का अन्दाज़, एक ख़ास तरह की नफ़ासत...ऐं ! मैं क्या कह रहा था ?" बजनदत्त ने विलायत बेगम से पूछा।

"नफ़ासत।" विलायत बेगम ने जम्हाई लेके जवाब दिया।

बजनदत्त की आँखें स्वप्निल हो गयीं; बोला—"मैं दुनिया का सबसे बड़ा संगीतज्ञ हो सकता था, मगर मेरी मुहब्बत ने मुझे तबाह कर दिया।"

"आपको किसी से मुहब्बत है ?" विलायत ने पूछा।

बजनदत्त ने विलायत का हाथ ज़ोर से पकड़ लिया, गुस्से में बोला—"मुहब्बत के बिना संगीत अधूरा रहता है। मुहब्बत ज़िन्दगी का मधुरस्वर है,—टैगोर ने कहा है : 'आह ! जिस लड़की से मैं मुहब्बत करता हूँ उसकी आँखें अगर तुम देखो....।'

"छोड़ो...कोई और बात करो।"

बजनदत्त ने उदासी से सर हिला के कहा—"मेरे हाथ से पियो।" बजनदत्त विलायत बेगम को व्हिस्की पिलाने लगा।

एक घूँट पीकर बजनदत्त ने कहा—"मैं बेहद उदास हूँ, मुसीबत में हूँ, विलायत तुम किसी तरह से मेरी मदद करो; मैं उस लड़की को भूलना चाहता हूँ।"

विलायत मुस्करा के बोली—"मैं भी किसी को भूलना चाहती हूँ!"

"आह!" बजनदत्त ने विलायत के हाथ को ज़ोर से कसकर कहा—"मैं भी उदास हूँ, तुम भी उदास हो, चलो हम दोनों जुहू चलें। मैं तुम्हारे कन्धे पर सर रखकर रोऊँगा; तुम मेरे कन्धे पर सर रखकर रोना, फाइन!"

बजनदत्त व्हिस्की पीने लगा, इतने में एक 'ए' क्लास का हीरो, जिसका नाम भद्रकुमार था, और जो हर वक़्त पिये रहता था, बजनदत्त से आके पूछने लगा—"बजनदत्त आर्ट किसे कहते हैं? रंजना से मेरी शर्त लग चुकी है।"

बजनदत्त ने भद्रकुमार के साथ खड़ी हुई मशहूर हिरोइन रंजना को देख के कहा—"आर्ट? आर्ट एक साँप है।"

"साँप।" रंजना ज़ोर से चीखी।

बरामदे में बहुत-सी खड़ी हुई लड़कियाँ चिल्लायीं—"साँप साँप!" बहुत-से लोग इधर-उधर भागे; बस भगदड़-सी मच गयी। शराब के बहुत-से प्याले टूट गये; बहुत-सी लड़कियाँ डर के मारे मर्दों के सीनों से लग गयीं। साँप ने सचमुच पार्टी में जान डाल दी थी। बड़ी मुश्किल से भद्रकुमार ने मामले को ठंडा किया, उसने कहा—"भई, यहाँ तो आर्ट के बारे में बातचीत हो रही थी।"

"आर्ट?" शमशाद चौंक कर बोली—"सबसे अच्छा आर्ट-सिल्क छेनामल सिन्धी की दूकान में मिलता है; जवाब नहीं है वहाँ के आर्ट का!"

भद्रकुमार मुँह मोड़कर अकरम से बातें करने लगा—"आप आजकल कौन-सी तस्वीर के बनाने में जुटे हैं?"

"फिलहाल तो कोई नहीं।"

"तो फिर किसी तस्वीर की कहानी—गीत—संवाद?"

"अभी तक ख़ाली हूँ।"

"ओह!" भद्रकुमार ने चौंककर कहा, फिर किसी गहरे सोच में पड़ गया, थोड़ी देर के बाद होश में आके कहने लगा—"आप शमा (एक मासिक पत्र का नाम) की पहेली हल करते हैं?"

"नहीं।"

"आपके पास मोटर है?"

"नहीं।"

"आपको गैबरडीन का सूट पसन्द है ?"

"हाँ ! मगर....."

मगर भद्रकुमार पूछता जा रहा था।

"अपना नाम अख़बारों में देखना पसन्द करते हैं ?"

"हाँ ! मगर....."

"आप एक घर चाहते हैं; एक ख़ूबसूरत बाग़, घर में प्यारी-सी बीवी, बीवी के प्यारे-से बच्चे !"

"हाँ ! मगर; देखिए...." अकरम कुछ कहना चाहता था।

भद्रकुमार ने कहा—"मैं क्या देखूँ, आप देखिए; मिस्टर अकरम आप देखिए। अगर आप इस समाज में सफल होना चाहते हैं; तो आप अपने आपको बेच डालिए, पूरे तौर पर बेच डालिए, अपने लिए कुछ न रखिए, कहीं पर अन्तरात्मा का कोई टुकड़ा, कोई कण, भावना का कोई भाग बाक़ी न रहने पाये।"

अकरम ने कहा—"मैंने थोड़ा-सा इतिहास पढ़ा है, बेच डालनेवालों का नतीजा भी जानता हूँ।"

"दो क्षणों के नतीजे से डरकर आप इतनी लम्बी-चौड़ी ज़िन्दगी को बर्बाद कर रहे हैं।"

अकरम ने कहा—"मैं कुछ चीज़ों और रिश्तों को बदलना चाहता हूँ।"

भद्रकुमार ने कहा—"बुरी आदत है।"

अकरम ने कहा—"आर्ट आम जनता में ले जाने के लिए—"

भद्रकुमार अकरम को छोड़कर रंजना की तरफ़ चला गया; जिससे बेकार में उलझने की कोशिश एक अर्से से जोशी जी कर रहे थे। भद्रकुमार के सामने किस डाइरेक्टर की चल सकती थी ! भद्रकुमार को आते देखकर जोशी अलग हो गया। भद्रकुमार ने उसी तरफ़ मुस्करा के कहा—"स्टुपिड !"

"जी सरकार !" जोशी प्रसन्नता से चिल्लाया और राजलता को ढूंढ़ने लगा।

राजलता इशरत का परिचय सेठ बांकड़िया से करा रही थी। शुरू-शुरू में मामला साफ़ न था, लोगों को मालूम न था कि यह पार्टी किस बात की दी जा रही है; लेकिन राज ने अलग-अलग प्रोड्यूसरों की टोलियों में जा जा के अपने प्रेमी का परिचय कराया और उनसे रोल मांगना शुरू किया।

बातों ही बातों में हँसकर, कभी अदा से, कभी नटखट निगाह से, कभी अनोखे भोलेपन से जो भोलेपन के बावजूद सब कुछ जानती हुई मालूम होती थी, मगर सब पर यह भेद खुल गया, कि यह व्हिस्की के जाम क्यों उड़ेले जा रहे हैं।

"जी हाँ ! मज़े कोई करे; रोल हम दें !" सेठ छेदीलाल बोले—"ऐसे उल्लू हम नहीं हैं।" मिर्ज़ा जी का पान उनके मुंह में पीक घोल रहा था।

"मगर इसमें है क्या ?" रँजना ने बड़ी नफ़रत से भद्रकुमार से पूछा;—"बिल्कुल जनखा मालूम होता है यह इशरत !"

भद्रकुमार ने कहा—"एलन से उसकी सूरत मिलती है।"

"छीः !" रंजना बोली।

इतने में उसे राजलता आती हुई दिखाई दी; वह फौरन पलट के उससे लिपट गयी—बोली—"हाय री ! कितनी ख़ुशकिस्मत है तू; मेरी तो देखने में उसे जान निकल गयी; होशियार रहना, किसी दिन छीन के ले जाऊँगी।"

राजलता बेहद ख़ुश हुई, उसने रंजना को चूम लिया; दोनों सहेलियां एक दूसरे से लिपट गयीं। फिर राज ने भद्रकुमार से पूछा—

"पार्टी पसन्द आयी ?"

"मैडम !" भद्रकुमार अपने सीने पर हाथ रख के पश्चिमी अन्दाज़ में झुका "यह वही ग्रेटेस्ट शान्दारेस्ट पार्टी है, जो मैंने अपनी ज़िन्दगी में देखी है।"

जोशी जी अभिमन्यु को लिये एक कमरे में बैठे पी रहे थे। रिश्तेदारों में सिर्फ़ अभिमन्यु ही ऐसी पार्टियों में शामिल हो सकता था। जोशी जी कह रहे थे; "गंगाजली की क़सम खा के कहता हूँ, मर जाऊंगा; मगर इस इशरत को कभी पार्ट नहीं दूंगा !"

अभिमन्यु ने कहा—"जी हाँ ! कभी मत दीजिएगा, मगर मुझे व्हिस्की तो दीजिए।" अभिमन्यु ने प्याला खाली कर दिया।

जोशी जी कह रहे थे—"ओर वह भी फिर एक मुसलमान लड़के से ! अरे ! तुम्हारी शर्म को क्या हुआ है अभिमन्यु ? एक कुलीन हिन्दू घराने की लड़की और वह एक मुसलमान से इश्क़ करे। मैं पूछता हूँ; कोई हिन्दू नहीं मिला या; क्या इन्डस्ट्री के सब हिन्दू हीरो मर गये थे ?"

"हियर, हियर !" अभिमन्यु ज़ोर से ताली बजा के चौंका। जोशी जी ने कहा—"क्या बात हुई ?"

"जल्दी से व्हिस्की दो, यह मेरी शराफ़त का तक़ाज़ा है।"

"तुम्हारी शराफ़त कहाँ है ?" जोशी जी ने ग़ुस्से से पूछा।

"मेरी जेब में।" अभिमन्यु ने जेब से छः सात दस दस के नोट निकाले और उन्हें फिर बड़े प्यार से चूम कर जेब में वापस डाल दिया—"आज मैं बहुत शरीफ़ हूँ; मेरी....."

अकरम उधर से गुज़र रहा था, अभिमन्यु की नज़र उस पर पड़ गयी, उसने

जल्दी से अकरम को कमरे में बुला लिया; जोशी मना भी करता रहा। अभिमन्यु ने कहा—"अकरम भैया! एक मुश्किल आन पड़ी है; हल कर दीजिए।"

"फ़रमाइये!"

जोशी ने अकरम से आँख मार के कहा—"यह पिये हुए है।"

अभिमन्यु ने क्रोध भरी निगाहों से जोशी की तरफ़ देखा और कहा—"जी हाँ! मैं रोज़ पीता हूँ; आज व्हिस्की पी रहा हूँ।"

"फ़रमाइये बात क्या है? मुझे जल्दी घर जाना है।"

"इतनी जल्दी?" अभिमन्यु ने पूछा—"अभी तो पार्टी शुरू हुई है; अभी थोड़ी देर में यहाँ पुलिस आयेगी; फिर थोड़ा हो-हल्ला होगा; उसके बाद सब लोग यहाँ से निकाले जाने के बाद जुहू पर चलेंगे। राज ने जुहू का एक पूरा होटल आज की रात के लिए रिज़र्व कर रखा है। आप नहीं जायेंगे?"

"नहीं!"

"कम से कम पुलिस को तो आने दीजिए। हम में से एक तो ऐसा होना चाहिए जो पुलिस से बे पिये बात कर सके।"

अकरम ने परेशान होके कहा—"आप बात बताइये नहीं तो मैं....."

अभिमन्यु ने उसे बाँह से पकड़ कर अपने पास बिठा लिया—

"बड़ा सादा-सा सवाल है; जोशी कहते हैं कि राज एक हिन्दू लड़की है; उसे इशरत से प्रेम नहीं करना चाहिए, अगर इशरत एक हिन्दू लड़का होता; तो इन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। बात यह है, कि आप हिन्दू मुसलमानों की आपस की शादियों के खिलाफ़ नहीं हैं। मिसाल के तौर पर अगर यही इशरत हिन्दू होता; मेरी बहन मुसलमान होती तो इन्हें इस बात पर भी कोई एतराज़ न था। इन्हें न मुहब्बत पर एतराज़ है; न धर्म पर; फिर किस बात पर एतराज़ है? यह मेरी समझ में नहीं आता। क्या आप बता सकते हैं?"

अकरम जोशी का मुंह देखने लगा।

जोशी जी खिसियानी हँसी हँस कर बोले—"मैं तो...अकरम तुम जानते हो, इस क़िस्म की साम्प्रदायिकता से कितना दूर हूँ; यह क़मबख्त अभिमन्यु इस वक़्त पीकर बहक गया है।"

अकरम ने अभिमन्यु से पूछा—

"क्या तुम्हें यक़ीन है कि यह मुहब्बत है?"

अकरम ने आगे कहा—"क्या तुम्हें यक़ीन है; कि अगर इशरत न होता तो यह मुहब्बत होती; इशरत न होता; जोशी जी होते तो यह मुहब्बत होती? राज न होती शमशाद होती तो मुहब्बत होती?" अभिमन्यु ने कहा—"मगर अकरम भैया!

मैं इस सवाल को हल करके छोड़ूंगा।" अभिमन्यु की भौंहें सिकुड़ गयीं; उसने बड़ी गम्भीरता से एक गिलास व्हिस्की का अपने सामने रख के कहा—"यह एक हिन्दू लड़का है।" फिर उसने एक दूसरा गिलास उठाया और कहा—"यह एक हिन्दू लड़की है; क्या यह दोनों मिल सकते हैं? मिला के देखें?" अभिमन्यु ने एक गिलास की व्हिस्की दूसरे में डाल दी, मिल गयी। अभिमन्यु ताली बजा के बोला—"अच्छा अब यह गिलास उठाओ, यह हिन्दू लड़का है, .यह उठाओ, यह मुसलमान लड़की है, दोनों को मिलाओ, आहा! फिर मिल गये।" अभिमन्यु ने फिर दो गिलासों की व्हिस्की अपने गिलास में उँडेल ली, चार छोटे मिला के बड़ा पेग उसके सामने था। "एक और छोटा पैग।" फिर उसने एक गिलास में व्हिस्की डाली; "यह मुसलमान लड़का है; यह मुसलमान लड़की है; आहा!" वह दोनों मिल गये! वह दोनों छोटे पेग भी उसने अपने पैग में डाल दिये। अब उसने एक और गिलास उठाया; "यह मुसलमान लड़का है; यह हिन्दू लड़की है। जोशी जी कहते हैं; यह नहीं मिलेंगे। आइये देखें; एं! यह तो मिल गये। एक ही रंग, एक ही स्वाद, वही गन्ध, वही ज़िन्दगी का तीखापन, वही उसका नशा।"

जोशी जी ने खिसियाने होके कहा—"अरे बुद्धू! सभी गिलासों में व्हिस्की ही तो है।"

अभिमन्यु बोला—"यही तो मैं भी देख रहा हूँ, हम सब में व्हिस्की है; हम सब उसी आग और पानी से बने हैं; नाम इशरत हुआ तो क्या; और जोशी हुआ तो क्या हुआ?"

उसके बाद अभिमन्यु बहुत बड़ा पैग पीने लगा।

जोशी जी ने अकरम से कहा—"आज मरेगा यह!"

अकरम कोई जवाब दिये बग़ैर कमरे से बाहर निकल गया। बड़े हाल में से तालियों की गूँज सुनाई दे रही थी। फ़िल्मी रिकार्डों की धुन पर रफ़िया रज़िया और विलायत बेगम नाच रही थीं। राजलता ने ख़ास तौर पर इन लोगों को पैसे देकर नाचने के लिए बुलवाया था। रफ़िया न आती; मगर अम्मा सख़्त बीमार थीं और उसे रुपयों की सख़्त ज़रूरत थी; उसे मालूम था वहाँ इशरत होगा; मगर अम्मा की जान के लाले पड़े हुए थे। डाक्टर के तक़ाज़े थे; बहन के छोटे छोटे बच्चों की निगाहों की उदासी रफ़िया से देखी न जाती थी। पन्द्रह दिन से कहीं काम न मिला था।

जब राजलता ने तीस रुपये एडवान्स के भेज दिये तो रफ़िया से इन्कार न हो सका।

नाच से पहले रफ़िया पार्टी में बिल्कुल शामिल नहीं हुई; रज़िया और विलायत

बेगम दोनों शामिल थीं; मगर रफ़िया चुपचाप मेकअप के कमरे में बैठी रही, किसी को उसके आने का पता न था। किसी को परवाह भी न थी, इशरत को भी मालूम न था; राज ने बताने की ज़रूरत नहीं समझी—एक एक्स्ट्रा लड़की !

रफ़िया ने सोच लिया था कि वह निगाहें उठा के किसी तरफ़ नहीं देखेगी, वह दीवारों को देखेगी, छत को देखेगी और फ़र्श को देखेगी और हवा को देखेगी; मगर किसी के चेहरे को और किसी की आँखों को और किसी के होठों को और किसी के बालों को और किसी की मुस्कराहट को कभी नहीं देखेगी, अगर किसी तरह से वह न देख सके। उसने अपनी आँखों से कहा—"तुम सिर्फ़ उस जगह अन्धी हो जाना जहां वह बैठा हो, मुझे रुपयों की सख्त ज़रूरत है, मैं अपने पाँव से नाचूंगी; मगर आँखों से आज नहीं नाच सकूंगी, क्योंकि आँखें रूह में झाँक कर देख सकती हैं। और अगर उसने कहीं देख लिया तो ? अगर उसने मेरी हार देख ली तो ! वह कैसे मुस्कराएगा ? आँखो ! क्या तुम अन्धी नहीं हो सकतीं, कुछ क्षणों के लिए। लोग कहते हैं, मुहब्बत अन्धी होती हैं, अब अपने प्रेमी के सिवा और सब कुछ नहीं देख सकती; लेकिन एक मुहब्बत ऐसी भी तो होती है; जिसमें इन्सान एक प्रेमी के सिवा और सब कुछ देखता है, आज मैं ऐसी ही आँखें चाहती हूँ।"

रज़िया ने उसे ठोका दिया—"चल, कम्बख्त ! क्या सोच रही है ? वह लोग हाल में रोशनियाँ बुझाए हमारा इन्तज़ार कर रहे हैं, नाच शुरू होने वाला है।"

हाल में अन्धेरा था जब रफ़िया, रज़िया और विलायत बेगम अन्दर आयीं, रोशनी हौले हौले बढ़ी; जैसे रात की सांस किसी को देख कर तेज़ हो जाये। फिर कहीं से पायल की झनक सुनाई दी; जैसे कोई तारा टूट के लरज जाये। फिर रोशनी का एक छोटा सा दायरा घूमता हुआ विलायत बेगम से रज़िया, रज़िया से रफ़िया पर रुका, एक क्षण के लिए, एक क्षण के लिए रफ़िया की आंखें बन्द हो गयीं, एक क्षण के लिए किसी ने ज़ोर से सांस अन्दर खींची। उसके पहले कि रफ़िया समझ सकती कि वह कौन है, हाल में लाइट हो गयी और नाच ज़ोर से शुरू हो गया।

रफ़िया की निगाह सबसे पहले जिस पर पड़ी; वह इशरत था। मुस्कराहट जेली की तरह उसके होठों से चिपकी हुई थी।

राज ने अपना सर उसकी गोदी में रख दिया था। जब तक रफ़िया नाचती रही; इशरत पत्थर की मूर्ति बना हुआ बैठा रहा। वह हिल नहीं सकता था। रफ़िया उसके पास से नाचती हुई गुज़री, और क़रीब से गुज़री, और क़रीब से गुज़र गयी।

सहसा इशरत बड़े ज़ोर से चिल्लाया—"रोशनी गुल कर दो !"

सहसा हाल की रोशनियाँ बुझ गयीं।

जिसके हाथ में रोशनी का इन्तज़ाम था उसने इशरत की तेज़ आवाज़ से घबरा

कर हाल की रोशनी गुल कर दी थी। कुछ क्षणों के लिए हाल में हो-हल्ला मच गया।

"रोशनी खोल दो, क्या हुआ ? रोशनी, रोशनी !"

राजलता चिल्लाई—"रोशनी कर दो !"

हाल की रोशनियाँ फिर चमकने लगीं, राज ने पूछा—"क्या हुआ था डार्लिंग ?"

इशरत ने अपने माथे से पसीना पोंछ कर कहा—"कुछ नहीं चक्कर आ गया था। रोशनियाँ तेज़ मालूम हुई थीं ?"

"अब ?"

"अब ठीक हूँ।" इशरत ने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा।

मेकअप के कमरे में अन्धेरा था; रफ़िया धीरे-धीरे रो रही थी। विलायत बेगम उसके पास बैठी थी। ख़ामोश ! रफ़िया रोते-रोते बोली—"अजीब अन्धेरा सा है; मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं उसके घूमे हुए खूबसूरत बालों में अपनी उँगलियाँ फेर रही हूँ।"

विलायत बेगम ने कहा—"इस ख़ामोशी में कभी-कभी मैं उस बच्चे की चीख़ सुनती हूँ।"

"किस बच्चे की ?" रफ़िया ने सिसकते हुए पूछा। विलायत बेगम रफ़िया के बिल्कुल क़रीब आ गयी उसके गले से लग कर बोली—"जानती हो रफ़िया ! मुझ पर कितना जुल्म तोड़ा गया; डाक्टर कहते हैं मेरे अब कभी कोई बच्चा न होगा; फिर भी—" विलायत बड़ी सख़्ती से रफ़िया से लिपट गयी। बोली—"फिर भी, कभी-कभी मुझे उस बच्चे की चीख़ सुनाई देती है, कभी-कभी वह मेरी कोख में कुसमुसाने लगता है; कभी-कभी मेरे बाजुओं में है, कभी-कभी उसके नन्हें-नन्हें हाथ मेरी छातियों पर रेंगते हुए मालूम होते हैं; मेरे खुदा ऐसा क्यों होता है ?" रफ़िया ने विलायत को चूम के कहा—"तू बड़ी अच्छी लड़की है; तू न जाया कर इन लोगों के साथ, कभी न जाया कर।"

विलायत ज़रा-सी हंसी; बोली—"पगली !"

× × ×

कोई पाँच बजे के क़रीब सुबह को पार्टी जुहू पर ख़त्म हुई। कोई दो बजे के क़रीब पड़ोसियों की शिकायत पर पुलिस आयी; तो यहाँ का गुलग़पाड़ा बन्द हुआ; और सब लोग गाड़ियों में बैठ कर जुहू चले गये। और वहाँ से कोई पाँच बजे के क़रीब जलसा ख़त्म हुआ; बहुत से लोग जिनकी उस रोज़ शूटिंग नहीं थी वहीं कमरों में पड़ के सो गये; दूसरे लोग जिन्हें काम था, गाड़ियों में बैठ कर घरों को

भागे। राजलता की शूटिंग थी लेकिन शूटिंग से पहले उसे सुबह-सुबह संजाना कालेज में हार्नबी रोड पर एक साहित्यिक सोसायटी का उद्घाटन करने के लिए जाना था; इसलिए वह इशरत को लेकर घर आ गयी। स्नान करने के लिए, कपड़े बदलने के लिए, मेकअप करने के लिए; तीन घण्टे तो चाहिए।

ड्रेसिंग टेबल पर उसकी और इशरत की बातें हुई। राजलता कोई घुटी हुई लड़की न थी; वह ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठ कर मेकअप करती थी। यह उसकी ज़िन्दगी के अत्यन्त गम्भीर या नपे तुले क्षण होते। वह ग़ौर से अपनी सुन्दरता की जांच पड़ताल करती और अपनी ज़िन्दगी के अलग-अलग पहलुओं पर ग़ौर करती।

"डार्लिंग वह ब्रुश देना।" राज ने इशरत से कहा; इशरत ने ब्रुश उठा के दिया।

राज बोली—"जोशी जी ने वायदा कर लिया है, सेठ बांकड़िया ने भी वायदा कर लिया है, मैडम से भी कह चुकी हूँ; बल्कि कल तो दो सौ रुपये रमी में जान बूझ कर मैं हार गयी कि किसी तरह मैडम खुश हो जायें। तुम जोशी जी की अगली पिक्चर में हीरो का काम कर रहे हो। मिर्ज़ा जी ने भी हाँ कर दी है। छेदीलाल ने भी मन्ज़ूर कर लिया है। मैंने उससे कहा—अगर तुम्हें हीरो का चान्स दे तो मैं उससे दस हज़ार रुपये कम ले लूँगी। वह बहुत खुश हुआ। अगले हफ़्ते अपनी नई तस्वीर का ऐलान कर रहा है; जिसमें तुम हीरो और मैं तुम्हारी हिरोइन। डार्लिंग वह पेटीकोट देना। गुलाब बेचारा हर साल उसे एक नई कार पेश करता है; लगभग एक लाख के जवाहिरात ले के देता है; फिर भी शमशाद उससे खुश नहीं है, अगर दादी का दबाव न होता तो वह कब की उसे धता बता चुकी होती। ज़रा वह सैन्डल तो देना।

"यूँ वायदे तो रात को दस-बीस प्रोड्यूसरों ने किये हैं, अगर उनमें से दो चार भी तुम्हें चान्स दे दें तो दो ही सालों में तुम वहां ऊपर नज़र आओगे।" राज ने उसे छत की तरफ़ इशारा किया। इशरत ने उसे गले से लगा लिया।

"अरे रे! मेरा मेक-अप मत खराब करो, जान!" राज ज़रा तुनक कर बोली—"कालेज पहुँचना है, अच्छा देखो अभिमन्यु ने मेरे लिए एक स्पीच तैयार कर दी है; ज़रा तुम देख लो उसे; तुम तो ग्रेजुएट हो, आगे से मेरी स्पीच भी तुम ही लिखा करना; ठीक है ना?"

"हाँ!"

× × ×

संजाना कालेज का हाल बिल्कुल भरा हुआ था। साहित्यिक गोष्ठी थी; लेकिन

साइन्स के विभाग ने भी छुट्टी मनाई थी; और सब के सब हाल में जमा थे; बल्कि बहुत से लड़के तो हाल के इधर भी खड़े थे, उन्हें हाल में खड़े होने को भी जगह न मिली थी। प्रिन्सिपल साहब जिनकी मूंछें हर रोज गिरी रहती थीं; वह भी आज अपनी मूंछों को बल देके आये थे। प्रोफेसरों की ऐनकों के शीशे खास तौर पर साफ़ थे, और पतलूनों पर इस्त्री करने की कोशिश की गयी थी। लड़के तो बढ़िया कपड़े पहन के आये ही थे; टी शर्ट और नीलोन के शर्ट; जिन से अन्दर का जिस्म साफ़ नज़र आता है। टखनों के ऊपर तंग मोहरी की पतलूनें। 'कुछ अर्से के बाद लड़के नीलोन की पतलूनें भी पहनने लगेंगे; फिर मर्दों और औरतों में कोई फ़र्क़ नहीं रह जायेगा।' राजलता ने सोचा।

राजलता इशरत और अभिमन्यु को साथ ले के आयी थी; मगर यह चूँकि लड़कों का कालेज था; इसलिए किसी ने इन मर्दों की तरफ़ ध्यान न दिया। इशरत बहुत उम्दा कपड़े पहन के आया था; मगर लड़कों ने एक नज़र देखा फिर समझ गये; फिर उन्होंने उसे सचमुच देखा-अनदेखा कर दिया; जैसे वह हाल में बैठा ही न हो।

राजलता की स्पीच बहुत उम्दा थी; अभिमन्यु ने जगह-जगह साहित्यिक वाक्य और उद्धरण चुरा कर जो रख दिये थे; उनपर राजलता को बहुत ही प्रशंसा मिली। आखिर में जब इस शेर पर उसने अपनी स्पीच खत्म की—

जो बेनिशाँ थे वह पा गये मंज़िल,
हमें तो राह के नामोनिशाँ ने लूट लिया।

तो उपस्थित लोग लगातार दो मिनट तक तालियाँ पीटते रहे। राजलता की स्पीच का विषय था "नीति और साहित्य" सभापति जो खुद कालेज के प्रिन्सिपल थे; उनका कहना था कि इस विषय पर इससे अच्छी स्पीच आज तक नहीं की गयी।

स्पीच के बाद राज को लड़कों ने घेर लिया, ऑटोग्राफ़ के लिए। असल में कॉलेज में बुलाने का अभिप्राय यही होता है। स्पीच और निमन्त्रण तो एक बहाना होता है। असल चीज़ तो वह क्षण होता है जब देश की प्रसिद्ध हिरोइन तुम्हारे सामने, बिल्कुल सामने, कुछ क़दम के फ़ासले पर खड़ी तुम्हारी ऑटोग्राफ बुक पर हस्ताक्षर कर रही होती है, तब तुम बैकुण्ठ में पहुँच जाते हो।

राज को कई लड़कों ने घेर रखा था।

अभिमन्यु और इशरत मूर्खों की तरह स्टेज के एक कोने में बैठे कभी उँगलियाँ चटखाने; कभी पाँव खुजाने लगते। इशरत को बार-बार पसीना आ रहा था। हालांकि सर के ऊपर पंखा चल रहा था। इतिहास के प्रोफ़ेसर ने भूगोल के प्रोफ़ेसर से कहा—"हमारे ज़माने में ऐसा नहीं होता था; हम लोग मुल्क के बड़े-बड़े दार्शनिकों,

विद्वानों और साहित्यिकों को बुलाते थे; और उनकी बातें सुनते थे। आज अगर साइन्स सोसायटी के लिए चन्दा इकट्ठा करना हो; तो भी किसी फ़िल्म स्टार को बुलाया जाता है; मुझे फ़िल्म वालों से कोई बैर नहीं है, मगर यह लड़की ?" राज की तरफ़ इशारा करके कहा—"यह साइन्स या इतिहास या भूगोल, किसी के बारे में क्या जानती है ? यह तो शायद सिर्फ़ चेक बुक या ऑटोग्राफ़ बुक पर दस्तख़त कर सकती है।"

भूगोल के प्रोफ़ेसर ने हँस कहा—"माई डियर ! आजकल इतिहास का ज़माना नहीं रहा; आजकल नये लड़के इतिहास के बजाय भूगोल में ज़्यादा दिलचस्पी प्रकट करते हैं।" इतिहास का प्रोफ़ेसर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा और भूगोल के प्रोफ़ेसर को खींच कर हाल से बाहर ले गया।

२१

इशरत को चान्स नहीं मिला

कई हफ़्ते गुज़र गये; मगर इशरत को हीरो का चान्स न मिला; राजलता ने बेहद कोशिश की, मगर उसे कहीं सफलता की सूरत नजर न आयी। सेठ छेदीलाल ने तो तस्वीर का ऐलान भी कर दिया था—"भेदी डाकू"; जिसमें इशरत और राजलता दोनों का काम था; मगर बाद में डिस्ट्रीब्यूटर के कहने पर उसे इस तस्वीर के बनाने का ख्याल छोड़ देना पड़ा; क्योंकि डिस्ट्रीब्यूटर इन दिनों मार्केट के अन्दाजे के मुताबिक, पूंजी की कमी के कारण और उस पर सूद दर सूद की ज़्यादती के कारण ज़्यादा तस्वीरें बनाने के पक्ष में नहीं थे; और उन तस्वीरों में वह तो बिल्कुल ही किसी नये चेहरे को लेकर किसी फ़िल्म का ख़तरा मोल नहीं ले सकते थे।

छेदीलाल को सब कुछ राजलता ने अच्छी तरह से समझाया—"अगर नये चेहरे नहीं आयेंगे, तो नये लोगों को चान्स कैसे मिलेगा ? एक रोज़ मैं भी तो नया चेहरा थी !"

"लड़कियों की बात और है।" छेदीलाल ने मुस्कराकर कहा—"उनके लिए ज़्यादा सुभीता है।"

सेठ बाँकड़िया ने कहा—"आजकल मन्दा चल रहा है, अरे जब से लड़ाई बन्द हुई है; मन्दा चल रहा है। तुम्हें मालूम नहीं राज ! फ़िल्मों का हाल कितना

बुरा है, जो फ़िल्म लगाते हैं झट से फेल हो जाती है। बाक्स आफ़िस ने तो हमारे होश गुम कर दिये। मालूम नहीं, आम लोग क्या चाहते हैं, ये साले चवन्नी वाले ?"

किसी ज़माने में कम से कम टिकट चार आने का हुआ करता था और लोग उसी में जा के बैठा करते थे; मज़दूर, कारीगर, छोटे-छोटे दूकानदार, क्लर्क, विद्यार्थी सब चबन्नी में फ़िल्म देखते थे; मगर ज्यों-ज्यों मँहगाई बढ़ती गयी फ़िल्म देखने के दाम भी बढ़ते गये। अब भी चवन्नी का टिकट दस आने में खरीदा जाता था। लोग अब उस क्लास में बैठने के लिए चार आने के बजाय दस आने देते थे; मगर उनसे रुपया बटोरनेवाले अब तक उन्हें 'साले चवन्नीवाले' कह के पुकारते थे।

"रेसकोर्स को देखो, इन साले घोड़ों को क्या हो गया है, इस साल मेरा एक घोड़ा भी नहीं जीता।" सेठ बाँकड़िया राज को बताने लगा।

"मगर मैं तो इशरत.....।"

बाँकड़िया ने राज की बात काट के कहा—"और स्टाक एक्सचेंज को लो; चालीस साल से स्टाक एक्सचेंज का धंधा कर रहा हूँ; ऐसा बुरा जमाना कभी नहीं देखा, दो लाख तो कल ही हार गया एक दिन में।"

"मगर मैं तो सेठ जी आप से स्टाक एक्सचेंज की नहीं, इशरत की बात करने आयी थी, दोनों का आपस में क्या सम्बन्ध ?"

"बहुत गहरा सम्बन्ध है तुम नहीं जानतीं।" सेठ चमक के बोले—"स्टाक एक्सचेंज हमारे समाज का प्रोड्यूसर है; वह अपनी जगह पर स्थिर है तो सब कुछ अपनी जगह पर है; यह गुर तुम नहीं जाननीं।"

राज सिटपिटा गयी; बोली—"आप इशरत को हीरो का चान्स दे रहे हैं कि नहीं, साफ़ साफ़ बताइये ना ?"

"वही तो बता रहा हूं।" बाँकड़िया ने राज का हाथ अपने हाथ में ले के और उसकी हथेली की तरफ़ ग़ौर से देख के कहा—"बहुत लकी हो, तुम बहुत लकी हो।"

राज ने अपना हाथ हटा लिया।

बाँकड़िया ने मुस्करा के कहा—"अगर ज़माना अच्छा होता तो ज़रूर मैं इशरत को चान्स देता मगर अब तो मैंने सोच लिया है कि अपने को रिस्क लेना ही नहीं। साल में चार पिक्चर बनाओ, ज़्यादा न बनाओ मगर बड़ी स्टार कास्ट-वाली पिक्चर बनाओ, पिक्चर बनने से पहले डिस्ट्रीब्यूटर को बेच दो, न खटखट, न पटपट।"

राज उठ खडी हुई।

"बैठो ना" बांकड़िया ने कहा—"मैडम अभी आती होंगी।"

राज जवाब दिये बग़ैर सेठ की केबिन से निकल गयी।

जोशी राजमहल में शूटिंग कर रहा था। वह राजलता को साउन्ड रिकार्डिङ्ग के कमरे में ले गया और इन्जीनियर से कहने लगा कि वह पन्द्रह-बीस मिनट के लिए बाहर चला जाये; उसे राजलता से कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं। जोशी राजलता को बहुत देर तक ऊँच-नीच समझाता रहा।

"तुम मूर्ख हो, नासमझ हो, पागल हो।" जोशी ने राज से कहा—"आख़िर तुम क्यों इशरत को हीरो का चान्स दिलवाना चाहती हो?"

"क्योंकि मैं उसे चाहती हूँ।"

"बस यही तुम्हारी मूर्खता है कि तुम यह समझती हो कि तुम उसे चाहती हो। वास्तव में न तुम उसे चाहती हो, न वह तुम्हें चाहता है।"

"वह मेरे लिए जान भी दे सकता है।" राजलता ने अपने पर्स को ज़ोर से बन्द करते हुए कहा।

"देखो! प्यारी! कभी तुम हमारी भी प्यारी थीं; इसलिए कम से कम इस शब्द के बरतने का हक़ तो मुझे दो—" जोशी ने उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा। राज ज़रा-सा मुस्कराई और ग़ौर से उसकी बातें सुनने लगी। जोशी कह रहा था—"तुम औरत हो, बहुत-सी बातें नहीं समझती हो, इशरत को मैं कल ही हीरो का चान्स दे सकता हूँ, दिला सकता हूँ; मगर ऐसा क्यों नहीं करता सिर्फ़ तुम्हारे भले की ख़ातिर! मैं जानता हूँ तुम उसे कितना चाहती हो; मगर जिस दिन तुमने उसे हीरो का चान्स दिलवाया, वह तुम्हारे हाथों से निकल जायेगा। आख़िर दूसरी हिरोइनों के भी तो प्रेमी हैं, वे भी सुन्दर हैं, बाँके हैं, नौजवान हैं, वे लड़कियाँ क्यों उन्हें सम्भाल-सम्भाल के रखती हैं? क्यों उन्हें किसी फ़िल्म में हीरो क्या, हीरो से कम दर्ज़े का रोल भी नहीं दिलवातीं?"

राजलता जोशी का मुँह देखने लगी, सचमुच यह बात बड़ी अजीब थी; उसे रंजना और उसका दोस्त सन्तोषकुमार याद आया।

जोशी जी ने राज का चेहरा देखा और अपनी आवाज़ नीची करके बोला—"डार्लिंग! तुम्हारे भले के लिए कहता हूँ; अगर इशरत को अपने वश में रखना चाहती हो तो उसे किसी फ़िल्म में चान्स मत लेने दो; वरना वह एक तस्वीर में काम करने के बाद तुम्हारे काम का नहीं रहेगा। तुम्हारे हाथ से जायेगा, देख लो भद्रकुमार को, सबसे पहले आशा ने काम दिलवाया था; अब दोनों एक-दूसरे से बात नहीं करते।"

"गुलमुहम्मद को रानीबाला ने काम दिलवाया था; आज गुलमुहम्मद ने इरशाद से शादी रचा ली; और रानीबाला मुँह ताकती रह गयी। अगर तुम इशरत को

अपने हाथ से खोना चाहती हो, तो कल उसे मेरे पास भेजो; मैं उसे काम दे दूँगा; यूँ।" जोशी जी ने चुटकी बजाई।

राज सोचने लगी, बात तो ठीक कहता है।

जोशी जी ने कहा—"डार्लिंग! तुमने हमें छोड़ दिया; मगर हम अब भी तुम्हारे भले के लिए सोचते हैं; तुम तो इशरत को इस तरफ़ लाती ही नहीं, उसे नाचपार्टी, अच्छे कपड़े, हाव-भाव में ऐसा गुम कर दूँ कि सुबह से शाम तक उसे खुद का ध्यान भी न आये। वह फ़िल्म में आया और तुम्हारे हाथ से गया। क्यों?"

राज ने सोचते सोचते कहा—"बात तो तुम ठीक कहते हो।"

जोशी जी ने खुश हो के उसे गले से लगाना चाहा।

उसने अपने आप को जोशी जी की पकड़ से छुड़ा लिया; और रिकार्डिंग रूम से बाहर निकल गयी। बाहर इन्जीनियर दीवार से लगा सिगरेट पी रहा था; वह राज को देखकर मुस्कराया, राज जल्दी से अपनी साड़ी सम्भालती हुई तेज़ी से गुज़र गयी।

"साली!" इन्जीनियर ने सिगरेट फेंक कर उसे अपने पाँव तले दबाते हुए कहा।

× × ×

एक साल बीत गया इशरत को कहीं हीरो का चान्स न मिला। यह साल आम लोगों के लिए बड़ी मुसीबतों का साल था। बहुत से स्टुडियों में दूसरे मज़दूरों को छः छः माह से तनख्वाह नहीं मिली थी। अंधेरी में दो स्टुडियो बन्द हो गये थे। चेम्बूर में एक बन्द होने वाला था, बहुत कम तस्वीरें बन रही थीं। एक्स्ट्रा लोग तो बेकार रहते ही थे; अब उसका असर दूसरे दर्जे के कलाकारों पर भी पड़ रहा था। जो करेक्टर रोल किया करते थे, उनमें से बहुत लोगों की गाड़ियाँ गिरवी हो के कालबादेवी रोड के सेठों के पास पहुँच चुकी थीं। यही लोग थे जो इन्डस्ट्री में रुपया भी लगाते थे। जब उन लोगों ने यह हालत देखी तो पूँजी की दर सूद भी बढ़ा दी। पहले तीस चालीस सैकड़ा पर रुपया मिल जाता था; अब पछत्तर पर मिलने लगा। एक लाख रुपये पर पछत्तर हज़ार सूद दो तो तस्वीर बनाओ। अब ऐसे में कहीं तस्वीर बनेगी और क्या तैयार होगी? बड़े बड़े प्रोड्यूसर भी बेईमानी पर तुल गये, तस्वीरें शुरू हुई नहीं, आधी या एक चौथाई बन के रह जाती थीं। प्रोड्यूसर बीच में रुपया खा जाते थे। एक लाख पर पछत्तर हज़ार सूद कौन देगा? जोशी जी ने सेठ कुतरचन्द से एक लाख रुपया सूद पर लेकर अपनी बीवी के नाम पर एक मकान बना लिया था, बीस हज़ार फ़िल्म में भी लगाया था। दो रीलें तैयार होके डिब्बे में पड़ी थीं, आगे के लिए काम बन्द था। जोशी जी बाँकड़िया

सेठ की तस्वीर पूरी कर रहे थे; अब सेठ कुत्तरचन्द आगे बढ़े—रकम दे दो तो उसकी पिक्चर बन सकती थी, नहीं तो मौज करे, जिस तरह जोशी जी ऐश कर कर रहे थे। मगर सिर्फ़ ऊपर के चालीस पचास या सौ आदमी मजे में थे। बम्बई की फ़िल्म इन्डस्ट्री में कोई पच्चीस हज़ार आदमी काम करते थे; उन एक सौ को छोड़कर बाक़ी सब की हालत बद से बदतर होती जा रही थी।

२२

अदला-बदली

राज की बाहों के बाहर अन्धेरा था। इशरत को राज के प्यार ने, ऐश ने, आलसी और सुस्त और निकम्मा बना दिया था। वह पहले से दुगुना मोटा और भारी हो गया था। उसका पेट थोड़ा-सा आगे निकल आया था, उसका चेहरा सख़्त हो गया था। आँखों में वह शर्मीलापन न रहा था। उसके चेहरे पर एक तरह की तसल्ली छा गयी थी; जैसे सुअर के चेहरे पर होती है, जब वह बहुत खा ले। अब उसे गन्दा मज़ाक पसन्द आता था। अब उसे भंग, व्हिस्की या चरस से नशा न आता था। वह राज के भाई अभिमन्यु के साथ उन तमाम चीज़ों से गुज़र कर मार्फ़िया की हद तक पहुँच चुका था। जब तक मार्फ़िया का इन्जेक्शन न ले ले उसे नशा नहीं आता था।

अभिमन्यु इस मैदान का पुराना खिलाड़ी था। वह कहने लगा—"भाई मुझे तो अब इस मार्फ़िया से भी नशा कम होने लगा है; मैं तो अब संखिया चाटना शुरू करूँगा।"

"संखिया ?" इशरत आश्चर्य से बोला—"संखिया से तो आदमी मर जाता है।"

"एक रत्ती से शुरू करूँगा।" अभिमन्यु बोला—"और फिर ख़ुराक बढ़ाते-बढ़ाते बढ़ा ले जाऊँगा। संखिया सब नशों का बादशाह है और सच पूछो तो यह नशे की सीमा का वह स्थान है; जहाँ आदमी सांपों से कटवाना शुरू करता है।"

"सांपों से ?" इशरत की आँखें आश्चर्य से निकली की निकली रह गयीं। "तुम मज़ाक़ करते हो ?" "मज़ाक़ नहीं है, ज़रा कम ज़हरीले सांपों से मैंने कई साधुओं और फ़क़ीरों को कटवाते देखा है। उन्हें सिर्फ़ सांप के ज़हर से नशा होता है। बस उस नशे का जवाब नहीं है। नशों में यह तूफ़ान की आख़िरी मंज़िल है।"

"सांप का ज़हर" इशरत कांप उठा; "नहीं अपने लिए तो बस मार्फ़िया काफ़ी है। छः सात घंटे ऐसा जमा हुआ नशा होता है कि चन्डू क्या चीज़ है।"

"अपने को तो अब इससे भी कुछ नहीं होता।" अभिमन्यु शेखी बघार के बोला।

इतने में टेलीफ़ोन की घण्टी बजी। इशरत दौड़ा-दौड़ा बाहर गया; शमशाद ोफ़ोन कर रही थी।

इशरत ने कहा—"राज तो कहीं बाहर गयी है।"

शमशाद बोली—"कल ईद है, हमारे यहाँ आप की दावत है, राज की और पकी, आयेंगे ना ?"

इशरत ने कहा—"ज़रूर आयेंगे; आप बुलायें और न आयें, भला यह कैसे किन है।"

शमशाद हँसी; बोली—"राज से कह दीजिएगा उसे मैं दुबारा टेलीफ़ोन करूँगी र हाँ देखिए।" वह टेलीफ़ोन पर अपनी आवाज़ नीची करते हुए बोली—भिमन्यु भैया को न लाइयेगा, मैंने बस बहुत कम लोगों को बुलाया है।"

"जी बहुत अच्छा।" इशरत ने रिसीवर रख दिया।

शमशाद ख़ुद तो इस क़दर चालाक न थी, लेकिन उसकी दादी माँ बहुत होशि-र थी। वह राजलता जैसी नटखट लड़की की हरकतों को पसन्द न करती थी। इ मफतलाल पार्क में एक ख़ूबसूरत फ़्लैट में रहती थी। उसके यहाँ हमेशा ईद की वत होती थी मगर कभी ऐसी भीड़भाड़ न हो सकती थी; जो राज की दावत में ती थी। उसने इस दावत में सिर्फ़ दस जोड़े बुलाये थे; कोई आदमी अकेला नहीं ाया था और कोई आदमी अपनी बीवी के साथ नहीं आया था। शमशाद की दी उसका खास ख्याल रखती थी कि किसी ऐसे आदमी को न बुलाया जाय जो ल्ती से इस मौक़े पर अपनी बीवी को लेके चला आये। राज के यहाँ यह भी हो ाता था; जिससे दावत की गरमागरमी में पति से ऐसी हरकतें हो जाती थीं, ासका फल उसे बाद में बीवी के सामने भुगतना पड़ता था। ऐसे मौक़ों पर बेचारी ावियों को दूर ही रखना चाहिए। दादी अम्मा बहुत समझदार थीं; उन्होंने जाओं का ज़माना देखा था, वह महफ़िल के क़ायदे जानती थीं; आजकल की ड़कियाँ सब गुड़-गोबर कर देती हैं।

इस दावत में फ़िल्म के लोग ज्यादा थे; मगर चन्द एक जौहरी भी थे। उनके ाथ तीन 'सी' क्लास की हिरोइनें थीं। राजलता के लिए उन लोगों से इस रह मिलना सचमुच एक अजीब बात थी। वैसे वह उन लड़कियों से परिचित थी; गर आज पहली बार यूँ मिलना हुआ, क्योंकि ऊपर से देखने पर ये लड़कियाँ पने आपको बहुत लिये-दिये रहती थीं। उनकी आमदनी भी—यानी फ़िल्मों से ामदनी भी ज्यादा न थी। इसलिए राज समझ नहीं सकती थी कि इन लड़कियों ा क़ीमती लिबास, क़ीमती गहने और हर साल नई गाड़ी कहाँ से आती है, कहाँ

से आती है ? प्यारी राज कितनी जल्दी तुम अपने को भूल गयी हो, कड़वी बातें कौन याद रखता है ? एक दिन ये लड़कियाँ भी तारीफ़ की छत पर पहुँच कर भूल जायेंगी। आज ये लोग मेहनत कर रही हैं और वही हथियार इस्तेमाल कर रही हैं जो कभी तुमने किये थे। कितना सदियों पुराना रास्ता यह है; कितना आसान भी है, एक ख़ूबसूरत औरत के लिए ! दावत में किसी तरह का हंगामा भी न हुआ। शराब का दौर भी न चला। जौहरी लोग और दूसरे लोग भी शमशाद के लिए उपहार लाये थे। शमशाद का दोस्त गुलाबदास ख़ुद एक जौहरी का लड़का था। ज़ाहिर है कि उसके उपहार सबसे उम्दा थे; मगर दूसरे जौहरी भी कोई कम शानदार न थे। कोई बड़प्पन की धाक जमाने के लिए, कोई आगे की तरफ़ निगाह रखते हुए शमशाद के लिए उम्दा से उम्दा उपहार लाया था—असली हीरों के ज़ेवर। उन लोगों का ताज और ग्रीन में अकाउन्ट चलता था। लन्दन, शिकागो और न्यूयार्क में इन लोगों के दफ़्तर थे। ये लोग बम्बई के असली मालिक थे। इनके हाथों में, घड़ियों पर, कोट और क़मीज़ के बटनों पर इतने हीरे लगे हुए थे कि उनकी क़ीमत इस दावत में शामिल होनेवाली तमाम हिरोइनों के कुल बैंक बैलेन्स से ज़्यादा होगी। वे सोफ़े पर इस तरह हिलते थे; जैसे वे उस सोफ़े के मालिक हों; जब वे चाय पीते थे, तो ऐसा मालूम होता था कि किसी पर एहसान कर रहे हैं। जब वे लोग किसी की तरफ़ देखते थे तो मालूम होता था कि वे उसके भी मालिक हैं जिसकी तरफ़ वे देख रहे हैं। उनके ज़िस्म की हर अदा कहती थी; हम मालिक हैं—हम मालिक हैं। इन लोगों की बहुत अच्छी बीवियाँ थीं; जिनके साथ बहुत प्यारी पवित्र ज़िन्दगी बसर करते थे, उनके बच्चे थे; ख़ूबसूरत प्यारे, अँग्रेज़ी स्कूलों में पढ़ते थे; ये लोग उनसे बहुत मुहब्बत करते थे, इन लोगों को उनके घरों में अपनी प्यारी झूला झूलती हुई बीवियों के साथ देखकर कोई नहीं कह सकता था कि ये लोग कभी ऐसी दावतों में शामिल हो सकते हैं ! ये लोग अपने माथे पर चन्दन लगाए हुए बिल्कुल गंगाजल की तरह स्वच्छ और निखरे हुए नज़र आते थे। ये लोग जो बीसवीं सदी के परमात्मा थे; पवित्र थे, और हर महफ़िल में पूजे जाते थे यहाँ क्यों बैठे थे ? जिनके पास सब कुछ मौजूद था, फिर यह ज़िन्दगी से क्या चाहते थे ? सब कुछ के बाद कुछ और उसके बाद कुछ और—देवताओं क्या तुम्हारी हवस कभी नहीं मिटेगी ? क्या तुम किसी को इन्सान नहीं बनने दोगे ?

लोग कहते हैं, ऐसे देवता थे; जिनकी सैकड़ों बीवियाँ थीं, तो फिर आजकल के देवता क्यों न अपना प्राइवेट अन्तःपुर रखें। घर से दूर, घर से बाहर, एक साफ़-सुथरा फ़्लैट, एक सजी सजाई दासी उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा में। कालबादेवी रोड पर और हमाम स्ट्रीट के देवताओं का यह फ़ैशन था; एक बीवी और एक प्रेमिका।

बहुत से लोग जो किसी प्रकार के अन्य सम्बन्ध न रख सकते थे; वे भी एक चहेती पालते थे।

फ़ैशन !

शमशाद की दादी बहुत खुश थी, अबकी पिछली ईद से ज्यादा उपहार आये थे। ज़ेवर भी चालीस हज़ार के होंगे। अकेले सेठ जसवन्तलाल पारिख पन्द्रह हज़ार के ज़ेवर लाये थे; हालांकि पिछले साल उसने सिर्फ़ सात हज़ार का एक हार दिया था। जसवन्तलाल पारिख की तरफ़ शमशाद की दादी ने ग़ौर से देखा; मगर सेठ जसवन्तलाल पारिख बड़े आराम से चाय पी रहे थे; जैसे कुछ हुआ नहीं। "मुझे इस सेठ को किसी दिन टेलीफ़ोन करना पड़ेगा।" दादी अम्मा ने दिल में सोचा— "मेरी बेबी बड़ी बेवकूफ़ है, इसे कुछ आता जाता नहीं, बस देखो इस वक़्त भी क्या मजे से गुलाबदास से बातें कर रही है। अरे गुलाबदास तो खाली एक जौहरी का लड़का है, मगर जसवन्तलाल पारिख तो कमर्शियल एसोसियेशन के सेक्रेट्री हैं। बड़ी मूर्ख है, एक दफ़ा भी तो मुड़के नहीं देखती सेठ पारिख की तरफ़। बस, गुलाब को देखकर मुस्कराए जाती है।"

अन्धी !

दावत जल्दी खत्म हुई। सब लोग चले गये। शमशाद ने राज और इशरत को रोक लिया; दादी अम्मा उठकर अपने कमरे में चली गयीं। शमशाद ने व्हिस्की की बोतल खोली।

इस सजे हुए फ़्लैट में बड़ी शान्ति है, रंग मद्धम हैं; पर्दे देखने में भले लगते हैं, तस्वीरें आर्ट के सबसे अच्छे नमूने हैं, बुक-शेल्फ़ में उम्दा लेखकों की किताबें सजी हुई हैं। गुलाबदास खुशमिजाज़ आदमी मालूम होता है। इशरत ने सोचा—'राजलता के घर में कितनी अनार्की है, कपड़े हैं तो तेज़ रंग के, तस्वीरें हैं तो नंगी, रंग हैं तो चीखते हुए, इस कम्बख़्त राज को कभी अक़्ल नहीं आयेगी।'

रात !

यह रात कितनी साफ़ सुथरी है, जैसे अभी अभी लान्ड्री से धुलकर आयी है; इसके काले लबादे से कैसी हल्की हल्की खुशबू की लपटें आ रही हैं। शमशाद ने सिर्फ़ एक हल्की सी रोशनी रहने दी, फिर उस पर भी सिल्क का एक रूमाल डाल दिया; अब रोशनी ज़ोर से छनती आ रही थी, इशरत को मानों नींद सी आने लगी। शमशाद ने रेडियोग्राम पर पश्चिमी नाच की एक धीमी गत छेड़ दी।

फिर गीत खत्म हो गया, जादू टूट गया। शमशाद राज को अपने शयनागार में ले गयी, बाहर कमरे में सिर्फ़ इशरत और गुलाबदास रह गये।

दोनों हौले हौले व्हिस्की पीते रहे; गुलाबदास के चेहरे पर एक अजीब व्यंग्य की

मुस्कराहट थी, इशरत की आँखें नशे से लाल थीं। दोनों हौले हौले चुपचाप व्हिस्की पीते रहे; ऐसे क्षणों में कुछ कहना बेकार होता है।

थोड़ी देर के बाद शमशाद अपने शयनागार से बाहर आयी; मगर राज उसके साथ बाहर नहीं आयी। शमशाद उन दोनों के सामने आ के बैठ गयी; उसका गिलास खाली था। इशरत ने उसके लिए गिलास बनाया।

शमशाद ने एक घूँट पी के कहा—"राज आपको अन्दर बुलाती है;" इशरत गिलास हाथ में थामे उठा और शमशाद के शयनागार में चला गया। फ़र्ज फ़र्ज है—मौत की तरह अटल!

राज एक बेड पर आधी लेटी आधी बैठी अपनी खूबसूरत रंग की साड़ी के पल्लू से खेल रही थी; इशरत उसके क़रीब आके बैठ गया। राज ने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया, उसके हाथ में माणक की एक खूबसूरत अँगूठी चमक रही थी, जो इशरत ने इससे पहले न देखी थी।

"यह अँगूठी?" इशरत ने पूछा।

"शमशाद ने मुझे दी है, दी नहीं है; मुझसे बदल ली है, मैंने उसकी अँगूठी और उसने मेरी अँगूठी पहन ली है, आज से हम दोनों बहने बन गयी हैं, पहले हम सहेली थीं; मगर आज से बहनें हैं।"

"मुबारक़ हो!"

कुछ समय तक चुप्पी रही; राज फिर अपनी साड़ी के पल्लू से खेलने लगी, आख़िर बोली—"शमशाद चाहती है।"

"क्या मतलब?" इशरत के मुँह से सहसा निकला।

"बस आज भर तुम उसके यहाँ रह जाओ।"

"तुम्हारा मतलब है," इशरत ने बड़ी हैरत से पूछा—"कि जिस तरह तुमने अँगूठी बदल ली है; उसी तरह?"

"हाँ!" राज ने मुस्करा के कहा—"मैं गुलाबदास के साथ जाऊँगी; तुम यहाँ रहोगे।"

"मगर मैं कौन हूँ; क्या हूँ, तुम—यह—कैसे?"

गुस्से के मारे इशरत के मुँह से कुछ और न निकला।

यह सच है; कि इशरत ने राज से शादी न की थी, फिर भी वह उसी तरह रहता था; जैसा कि वह अपनी बीवी के साथ रहता हो, वह उसी तरह उसका वफ़ादार था। दिल से, आत्मा से और हालत से भी। किसी तरह से भी उसने किसी दूसरे तरीक़े से न सोचा था। वह चाहता तो इधर-उधर जा सकता था; जैसे कि उसकी स्थिति में दूसरे लोग करते थे और उसे हर्गिज़ बुरा नहीं समझते थे; मगर

इस क़दर गिरकर, नीचे उतरकर इस गन्दगी का एक हिस्सा बनकर भी वह इस तरफ़ न गया था। वह कमज़ोर था, बुरा था, नीच था; यह सच है कि वह राज से दिली मुहब्बत न करता था, वह ख़ुद हीरो बनकर उससे छुटकारा पाना चाहता था। मगर कुछ अरसे से उसने हीरो बनने का सपना भी देखना बन्द कर दिया था, कुछ अरसे से वह अपनी क़िस्मत के भरोसे रहने लग गया था।

राज ने उसके सपने पूरे न किये थे फिर भी वह ख़राब न था। उस वक़्त जब राज ने उसके सामने यह बात रखी; तो कहीं किसी कोने में खड़ी हुई सज्जनता के दो आँसू उसकी आँखों में खिसक आये।

राज ने उसके गले में बाहें डाल के कहा—"देखो मैं अपनी बहन को ज़रा सी बात के लिए कैसे नाराज़ कर सकती हूँ ?"

इशरत इतना मूर्ख तो न था; कि कुछ न समझ सकता।

एक चीरते हुए क्षण ने उसके आसपास के खोल को बीच में से टुकड़े टुकड़े कर दिया था। एक क्षण के लिए असलियत उसके सामने आ गयी थी, एक क्षण में मानो राज ने अपने बढ़े हुए पालिश किये हुए नाख़ूनों से उसकी आत्मा के लबादे को तार तार कर दिया था; और जब वह अपने आपको इस तरह देखने लगा तो उसे अपने अस्तित्व से घृणा हो गयी। वह किस लिए आया था; किन अरमानों लालसाओं को लेकर बम्बई में आया था। उसने किस तरह संघर्ष को ख़त्म करने के लिए एक छोटा आरामदेह रास्ता ढूंढ़ लिया था। एक क्षण के लिए उसे लगा कि संघर्ष का कोई आरामदेह छोटा रास्ता नहीं है; बल्कि कभी कभी इतना लम्बा होता है कि टाँगें तो टाँगें आंखें उसे देखते हुए थक जाती हैं।

मगर सिर्फ़ एक क्षण के लिए उसने सोचा—दूसरे क्षण उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं—एक रात ! वैसे हर रात कितनी सुन्दर है, कितनी नरम और गुदगुदी मीठी मीठी बातें करती हुई ! सो जाओ, सो जाओ, ज़िन्दगी नाम है सो जाने का। नींद लाने वाले हल्के हल्के संगीत को सुनने का। अपने आप को खो देने का, एक नई पुकार सुनने का....आज तो सो जाओ; कल कल देखा जायगा। यह रात गुज़र जाने दो; कल से वह फिर ज़िन्दगी का जेहाद शुरू करेगा ; वह राज को व शमशाद को और इसी क़िस्म की बेहद ऊँची और बेहद नीची स्थितियों को हमेशा के लिए ख़त्म कर देखा। फिर से ज़िन्दगी का एक नया अध्याय शुरू करेगा।

मगर आज तो सो जाओ; कल देखा जायेगा ! बस एक रात !!

यकायक इशरत को मार्फ़िया के इन्जेक्शन की सख्त ज़रूरत महसूस हुई।

जब आदमी मुहब्बत नहीं करता है; तो वह अपनी ज़िन्दगी में परिवर्तन चाहता रहता है। राज का ख्याल था वह इशरत से बेहद मुहब्बत करती है, लेकिन जब

शमशाद ने उसके सामने यह सवाल रख दिया; तो राज को फैसला करने में एव मिनट नहीं लगा। किसी तरह की उदासी, घुटन व दुःख जो उसे इस मौक़े पर होना चाहिए था उसने कुछ भी अनुभव न किया, इस बात पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, दूसरे क्षण उसके सारे शरीर में सनसनी सी दौड़ गयी। तभी उसने बिल्कुल नई निगाहों से गुलाबदास की तरफ़ देखा और बेपनाह लहरें उसकी रगों में दौड़ती चली गयीं। कितना थ्रिल था!

मोटर गुलाबदास और राज को लिए हुए जुहू की टेढ़ी-मेढ़ी सड़क पर दौड़ने लगी।

× × ×

मगर जब एक दिन बीत गया, दूसरा दिन भी गया और इशरत वापस न आया; तो राज को परेशानी हुई, उसने शमशाद को टेलीफ़ोन किया—

"क्या बात है; इशरत की तबियत तो ठीक है?"

"हाँ बिल्कुल ठीक है।"

"तो फिर वह आया क्यों नहीं?"

"यूँ ही।" शमशाद हँसी।

"यूँ ही क्या?" राज ने ज़रा नाराज़ होके पूछा।

"मैंने सोचा क्यों न वह हफ़्ते भर के लिए यहाँ ठहर जाये? इसमें हर्ज़ ही क्या है?"

"हफ़्ते भर के लिए?" राज टेलीफ़ोन पर चीखी।

"चिल्लाओ नहीं बहन!" शमशाद ने टेलीफ़ोन पर राज को सलाह दी—"इशरत का भी यही ख़्याल है।"

"यही ख़्याल है?" राज ने गुस्से में दोहराया, "सुनो शमशाद तुम वहीं ठहरो मैं अभी आती हूँ।"

"मगर—" शमशाद बोली।

मगर राज ने टेलीफ़ोन बन्द कर दिया था और अब वह अपने कमरे में जो ज़ोर से चीख़ रही थी।

"अभिमन्यु, शंकर, चाचा दामोदर तुम सब कहाँ मर गये?"

थोड़ी देर में ख़ान्दान के आठ-दस लोग और पाँच-छः नौकर और नौकरानियाँ राज के आसपास इकट्ठे हो गये। राज ऐसी मालूम होती थी, जैसे गुस्से में बावली हो रही है।

उसने पाँव फ़र्श पर ज़ोर से मार-मार कह कहा—

"जल्दी से गाड़ी निकालो सुअर के बच्चों!"

जब गाड़ी माहिम के काजवे पर से गुजर गयी तो राज ने फिर पाँव पटक कर अपने पति शंकर से कहा—

"गाड़ी तेज़ क्यों नहीं चलाते ?"

"चालान हो जायेगा।"

"हो जाने दो।"

"कोई आदमी नीचे आ जायेगा ?"

"आ जाने दो, मगर गाड़ी तेज़ चलाओ।"

२३

दादी अम्मा

ये दो दिन दादी अम्मा के लिए बड़ी मुसीबत के दिन थे, अपनी पोती को कैसे समझाए कि गुलाबदास की बात और है; और इस निकम्मे, निखट्टू, नालायक, लोफ़र इशरत को घर में रखने की बात बिल्कुल ही और हो जाती है। फिर भी उसने बार-बार शमशाद को समझाया, मगर शमशाद तो ऐसे खुश थी; जैसे उसे कोई नया खिलौना मिल गया हो। वह अपने आप से बहुत खुश थी, उसने राज का हीरो मार लिया था, जैसे शतरंज में कोई प्यादा बादशाह को मारता है। वह जीती हुई बाज़ी को हारी हुई बाज़ी में क्यों बदलती ? और फिर इशरत ने रो-रो कर उसे बताया था कि किस तरह वह उसे चाहता है, शुरू ही से चाहता था; मगर हालत ने उसे ऐसा मजबूर कर दिया था कि राज के यहाँ रहते हुए वह मुहब्बत का शब्द मुँह पर नहीं ला सकता था। किस तरह इशरत ने उसके पाँव छू लिये थे; जैसे वह हिम्मत की देवी हो। और गुलाबदास कैसे अकड़ के उससे बात करता था; वह उसके रुपये और जवाहरात की भूखी नहीं थी। वह महीने में खुद सत्तर-अस्सी हज़ार कमाती थी।

गुलाबदास कैसे उस पर हुक्म चलाता था, जैसे शमशाद हिन्दुस्तान की अव्वल दर्जे की हिरोइन न हो; उस की खरीद की हुई जागीर हो। लफंगा ! अब वह उसे मज़ा चखा देगी।

लेकिन राज के आने से वह डर भी रही थी, बड़ी तेज़ है; जाने क्या-क्या कहेगी ? मुझसे तो बात भी नहीं की जायेगी; और वह तो एक मिनट में मुझे हज़ार गालियाँ सुना देगी।

और राज की हालत; जब वह शमशाद के घर पहुँची, तो यह थी कि अगर

उस वक्त, शमशाद की खुशक़िस्मती से उसकी दादी अम्मा ड्राइंगरूम में बैठी न होती तो वह शमशाद से बात करने के लिए जबान के बजाय चप्पल से काम लेती, इस क़दर उसे गुस्सा था। उसका प्रेमी और कोई दूसरा ले जाये ! राज की अंतर-ज्वाला अब पूरी तरह से जाग चुकी थी। वह इशरत को बाजू से पकड़ कर अपने घर ले जायेगी; मैं भी देखूँगी मेरी चीज़ कौन मुझसे छीन सकता है ? वाह ! एक दिन में ही आप मालिक भी बन बैठीं। मालूम होता है सभ्यता दुनिया में रह ही नहीं गयी है !

राज इसी तरह जलती भुनती, कुढ़ती कोसती हुई जब ड्राइंगरूम में आयी; तो दादी-अम्मा उसे देखते ही उसकी बलाएँ लेने लगी; और उसे गले से लगाकर रोने लगी। दादी अम्मा बड़ी ही एक नम्बर की कुटनी और ढोंग रच कर अपना काम निकालने वाली थी। ज़माने ने उसे और उसने ज़माने को बहुत अच्छी तरह से देखा था। वह तो आदमी को एक नजर से देख कर बता देती कि इस वक्त उसके दिल में क्या है। शमशाद राज के आने से घबराई हुई थी; राज गुस्से से अपने होश व हवास में न थी। दादी अम्मा के दिमाग़ में यह बात बिल्कुल साफ़ थी; लड़ाई का नक़शा उसने अपने सामने दिमाग़ में बिछा लिया था और वह उसके मुताबिक़ काम करने लगी। कुछ भी हो जाये; इशरत को वापस राज के यहाँ जाना ही पड़ेगा। कहाँ इशरत, कहाँ गुलाबदास ? ऐसा अमीर पूंजीपति सेठ अब कहाँ मिलेगा ? शमशाद की अक़्ल पर तो पर्दे पड़ गये थे, मगर दादी अम्मा ने दुनिया अच्छी तरह से देख रखी थी। वह जानती थी कि इस दुनिया में कोई मुहब्बत नहीं करता है, लोग मुहब्बत से खेलते हैं; जैसे-हाकी से, फुटबाल से खेला जाता है। इस खेल के भी नियम होते हैं शमशाद उन नियमों की अवहेलना कर रही थी। शमशाद को होश में लाना ही पड़ेगा, सच्ची मुहब्बत में लाखों की कमाई कैसे हो सकती है ? उम्दा से उम्दा फ़्लैट कैसे खरीदे जा सकते हैं ? आदमी को मुहब्बत नहीं करनी चाहिए, मुहब्बत से खेलना चाहिए। मुहब्बत का खेल बहुत उम्दा है, दिल का रोग बहुत बुरा है। और शमशाद बड़ी भावुक लड़की थी, इशरत के आँसुओं ने उसे मोह लिया था। दादी-अम्मा जानती थी; मगर शमशाद नहीं जानती थी कि इशरत का खेल क्या है ? वह अपना खेल खेल रहा था। दादी अम्मा एक होशियार खिलाड़ी की तरह उसे नापसन्द नहीं करती थी, वह अगर इशरत की हालत में होती तो शायद यही करती, उसकी बुद्धि में इशरत के लिए तारीफ़ के कई पहलू निकलते थे, मगर उसने उन दो दिनों में इशरत पर बिल्कुल कुछ ज़ाहिर नहीं होने दिया, उसने उससे बात भी नहीं की, उसका सलाम भी स्वीकार नहीं किया, बहुत बुरी

बात थी ! लड़का हसीन था, गुणी था, मुसलमान था, अच्छे घराने का था; अगर अमीर होता तो दादी अम्मा को कोई आपत्ति भी न होती; मगर !

दादी अम्मा ने पहले तो राज की बलाएँ लीं, फिर रोने लगी, फिर आँसू पोंछ कर कहने लगी—"यह (शमशाद की तरफ़ इशारा करके) तो पगली है, इसे क्या मालूम कि तुम दोनों सहेलियों की छः साल की दोस्ती और बहनापा क्या एक मरदुए के लिए क़ुर्बान किया जा सकता है ?"

"इसी बात पर मुझे भी हैरत हुई अम्मा !" राज दादी अम्मा को अपने पक्ष का पाके बहुत ख़ुश हुई; उसके बोलने का ढंग भी बदल गया, "हमारी दोस्ती पर तो सारी फ़िल्म इन्डस्ट्री डाह करती थी, सगी बहनों से भी ज़्यादा हमारी मुहब्बत थी, सदा का साथ उठना-बैठना, खाना-पीना, सब इकट्ठा, और अब यह यकायक...." राज ने शिकायत भरी निगाहों से शमशाद की तरफ़ देखा।

शमशाद की निगाहों में आँसू भर आये, वह बोली—"मैं कब कहती हूँ तुम्हारी सहेली नहीं हूँ।"

"इशरत कहां है ?" राज ने शमशाद से डपट के पूछा।

"अन्दर बेडरूम में है।" शमशाद ने ज़रा घबरा के कहा।

"उसे रहने दो," दादी अम्मा ने बड़े मीठे स्वर में कहा—"हमारी आपस की बातचीत में उसे शामिल करना मुझे ठीक नहीं मालूम होता, जो फ़ैसला करेंगे वह हम लोग आपस में बातचीत करके तय कर लेंगे; उसे बीच में बोलने का क्या हक़ है।"

"बिल्कुल ठीक है।" राज बोली। "तू तो उसके लिए मुझे छोड़ देगी ?" राज ने शमशाद से पूछा।

शमशाद ने कहा—"यह मैंने कब कहा है, मैंने टेलीफ़ोन पर यही कहा था कि एक दिन और एक हफ़्ते में क्या फ़र्क़ है, यूँ पलक झपकते में गुज़र जायगा।"

"मगर मुझे मंज़ूर नहीं है।" राज ज़रा सख़्ती से बोली।

"और मुझे भी।" दादी अम्मा ने कहा।

शमशाद ने रुआसी होके कहा—"मगर मैं ज़बान दे चुकी हूँ।"

राज ने बेडरूम की तरफ़ इशारा किया। "उस सुअर को मेरे सामने लाओ।" राज ग़ुस्से से सोफ़े पर से उठते हुए बोली; मगर दादी अम्मा ने हाथ पकड़ कर उसे वापस बुला लिया।

"उस पर ग़ुस्सा न करो, ये मरदुए होते ही ऐसे हैं। इशरत की बात जाने दो राज ! ये हमारे आपस की बात है।"

शमशाद ने सिर हिलाया, "हाँ यह हमारे आपस की बात है।"

"तो इशरत को मेरे हवाले कर दो बस।"

"मगर मै वायदा कर चुकी हूँ, और फिर मुझे उससे मुहब्बत भी हो गयी है।"

"मगर तुम तो हालीवुड के—?" राज ने अधूरी बात की।

"हाँ ! मगर इशरत भी चलेगा।" शमशाद आँखों में आँसू ला के बोली।

"मुहब्बत वग़ैरह कुछ नहीं होती इसे।" दादी अम्मा ने राज से कहा—"बस किसी वक्त मेरी तरह की ज़िद आ जाती है। इसे, मैं तो इसे खूब जानती हूँ अच्छी तरह से—लो, अब दोनों सहेलियां गले मिल जाओ....मिल जाओ....मिल जाओ !!"

दादी अम्मा ने राज और शमशाद दोनों को पकड़ कर एक-दूसरे के गले से लगा दिया।

गले लगते ही दोनों सहेलियाँ खूब फूट-फूट कर रोईं, एक-दूसरे के आँसू पोंछने लगीं, एक-दूसरे से प्यार करने लगीं।

रोते-रोते शमशाद ने कहा—"मैंने तेरे साथ बड़ा धोखा किया; हाय ! अपनी सहेली के साथ धोखा किया।"

राज सिसकते हुए बोली—"तू तो मेरी जान है। शम्मू ! मैं तो इशरत के वग़ैर रह सकती हूँ; मगर तेरे वग़ैर नहीं।"

शमशाद ने एक सिगरेट सुलगा के राज के मुँह में रखा, बोली—"ले जा, ले जा, तू अब इशरत को ले जा।"

राज शमशाद की बलाएँ लेके बोली—"नहीं बहना ! तुझे अगर अच्छा लगता है तो तू रख ले; मै क्या इतनी गयी गुज़री हूँ कि अपनी सहेली के लिए ज़रा सी क़ुर्बानी भी न दे सकूं।"

"नहीं ले जा !"

"नहीं रख ले।"

"नही ले जा।"

"नही रख ले।"

बराबर की चोट थी; दोनो हिरोइनें इस वक्त खुले दिल के मोड़ में थीं, और एक-दूसरे को मुहब्बत जताने के सिलसिले में कोई किसी से मात खाने के लिए तैयार न थी। यकायक दादी अम्मा ने कहा—"मेरा फैसला है" दादी अम्मा यह कह कर रुक गयी, राज और शमशाद सिगरेट पीती हुई दादी अम्मा के मुँह की तरफ ताकने लगीं।

दादी अम्मा ने कहा—"मेरा फसला यह है कि इशरत न राज के पास रहे न शमशाद के पास, बल्कि इस हफ़्ते वह रंजना के पास रहेगा, एक हफ़्ते के बाद राज उसे अपने पास बुला लेगी इस तरह से शमशाद का वायदा भी पूरा हो जायेगा

कि उसने एक हफ़्ते तक इशरत को राज के पास न भेजा और राज की बात भी पूरी हो जायेगी कि इशरत यहां शमशाद के घर न रहा।"

दोनों हिरोइनें ख़ुशी से ताली बजा के बोलीं—"वाह! वाह! क्या अच्छी तरकीब ढूंढ़ निकाली है तुमने दादी अम्मा।"

राज और शमशाद दोनों दादी अम्मा से लिपट गयीं।

थोड़ी देर के बाद राज ने मुंह लटका के कहा—

"मगर रंजना का अपना भी तो—?"

"वह पूना गया हुआ है।" दादी अम्मा को फ़िल्म इन्डस्ट्री से पूरी जानकारी थी।

"मगर वह मान जायेगी क्या?" शमशाद ने शक ज़ाहिर करते हुए कहा।

"वह तुम मुझ पर छोड़ दो; इशरत को और रंजना को सम्भालना मेरा काम है। मैं अभी रंजना को टेलीफ़ोन करती हूँ।"

थोड़ी देर के बाद दादी अम्मा ने इशरत का सूटकेस बन्द करके उसे रंजना के हवाले कर दिया। उससे पहले ही वह राज को कह चुकी थी चुपके से कि वह रंजना के आने से पहले ही शमशाद को अपने घर ले जाये या कहीं घुमाने ले जाये, ताकि बातचीत में आसानी रहे। इसलिए जब रंजना इशरत को ले के गयी; उस वक़्त घर में दादी अम्मा के सिवा और कोई न था। इशरत से न राज मिली न शमशाद। इशरत के पाँव तले जितनी ज़मीन थी वह सब दादी अम्मा ने खिसका दी। इशरत को सहारा लेने की आदत पड़ गयी थी; उसने रंजना का हाथ पकड़ लिया। रंजना का अपना दोस्त पन्द्रह बीस-रोज़ के लिए पूने गया हुआ था, जब उसे दादी अम्मा ने बताया कि इशरत और राज की आपस में चल गयी है; तो उसने इस मौक़े से फ़ायदा उठाना उचित समझा, और फिर इशरत कितना हसीन था। कई दफ़ा पार्टियों में रंजना ने राज के साथ उसे देखा था; एक यूनानी देवता की तरह, मज़बूत और गठा हुआ। उसने कभी रंजना की तरफ़ आँख उठा के देखा भी न था; इसलिए अब—अब—?

रंजना के होठों पर संतोष और प्रतिशोध की मुस्कराहट आयी; उसने इशरत की तरफ़ हाथ बढ़ा के कहा—"आओ!"

मगर जब वह इशरत को ले के अपने घर पहुँची तो उसकी नौकरानी ने उसे बताया कि उसके जाने के बाद पूने से ट्रंक-कॉल आया था; उसका दोस्त आज रात की गाड़ी से वापस आ रहा था। नौकरानी ने टेलीफ़ोन का संदेश ले लिया था।

अब रंजना क्या करे, पसीना उसके माथे से छूटने लगा, रंजना का दोस्त बड़ा ज़ालिम था, वह उससे बहुत डरती थी—रंजना ने इशरत को बताया।

इशरत ने कहा—"आने दो, साले का सर फोड़ के रख दूँगा।"

"ना, ना, भैया!" रंजना बड़ी डरपोक थी, डर के बोली—"मुझे कोई लड़ाई-झगड़ा नहीं चाहिए; मुझे बहुत अफ़सोस है, मगर तुम अब यहाँ नहीं रह सकते।"

इशरत चुप हो गया, अब वह कहाँ जाये? रंजना ने राज को टेलीफ़ोन किया, "राज," रंजना ने झूठ बोलते हुए कहा—"तुम्हारा इशरत शायद तुमसे लड़कर यहाँ आ गया है; अपना सूटकेस उठाए हुए, मगर मैं डार्लिंग, इसे अपने पास कैसे रख सकती हूँ, सुनती हो?"

"हाँ, हाँ सुनती हूँ।" राज जो सारी घटना से वाकिफ़ थी, अनजान बन के के बोली।

"तो बहना तुम उसे आ के ले जाओ।"

"ऐसी भी क्या जल्दी है? आज ही तो हमारी लड़ाई हुई है, उसे हफ़्ता भर अपने पास रखो, मैं आके ले जाऊँगी, और तुम भी तो आजकल....."

"नहीं, नहीं!" रंजना चिल्ला के बोली—"वह आज शाम को आने वाले हैं; बहना मैं बाज़ आयी, तुम आके इसे अभी ले जाओ।"

इस वक़्त शमशाद और राज दोनों राज के घर सोफ़े में धँसी बैठी थीं—बल्कि अर्द्ध-लेटी हालत में, एक-दूसरे के गले में बाहें डाले, लेटी थीं। जब यह टेलीफ़ोन आया, राज ने बड़ी अनिच्छा से कहा—"उसे भेज दो।"

"कहाँ भेजूँ?"

"जहाँ उसका जी चाहे।" इतना कहकर राज ने टेलीफ़ोन रख दिया; मगर, मगर फिर फ़ौरन ही टेलीफ़ोन की घण्टी बजी, यह इशरत बोल रहा था—"राज मैं आ जाऊँ?" इशरत ने बड़ी मुश्किल से कहा।

"नहीं!"

"तो फिर मैं कहाँ जाऊँ?" इशरत ने बड़ी मायूसी से पूछा।

"जहन्नुम में जाओ!"

राज ने टेलीफ़ोन रख दिया, यकायक उसे महसूस हुआ कि वह एक अरसा हुआ, इशरत से उकता चुकी थी; वह उसे ज़रा भी न चाहती थी, उसके दिल में और दिमाग़ में मुहब्बत तो क्या, अफ़सोस का एक क़तरा तक न था।

इशरत ने अपना सूटकेस उठाया, ड्राइंग रूम से बाहर बरामदे में आया, बरामदे से पोर्च में आया, पोर्च से बाहर सड़क पर आया: सड़क सुनसान थी, अंध-

कार गहरा था, वह देर तक चलता रहा, आज उसके आस-पास कोई दूरी न थी, कोई मंज़िल न थी। और जब रास्ते में राहगीरों ने उसे देखा तो डर के मारे पीछे हट गये; क्योंकि आज इमरत के पास कोई चेहरा भी न था, आज वह मौत की तरह चल रहा था।

२४

स्नेहमयी बहन

कितने ही हफ़्ते गुज़र गये, अकरम को कोई ऐसा काम न मिला, जिसे वह अपनी आत्मा को परेशान किये बिना कर सकता। यह आत्मा, यह चीज़ उसके लिए इतनी दुःखदायी क्यों है? बहुत से लोग अक्सर इस फ़िल्म इन्डस्ट्री में इस तरह घूमते थे जैसे उन्होंने अपेण्डीसाइटेस की तरह अपनी आत्मा को भी आप्रेशन करके निकलवा दिया हो। और कोई दूसरा तरीक़ा था नहीं कि वह उनके रोज़ के चलन को समझ सकता। वह खुद भी क्यों नहीं अपनी आत्मा का आप्रेशन करवा लेता? ऐसे तो वह भूखों मर जायेगा।

और अब तक वह भूखा मर गया होता, अगर वह अपनी बहन के यहाँ न रहता होता। रशीदा किसी तरह सत्तर रुपए में पूरे घर को चलाती थी। उसे खुद बड़ी हैरत होती थी। यह ग़नीमत है कि अब रशीदा के दोनों बड़े लड़के अख़बार बेचने का काम करते थे; और महीने में पन्द्रह बीस रुपये वे भी पीट लेते थे; मगर ज़िन्दगी बिल्कुल जैसे मौत की सीमाओं को छूकर गुज़रती थी। इस ज़िन्दगी की कैसी तेज़ धार है; ज़रा लगा चूकी, पैर फ़िसला! कुछ महीने की बीमारी या कुछ महीने की बेकारी और आदमी ग़ायब!

परेल में आज दीवाली की बहार थी, बल्बों की जगमगाती पंक्ति, आसमान पर फुलझड़ियों की उड़ती हुई धार, अनारों की बहार और उछलते कूदते, पटाख़े छोड़ते हुए बच्चों की चीख़ व पुकार देखने जैसी थी; उसे दीवाली बहुत पसन्द थी; मगर आज तो एक मोमबत्ती ख़रीदने के लिए उसकी जेब में पैसे न थे। नदीम एक अरसे से बीमार था; खाँसी और बुख़ार, जो जाते ही न थे। डाक्टर ने बहुत से इन्जेक्शन और दवाइयाँ बतायी थीं; और रशीदा कई दिनों से अकरम से कह रही थी, कभी किसी बात से, कभी एक इशारे से, क्योंकि वह बहुत कम बोलती थी, लड़कर अपने भाई से न कह सकती थी। उसे ज़िन्दगी से लड़ना खूब आता था, मगर वह अपने भाई से इस तरह न लड़ सकती थी। नदीम को बहुत तेज़ बुख़ार था, और वह बुख़ार

में सुबह से अण्ट-सण्ट बक रहा था। डाक्टर का पिछला बिल पचास रुपये का हो गया था, इसलिए रशीदा की हिम्मत न पड़ती थी कि डाक्टर को बुलाये, और फिर जो दवाइयाँ और इन्जेक्शन उसने लिख के दिये थे वह कहाँ से लायेगी ? मुमकिन है डाक्टर किसी तरह से आ जाये, मगर सिर्फ़ डाक्टर आ जाने से तो उसका लड़का अच्छा नहीं हो सकता, उसके लिए दवा भी तो चाहिए। अकरम भी बहुत कुछ समझता था, मगर बेबस था। इतने दिनों वह कोशिश करता रहा; मगर कहीं से उसे काम न मिला, न कोई रक़म उधार ही मिली।

× × × ×

आज दीवाली के दिन सेठ बांकड़िया ने उसे कुछ रक़म देने का वादा किया था; और उसे यह भी कहा था कि वह बहुत जल्द कोई उसके ढंग की तस्वीर शुरू करने वाला है, जो अकरम खुशी से डाइरेक्ट कर सकेगा।

अकरम बहुत खुश हुआ था। सेठ बांकड़िया ने दीवाली की खुशी में सारे स्टाफ़ को बोनस बांटा था और शाम के वक़्त कुछ खास-खास लोगों को अपने आफ़िस में व्हिस्की पीने के लिए बुलाया था; अकरम भी उन्हीं लोगों में से था। सेठ बांकड़िया का अपना पुराना गैंग था। सेठ भगतलाल, चोरघड़े, जोशी जी, मैडम, राज, शमशाद, सेठ कुत्तरचन्द, बजनदत्त और डान्समास्टर बाबू।

देर तक व्हिस्की चलती रही, देर तक रात बहती रही, देर तक निगाहों में निगाहें उड़ती रहीं—एक भिनभिनाती हुई मक्खी की तरह, वह इस गाल से उस गाल और इस प्याले से उस प्याले और इस आँख से उस आँख तक उड़ती रही। अकरम बराबर पीता रहा, ज़रूरत से ज़्यादा पीता रहा; पीने से ज़्यादा बहकता रहा; मगर ऊपर से नहीं अन्दर ही अन्दर बहकता रहा। उसके दिल में एक समुद्र था, एक किनारा था, किनारे पर नंगे शरीर थे। किसी ने रेत पर वायलीन रख दी। वायलीन के तारों से सौ-सौ के नोट उड़कर लटकते थे, और उन शरीरों पर चिपक जाते थे, यहाँ तक कि वह शरीर उन नोटों से बिल्कुल छुप गये, फिर वह नोट ऊपर उठते-उठते एक मेज़ बन गये। मेज़ के ऊपर चन्द हाथ ताश खेलने लगे, ताश में कोई बेगम, बादशाह या इक्का न था। हर ताश के पत्ते हर तरह से लोगों की तक़दीरें थीं। कोई फावड़ा चला रहा था, कोई सड़क कूट रहा था, कोई एन्जिन चला रहा था कोई कपड़ा बुन रहा था, कोई कपड़े सी रहा था, कोई सेट बना रहा था, कोई पूल उगा रहा था, किसी के हाथों में हथकड़ी थी, किसी की आँखें गायब थीं, कोई अस्पताल में पड़ा चीख रहा था, कोई मरघट को जा रहा था।

मगर जो खेलनेवाले हाथ थे, वह बड़े ख़ूबसूरत हाथ थे और दौलत भी लिये हुए थे। किसी उंगली में दो तोले सोने की मर्दानी अँगूठी में मंगल का लाल पत्थर

था, किसी की कलाई में सोने की जन्ज़ीर थी या हीरों का कंगन था; किसी की—छंगुलिया में हीरों से जड़ी हुई अँगूठी थी; जिसके बीच में एक घड़ी टँकी हुई थी।

वे हाथ ताश को उठाये, ज़ोर से मेज़ पर रखते—

कट !

डील !

चलो !

पत्ते इधर से उधर फेंके जाते, और कोई अस्पताल चला जाता, कोई पागलखाने, कोई मरघट को, कोई कारखाने को, और कोई डाकखाने को। कोई पत्ता सड़क पर खड़ा होके भीख माँगने लगता, फिर कभी कोई खूबसूरत अँगूठियों से सजा हुआ हाथ उसे उठाकर एक क़ब्र में डाल देता, और फिर हँसकर अपने साथी से कहता—"मेरे पास एक जोकर आ गया है !"

अकरम ने बहुत पी ली थी, उसने अपना सिर हिलाया, अपनी आँखें झपकीं; जब उसे होश आया तो उसने देखा कि वह सेठ के दफ़्तर में अकेला है, उसके सामने जोशी जी का असिस्टेन्ट भट्टाचारिया बैठा हुआ उसकी तरफ़ ताक रहा है।

"मैं कहाँ हूँ ?" अकरम ने पूछा !

"सेठ के दफ़्तर में।" भट्टाचारिया ने जवाब दिया।

"सेठ कहां हैं ?"

'बिहार झील पर।"

"मगर मुझे उनसे.....उन्होंने मुझसे वायदा....." अकरम चुप हो गया। उसने उठने की कोशिश की; मगर उसकी टाँगों ने जवाब दे दिया। भट्टा ने अपनी जगह से उठ के उसे सहारा दिया; जब कहीं वह चलने के क़ाबिल हुआ। बाहर आके भट्टा ने कहा—"मेरी वजह से आज आप की दीवाली हराम हो गयी; आप इतना क्यों पी लेते हैं ?"

"क्यों कि इस खूनी ताश का खेल मुझसे देखा नहीं जाता।"

"तो मत देखिए।"

"आँखें कैसे बन्द कर लूं ?"

भट्टा ने बुरा सा मुँह बना के कहा—"जोशी जी कह गये थे बस आपको घर पहुँचा दूं। अब बारह बज चुके हैं और मुझे....."

"तुम रहने दो," अकरम ने कहा—"मैं खुद घर चला जाऊँगा।"

"सच ?"

"सच !"

× × ×

भट्टा अकरम को छोड़ कर चला गया, परेल से गुज़रते हुए अकरम ने सोचा—"आज वह फिर खाली हाथ अपनी बहन के घर जा रहा है, आज वह फिर क्या कहेगा उसे, क्या कहेगा उसे, क्या कहेगा.....?"

मगर रशीदा बहुत कुछ जानती थी; न सिर्फ़ अपने भाई को बल्कि अपने भाई के आसपास की ज़िन्दगी को। उसे इतना कुछ मालूम था कि वह चुप रहती थी। बहुत से लोग कुछ नहीं कहते और सब कुछ जानते हैं, उनकी चुप्पी नासमझी की नहीं होती, दर्द और मुसीबत ओर ज़िन्दगी की गहरी समझ का इज़हार होती है। उसने जब अपने भाई को इस तरह लड़खड़ाते हुए ज़ीने से ऊपर आते हुए देखा; उसके सुते हुए चेहरे पर की अधमुँदी आँखों को देखा तो वह चुप रह गयी।

अकरम नदीम के सिरहाने आके बैठ गया, जो कपड़ा ओढ़े सर मुँह ढांपे लेटा था। अकरम ने अपने बालों में उंगलियाँ फेर के बड़ी कटुता से कहा—"सेठ ने मुझे इतनी व्हिस्की पिला दी कि उससे बच्चे के लिए सारी दवाएँ और सारे इन्जेक्शन आ सकते थे; अगर उसने मुझे व्हिस्की पिला दी; रुपये नहीं दिये, रशीदा मैं क्या करूं ?"

रशीदा ने कोई जवाब नहीं दिया; उसने आहिस्ता से नदीम के सर पर से कपड़ा हटा दिया। नदीम की लाश पड़ी थी !

अकरम नदीम की तरफ़ देखता रहा, देखता रहा, देखता रहा, और उसके दिल में सिर्फ़ यही ख्याल आया कि अगर वह रशीदा के सर पर भार न होता, अगर वह ख़ुद कमाता होता, तो आज नदीम यूं न मरता ! वह रकम जो उसके खाने-पीने और रोज़ के ट्राम के किराये पर ख़र्च होती थी उसे रशीदा नदीम की बीमारी पर ख़र्च कर सकती थी। फिर भी रशीदा ने एक शब्द ज़बान से नहीं निकाला। एक रुपया, एक अठन्नी, एक चवन्नी, एक दुअन्नी कर-कर के रशीदा ने नदीम की सारी ज़िन्दगी अकरम पर ख़र्च कर दी। हर क्षण उसने नदीम को जाते हुए देखा; और एक दफ़ा भी उसने अकरम को इस घर में आते हुए नहीं रोका, कैसी यह उसकी बहन थी ? अकरम का सारा बदन सर से पांव तक कांप गया; कैसा वह उसका भाई था ? अगर किसी तरह से वह इस घर से चला गया होता, अगर उसने खाना न खाया होता, ट्राम और बस का किराया न लिया होता, तो आज नदीम ज़िन्दा होता। कभी न कभी तो रशीदा के सामने बिल्कुल साफ़ तौर पर यह तस्वीर आयी होगी, यह बात यानी एक तरफ़ अकरम है; दूसरी तरफ़ नदीम है !

हाय ! यह कैसी ज़िन्दगी है ? खुराक, किराया, बिजली, पानी जैसी चीज़ों से, फिर चीज़ों की तरफ़ वापस आना; और बीच में इन्सान को ग़ायब कर देना, इस तरह जैसे वह कभी था ही नहीं, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं था। जैसे चीज़ें इन्सान के लिए न हों; इन्सान चीज़ों के लिए ज़िन्दा हो।

यकायक अकरम की ज़बान पर नमक जैसा स्वाद आया, हाँ—यह एक आंसू था; जो उसके गाल से बहकर उसके होठों की राह से ज़बान पर आ गया था, मगर किस क़दर तीखा और नमकीन !

अकरम ने सख़्ती से उसे झिटक दिया, नदीम के सर पर चादर ओढ़ा दी और खद बाल्कोनी में जाके खड़ा हो गया।

दूसरे दिन जब वह और रशीदा, जैब और जमील नदीम को दफ़ना कर लौटे, तो अकरम ने अपना सूटकेस बन्द किया और अपना बिस्तर बाँधने लगा। उसकी बहन चुपचाप खड़ी देखती रही। बिस्तर बाँध कर अकरम ने हाथ में सूट केस उठा लिया, बिस्तर कँधे पर डाल लिया।

उसकी बहन ने उसे रोका नहीं, वह उसके साथ दर्वाज़े तक गयी, दोनों चुप थे।

मेरा भाई जा रहा है। कल मेरा बेटा गया, आज मेरा भाई जा रहा है, मैं उसे रोक न सकी, मैं इसे भी न रोक सकूंगी, रोकने के लिए भी इन्सान के पास कुछ चाहिए।

रशीदा ने सोचा—तुम्हारे पास अगर कुछ है, तो भाई भी कुछ है, वह एक सुन्दर भावना है, एक प्यारा नशा है, और अगर कुछ न हो तो भाई एक बहुत बुरी आदत है।

अकरम ने सोचा—कुछ हो, बहन एक फूल है, न हो तो एक आँसू है।

दोनों भाई-बहन चुपचाप दर्वाज़े तक गये; जब अकरम दर्वाज़े से बाहर निकलने लगा तो रशीदा ने उसे रोक कर उसके हाथ पर एक रुपया रख दिया और जल्दी से अन्दर आ के दर्वाज़ा बन्द कर लिया। अकरम ने बहुत कोशिश की कि वह आँसू रोक सके; मगर न रोक सका। वह वहीं बन्द दर्वाज़े के बाहर फूट-फूट कर रोने लगा। दर्वाज़े के इधर रशीदा रो रही थी; दोनों के बीच में ज़िन्दगी एक सफ़ेद क़फ़न की तरह खड़ी थी।

२५

"मैं शायर हूँ"

हार्नबीरोड के केन्द्रीय एम्प्लायमेन्ट एक्सचेंज के बाहर चनेवाले के पास अपना सूट केस और बिस्तर रखकर अकरम दफ़्तर में दाख़िल हुआ। अब उसने अपने दिल में फैसला कर लिया था कि वह फ़िल्म का काम नहीं करेगा; बल्कि कोई दूसरी नौकरी अपनायेगा, कोई छोटी-मोटी नौकरी जो उसे मिल जायेगी,

वह करेगा। यही सोच कर वह एम्प्लायमेन्ट एक्सचेंज में अर्ज़ी देने आया था। यहां एक क्लर्क उसका पहले से परिचित था; इसलिए काम आसानी से हो गया, नहीं तो जाने कितने दिन लगते एक अर्ज़ी देने में। क्लर्क उसे दफ़्तर के बड़े बाबू से मिला के केबिन में चला गया। बड़ा बाबू उन लोगों में से था; जिन्हें अपने अहम् का ज्ञान ज़रूरत से ज़्यादा होता है, और जिनसे शासन के सारे दफ़्तर भरे पड़े हुए हैं। बड़े बाबू ने अपने गंजे से सर पर हाथ फेरा, अपनी नेवले की सी मूंछों को संवारा, अपनी सफ़ेद क़मीज़ की काली टाई को ठीक किया और खांस कर कुर्सी की तरफ़ इशारा करते हुए कहा—"बैठ जाइये।" बड़े बाबू के स्वर से साफ़ ज़ाहिर होता था—तुम्हें इसलिए बुला लिया है कि तुम मेरे असिस्टेन्ट के पहचानवालों में से हो; नहीं तो.....

बड़े बाबू ने दो-चार फार्म निकाले और दो एक क्लिप उल्टे-सीधे किये और फिर मुँह उठा कर मेंढक की सी आवाज़ में कहा—"आपका नाम ?"

"अकरम !"

"बाप का ?"

"मुहम्मद लतीफ़ !"

"रहने वाले ?"

"नूरपुर।"

आ—हुम्—बड़े बाबू ज़रा खांसे, थोड़ा रुकने के बाद फिर बोले—उनके मेंढकानी स्वर में वह बात थी; जो कह रही थी—देखो अब तुम बुरे फँसे ! अब होगी तुमको मात !

"क्या काम करते हो ?"

"कोई काम करता तो यहाँ क्यों आता ?" अकरम ने जवाब दिया।

बड़े बाबू ज़रा चौंके; ज़रा गौर से उन्होंने अकरम की तरफ़ देखा; बोले—"मेरा मतलब है कौन हो तुम ? टाइपिस्ट हो, मैकनिक हो, ड्राइवर हो ?"

"मैं शायर हूँ।"अकरम ने जवाब दिया।

"शायर ?" बड़े बाबू चीखे "शायर का क्या मतलब ?"

"यह कि शायर हूँ, शायरी करता हूँ, जैसे लुहार हथौड़ी चलाता है, बढ़ई लकड़ी काटता है, ड्राइवर मोटर चलाता है, टाइपिस्ट टाइप करता है, उसी तरह शायर शेर कहता है।"

"मगर—मगर शायर का एम्प्लायमेन्ट एक्सचेंज में क्या काम ?"

"क्यों नहीं ! बेरोज़गार शायर हूँ, काम चाहता हूँ।"

बड़े बाबू ने सर हिला के कहा—"शायरी कोई काम नहीं है।"

"क्यों काम नहीं है ? बड़ी मेहनत, जानखपाई और दिमाग़ी काम है।"

"मेरा मतलब है—वह कोई ऐसा काम नहीं है जिससे समाज को फ़ायदा पहुँचता हो; जैसे बढ़ई है, मैकनिक है, टीचर है, क्लर्क है, इन्जीनियर है।"

"मैं भी एक इन्जीनियर हूँ आत्माओं का, एक टीचर हूँ सभ्यता का, एक मैकनिक हूँ समाज का, एक बढ़ई हूँ निर्माण का।"

बड़े बाबू ने सर हिला के इस तरह से कहा—जैसे किसी दीवाने से उनका पाला पड़ा हो, "मिस्टर अकरम ! अगर तुम मेरे असिस्टेन्ट के द्वारा न आये होते तो मैं तुम्हें अभी खड़े-खड़े निकलवा देता, तुम बेकार मेरा वक़्त बर्बाद कर रहे हो, मैं कह चुका हूँ, हमारे यहाँ शायरी की कोई ज़रूरत नहीं है। हां, अगर तुम इसके अलावा कोई और ढंग का काम चाहते हो तो बोलो, मैं अभी तुम्हारी अर्ज़ी लेने को तैयार हूँ।"

अकरम ने मेज़ पर मुक्का मार के कहा—"मैं शायर हूँ। मैं शायर होने के नाते इस मुल्क से अपनी रोज़ी पाने की मांग करता हूँ।"

"तो पड़े माँग करते रहो; हमें तुम्हारी ज़रूरत नहीं।"

"अगर ज़रूरत नहीं है, तो कालिदास का नाम क्यों लेते हो, टैगोर और ग़ालिब की टिकटें क्यों छापते हो, शेक्सपियर और प्रेमचन्द का नाम गर्व से क्यों लेते हो, टालस्टाय और गोर्की के सामने सर क्यों झुकाते हो ? तुम मुझे यह बताओ यह तुम्हारा समाज क्या है ? यानी जब तक ग़ालिब ज़िन्दा रहा, तुमने उसे भूखा मारा, जेल में सड़ाया; लेकिन जब वह मर गया, उसके बाद तुमने उसकी तस्वीर उठा के डाक के टिकटों पर छाप दी। अगर तुम्हें उसकी ज़रूरत नहीं थी, अगर उसने कोई अच्छा काम नहीं किया था, तो क्यों छापी, जवाब दो ?"

बड़ा बाबू कुर्सी से उठ खड़ा हुआ; उसने ज़ोर से घंटी बजाई, इतने ज़ोर से लगातार घण्टी बजाई कि एक के बजाय दो-तीन चपरासी और दो-एक क्लर्क अन्दर दौड़ते-दौड़ते आये।

बड़े बाबू ने अकरम की तरफ़ इशारा करते हुए कहा—"इसे बाहर निकाल दो।" फिर उसने अकरम से कहा—"ऐ !....मिस्टर ! पागलखाने में जाकर अपने दिमाग़ का इलाज कराओ; फिर यहाँ आना तुम्हारी अर्ज़ी ले लूंगा।"

जब वह दफ़्तर से बाहर निकला बल्कि निकाल दिया गया; तो अकरम को लगा कि उसने कैसी ग़लती की थी। वह गया था काम की खोज में, बेकार बड़े बाबू से उलझ बैठा; मगर अकरम ने सोचा—यह बात है, समझने के लिए, ग़ौर करने के लिए—यह शायरों और लेखकों वाली बात। आखिर हम लोग कहाँ जायें ?

अकरम ने इधर-उधर देखा, उसे वह चनेवाला कहीं नज़र न आया; जिसके पास वह अपना सूटकेस और बिस्तर रख गया था। उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई, बड़ी मुश्किल के बाद उसे चनेवाला, दो पुलिस के आदमियों से घिरा हुआ, सर पर चने की टोकरी और हाथ में सूटकेस और कन्धे पर बिस्तर उठाए जाता हुआ दिखाई दिया, अकरम भाग कर उनकी ओर गया और मोड़ पर उसे पकड़ लिया।

चनेवाले ने अकरम को देखकर बड़े इत्मीनान की साँस ली; बोला—"यह पुलिसवाले मुझे चोरी के अपराध में पकड़ के लिए जा रहे थे, मैंने लाख कहा—आप अन्दर गये हैं दफ़्तर में, मगर ये माने नहीं—बोले—चलो थाने। अब मैं थाने जा रहा हूँ, भगवान की कृपा से तुम आ गये; लो, सम्भालो अपना सूटकेस और बिस्तर और अब कान पकड़ता हूँ—आगे से किसी की मदद नहीं करूँगा, भलाई का ज़माना नहीं है बाबू!"

अकरम ने अपना सूटकेस और बिस्तर सम्भाला और दादर की तरफ़ हो गया। आज रात तक उसे रहने के लिए कहीं न कहीं जगह ढूंढनी पड़ेगी।

शाम के पाँच बजे वह लालबाग़ में था, लालबाग़ से वह पैदल परेल की तरफ़ रवाना हुआ। परेल पहुँचकर उसने फुटपाथ पर खड़े होकर सामने की बिल्डिंग की तरफ़ देखा, जिसके एक कमरे में उसकी बड़ी बहन रहती थी। उसके दिल में बड़ी तेज़ी से यह ख़्याल उभरा, क्यों न वह वापस चला जाये अपनी बड़ी बहन के पास, फिर उसने उसी तेज़ी से इस ख़्याल को अपने दिल में दबा दिया। नहीं, वह वापस नहीं जायेगा, अब वह आगे जायेगा, कहीं पर ख़ुद अपने लिए जगह तलाश करेगा। वह अपनी बहन की ग़रीब और लाचार ज़िन्दगी पर और ज़ुल्म नहीं तोड़ेगा।

हाँ, मगर यहाँ परेल के फुटपाथ पर खड़े-खड़े मानों उसकी टाँगें और उसकी हिम्मत—सब जवाब देने लगीं। 'जाओ, जाओ', कोई उसके दिल में कहने लगा, बार-बार कहने लगा, 'सामने की बिल्डिंग में चले जाओ, वहाँ एक कमरा है, एक बाल्कोनी है; बाल्कोनी में बिस्तर बिछा लो आराम से टाँगें पसार के सो जाओ। सो जाओ....सो जाओ!'

२६

क्या से क्या...!

अकरम ने एकाएक सामने की बिल्डिंग से मुँह फिरा लिया और आगे दादर के डाकख़ाने तक पहुँच गया। यहाँ फुटपाथ पर जामुन का एक घना पेड़ था, अकरम ने सुस्ताने के लिए हाथ से सूटकेस ज़मीन पर रख दिया और ख़ुद बिस्तर पर बैठकर अपने माथे से पसीना पोंछने लगा।

इतने में एक अधेड़ उम्र की औरत पाँव में चाँदी के मोटे मोटे कड़े डाले, हाथों की उँगलियों पर चाँदी की बेशुमार छोटी बड़ी अँगूठियाँ पहने उसके पास आयी और बोली—"बेटा एक ख़त लिख दो।"

इतना कहके उस औरत ने एक पोस्टकार्ड उसके हवाले किया।

अकरम ने अपनी जेब से अपना पुराना क़लम निकाला—"क्या लिखूँ अम्मा ?"

"अब क्या बताऊँ बेटा, क्या लिखो।" वह औरत अपने माथे पर हाथ मार के बोली—"मेरी तो क़िस्मत ही फूट गयी, बब्बन की सगाई अपने गाँव सोधरा में की थी, मगर बब्बन के यहाँ जसोदा ने शादी कर ली।"

"जसोदा कौन है ?"

"मेरी बहू; मगर मराठी है, नौ गजी लांगवाली साड़ी पहनती है, न मैं उसकी बात समझूँ न वह मेरी बात समझे, दिन में दस बार तो लड़ाई होती है, और बाद में बात कुछ नहीं निकलती। मालूम होता है उसने मेरी बात ग़लत समझ ली थी या मैंने ग़लत समझ ली थी। अब क्या करूँ ? बब्बन अपना बेटा है, उधर सोधरा-वाली भी अपनी बिरादरी की थी, उधर धोबी लोग बब्बन को जात से बाहर करने की धमकी देते हैं।"

"क्यों ?"

"कहते हैं उसने क्यों जात बाहर शादी की; बेटा अब तो यह बड़ा शहर है; यहाँ तो भाँत-भाँत की बिरादरियाँ रहती हैं, और साथ साथ रहती हैं, यहाँ तो पता नहीं चलता कौन धोबी है, कौन नाई है, कौन चमार है। ये जसोदा एक नाई की बेटी है; हमारी तो नाक ही कट गयी। जाने कलुवा क्या कहेगा ?"

"कलुवा कौन है ?"

"अरे मेरा घरवाला है, उसी ने तो बब्बन की सगाई अपने दोस्त छगन की बेटी कुन्ती से कर दी थी; जब दोनों घुटनों के बल चलते थे, तब उनकी सगाई हुई थी। कलुवा मुझे बहुत पीटता था बेटा ! इसलिए मैं उसे छोड़कर यहाँ अपने

बेटे के पास आ रही। कलुवा तो यह सुनके बहुत नाराज़ होगा, वहाँ सोधरा में ताड़ी बेचता है मेरा कलुवा; और इतनी ताड़ी बेचता नहीं है, जितनी खुद पीता है। वह इस वक़्त होता तो; मेरी चमड़ी उधेड़ के रख देता; मगर अब मैं क्या करूँ ? जो हो चुका वह हो चुका, अब तो एक ही सूरत है कि बब्बन के छोटे भाई लछमन से कुन्ती की सगाई कर दी जाये, मेरी समझ में तो कुछ और नहीं आता, कैसे इस मामले को पटाऊँ, तुम ही बताओ बेटा ?"

"तो मैं क्या लिखूँ इस ख़त में ?" अकरम ने पूछा।

"बस यही कुछ लिख दो जो मैंने बताया।" वह औरत बड़ी निरीहता से बोली—"दो तो अच्छर होंगे, कौन-सी रामायन लिखनी है।"

ख़ैर, अकरम ने किसी तरह से वह ख़त लिखा। इतने में वह औरत चिल्ला पड़ी बोली—"अरे यह तो मैं भूल ही गयी; उस कलुवा से कह देना कि छगन से कह दे कि लच्छमी के गुरू धुरधुरनाथ जो पुरानी धरमसाला के बाहर बरगद के पेड़ के नीचे समाधि लगाते हैं, उनकी जटा के दो बाल भेज दे।"

"काहे के लिए ?" अकरम ने हैरान होके पूछा।

"तुम लिख दो न ! तुम्हें क्या ?" धोबिन बड़ी मिन्नत से बोली—"मेरा बेटा भैरवजी सिद्ध कर रहा है।"

"काहे के लिए ?"

धोबिन ने इधर-उधर देखा; फिर वह जामुन के पेड़ के नीचे अकरम के बिल्कुल पास बैठ गयी और बोली—"किसी को बताना मत, मेरा बेटा जब भैरवजी को सिद्ध करेगा तो आस-पास की सब लानडरियों (लाण्ड्रियों) के कपड़े उसके पास धुलने को आयेंगे।"

"यूँ ?" अकरम ने पूछा।

धोबिन ने सर हिला के कहा—"बाबा धुरधुरनाथ की जटा के दो बाल मिल जावें, तो सब ठीक हो जावेगा।"

मगर अकरम ने कहा—"इस ख़त में अब लिखने के लिए कोई जगह बाक़ी नहीं रही।" अकरम ने ख़त उलट-पलट के दोनों तरफ़ से दिखा दिया।

"यहाँ क्यों नहीं लिख देते ?" धोबिन ने एक ख़ाली जगह पर इशारा किया।

"यह पता लिखने की जगह है।" अकरम बोला।

धोबिन बड़ी निराश हुई; बोली—"नए आये मालूम होते हो, नहीं तो तुमसे पहले इस जामुन के पेड़ के नीचे जो ख़त लिखनेवाला बैठता था; वह तो जो चाहे और जितना चाहे वह सब लिख देता था, तुम बहुत खुला खुला लिखते हो।"

अकरम ने कहा—"आगे से ख़्याल रखूँगा।"

धोबिन ने उसे अपनी धोती के पल्लू से एक आना निकाल के दिया, बोली—"मेरे हिसाब से दो पैसे हुए थे; मगर तुम अपने देश के मालूम होते हो; इसलिए दया आ गयी। राम ! राम !!"

"राम राम !" अकरम ने जवाब दिया।

अकरम ने इकन्नी की तरफ़ देखा, मुस्कराया। सामने डाकख़ाने के बाहर लोहे का जँगला था, जिसके पीछे दीवार से लगे हुए बाग़ के पेड़ों की डालियाँ लोहे के जँगले पर छाया किये हुए थीं। जँगले के बाहर दीवार पर साये के नीचे एक टाइपिस्ट ऊपर छतरी खोले बैठा था, उसने अपने सामने एक स्टूल पर टाइपराइटर रखा, स्टूल पर और भी दूसरे काग़ज़ थे, पोस्टकार्ड, मनीआर्डर फार्म, रजिस्ट्री के फार्म, पार्सल के फार्म और इसी तरह का डाकख़ाने से सम्बन्धित सामान। अक्सर डाकख़ाने में आनेवाले लोग अनपढ़ होते थे, इसलिए डाकख़ाने के बाहर इसी क़िस्म के लोगों की ज्यादा ज़रूरत होती थी, इसलिए इन लोगों का धन्धा अच्छा चलता था।

डाकख़ाना अब बन्द होनेवाला था, वहाँ के टाइपिस्ट के पास इस वक्त कोई काम न था, वह अपनी जगह से उठकर जामुन के पेड़ के नीचे आया, अकरम की तरफ़ ग़ौर से देखकर बोला—"तुम अच्छे मौक़े पर आये।"

"क्या मतलब ?" अकरम ने चौंक कर कहा।

"ज़्यादा होशियार न बनो।" टाइपिस्ट ने कहा।

"मेरा तुम्हारा कोई मुक़ाबला नहीं है, मैं टाइपिस्ट हूँ, तुम ख़त लिखनेवाले हो, मगर यह बताओ तुम्हें कैसे पता चला कि रामभरोसे मर गया। और अब उसकी जगह ख़ाली है।"

"रामभरोसे ? जगह ख़ाली ? मैं समझा नहीं।" अकरम ने बड़े भोलेपन से पूछा।

टाइपिस्ट ने अविश्वास से अकरम की आँखों में देखा, फिर उसे विश्वास हो गया कि यह रामभरोसे को बिल्कुल नहीं जानता, बोला—"मुझसे ग़लती हुई; मैंने समझा तुम्हें यहाँ किसी ने भेजा है। बात यह है कि इस जामुन के पेड़ के नीचे रामभरोसे बैठता था, वह कल ही मर गया।"

"क्या हुआ था उसे ?" अकरम ने पूछा।

"भूख से मर गया, अकेला होता तो भूख से कभी न मरता। यहाँ ख़त लिखने का जो काम है; उसमें आप एक बड़े कुनबे का ख़र्च नहीं चला सकते; एक-दो हों तो काम चल जाता है। रामभरोसे की बीवी थी, सात बच्चे थे; भूख से तो मरना ही था उसे, ख़त लिखकर इतने पैसे कौन कमा सकता है ? तुम अकेले हो न ?"

"हाँ !"

"कहाँ ठहरे हो ?"

"ठहरने का भी कोई ठिकाना नहीं।"

"तो चलो मेरे साथ भायखला में।"

"कहाँ ?"

"वहाँ झोपड़ियाँ हैं। हम लोग दस बारह आदमी हैं। तीन झोपड़ियों में रहते हैं, सब मिल के खर्च चलाते हैं, मज़े में रहते हैं। तुम्हारा नाम क्या है ?"

"अकरम !"

"मुसलमान हो ?"

"हाँ !"

"कोई बात नहीं, मेरा नाम जसवन्त है।" टाइपिस्ट ने हाथ मिलाने के लिए हाथ आगे बढ़ाया।

अकरम ने उत्तर में हाथ मिलाया।

जसवन्त ने कहा—"मैं गुजराती हूँ, मगर हमारी झोपड़ियों में हिन्दू, मुसलमान सिख, पठान, गुजराती, मराठे, पंजाबी सभी तरह के लोग रहते हैं," फिर हँसकर बोला—"वहाँ जगह इस क़दर तंग होती है, रोशनी इस क़दर कम होती है, ग़रीबी इस क़दर गहरी होती है कि छूत-छात एक तरह की अय्याशी सी मालूम होती है। जब सोने में एक की टाँग दूसरे के सर पर और दूसरे का सर तीसरे की टाँग पर रखा हो, तो धार्मिक भेद-भाव बनाये रखना ज़रा मुश्किल होता है।"

अकरम ने पूछा—"तुम कम्युनिस्ट हो ?"

"हाँ !" जसवन्त ने सर हिलाया; और फिर उसके क़रीब आके कहा—"मगर किसी से कहना नहीं भैया, हमारा काम ऐसा है कि अपनी रोज़ी कमाने के लिए डाकख़ानेवालों को ख़ुश रखना पड़ता है। वह कोई मुश्किल नहीं है; वह मैं सब तुम्हें बताऊँगा। मगर भाई अगर उन्हें यह पता चलेगा कि मैं इस तरह के ख़्याल रखता हूँ तो पुलिसवाले दूसरे दिन ही डन्डा मार के मुझे इस जंगले के अड्डे से निकाल देंगे; रोज़ी से भी जाऊँगा।"

"मैं भला कहूँगा।" अकरम ने बड़े ज़ोर से सर हिलाया।

२७

अन्धेरी बस्ती

अकरम को भायखला की झोपड़ियों का अड्डा बहुत पसन्द आया। उसके मुक़ाबले में उसकी बहन का एक कमरा ताजमहल था; लेकिन यहाँ जो चीज़ बहुत उम्दा थी, वह यह कि इन झोपड़ियों में रह के आदमी सोच भी नहीं सकता कि इससे नीची सतह पर भी कोई ज़िन्दगी हो सकती है—बेहद तंग अंधेरी झोपड़ियाँ व जंग लगी हुई टीन की छतें, और दीवारें। न कोई रोशनदान, न कोई खिड़की। एक तंग-सा दर्वाज़ा जिसमें से आदमी सर झुका के गुज़रे, घुटनों के बल चल के घुसे तो और भी अच्छा है। क़तार अन्दर क़तार झोपड़ियों के क्रमों के बीच एक टेढ़ी-मेढ़ी कच्ची गली; जिसमें नीम के दरख़्त उगे हुए थे; जिनके चारों तरफ़ मर्द, औरतें, बच्चे, बूढ़े, नौजवान ज़िन्दगी के भिन्न-भिन्न दर्जों में पले हुए हुक्का पी रहे थे, ताश खेल रहे थे; बच्चों से खेल रहे थे, शेख़ी बघार रहे थे। शोर और दुर्गन्ध की घुटन और प्यास ! पानी का नल पचास झोपड़ियों में एक। झोपड़ियों के अन्दर फ़र्श कच्चा, सीला हुआ। बरसात में टीन की छत नहीं टपकती थी; फ़र्श टपकता था। ऐसा मालूम होता था कि पानी फ़र्श के अन्दर कहीं उबल रहा है और कच्ची मिट्टी के नीचे से ज़ोर मार के ऊपर निकल आना चाहता था। फ़र्श में इस तरह कीचड़ के बुलबुले-से फूटते दिखाई देते थे कि बारबार मिट्टी डालने से भी फ़र्श की सीलन न जाती थी। इस तमाम तंग व दुर्गन्ध भरे वातावरण में इन्सानी साँस और पसीने की खट्टी-मिट्ठी वास चारों तरफ फैली हुई थी, जो इस बात का पता देती थी कि इस बस्ती में बसना एक ऐसी नियामत है जो यहाँ के कुलीनों को प्राप्त नहीं। इसलिए इन झोंपड़ियों के अन्दर से जो बदबू एक दफ़ा उठती थी वह बाहर कहीं नहीं जाती थी, बस झोंपड़ियों में आसपास मँडराती रहती थी। इस बस्ती के चारों तरफ़ पक्की आबादियाँ थीं। एक तरफ़ बेस्ट कम्पनी का शानदार दफ़्तर और रिज़र्व बैंक आफ़ इण्डिया के आठ मंज़िला क्वार्टर, दूसरी तरफ़ भायखला बाज़ार के आलीशान स्टोर और दूकानें, तीसरी तरफ़ छाटा मिल की ऊँची इमारत कई एकड़ों तक फैली हुई और चौथी तरफ़ अमीर बोहरों और खोजों की मुसलमान-बस्ती, और बीच में यह झोपड़ियों का अड्डा। जैसे एक तरह से बिल्कुल शहर के बीचोबीच में उसके दिल में एक काले घाव की तरह रिसता हुआ; उस अन्तर को ज़ाहिर करता हुआ, जिसमें एक तरफ़ इमारतें ऊँची से ऊँची होकर आसमान से बातें करने लगती हैं; तो दूसरी तरफ़ इतनी नीची हो जाती हैं कि ज़मीन के सीने

से लग जाती हैं। एक तरफ़ हवा इतनी साफ़ और एयरकण्डीशण्ड होती है कि हर साँस में महक-सी आने लगती है; और दूसरी तरफ़ इतनी गन्दी और दुर्गन्ध भरी, कि नाक की सूँघने की शक्ति भी जाती रहती है। एक तरफ़ नहाने के तालाब, दूसरी तरफ़ पेशाब के नाले, एक तरफ़ दौलत के ढेर, दूसरी तरफ़ कूड़े के ढेर। और यह अन्तर इतना साफ़ था कि बहुत-से राजनीतिज्ञों और शहर के भले आदमियों ने सलाह दी थी कि इन अड्डों को जला देना चाहिए, और यह सुझाव उचित था, समझ में आनेवाला था। याने अड्डों को जला दो, यह सारी बदबू, अन्धकार, सीलन, घुटन अपने आप नष्ट हो जायेगी। एक दफ़ा पुलिस ने कोशिश भी की थी; दो-एक बार ये अड्डे ख़ुद भी जल गये; मूसलाधार बरसातों में सड़ी हुई पुरानी लड़की को आप ही आग लग गयी थी, और झोंपड़ियों में जब आग लग जाये तो कुछ नहीं बचता, जैसे फटे-पुराने बिस्तर और चीथड़े, लकड़ी के सन्दूक़ आदि सब जल जाते हैं। नीम के दरख़्त भी नहीं बचते। लोग कहते हैं कि फ़र्श की मिट्टी और टीन की छत तक जल जाती है; कुछ नहीं बचता, और कोई अपनी जान बचाने के सिवा कुछ बचाने की कोशिश भी नहीं करता; क्योंकि किसी के पास होता ही क्या है जो बचाया जाये ? वैसे तो ऐसे मौक़ों पर फ़ायर ब्रिगेड एन्जिन न तो बुलाया जाता है, न ख़ुद आता है। अगर आ भी जाये तो उसे आसपास की पक्की इमारतों को बचाने के काम में लगा दिया जाता है। ठीक भी है, मुनासिब भी है, यूँ ही होता भी है, यूँ ही होना भी चाहिए। मगर एक बात जो इन बस्तियों के जलने से समझ में आती है, वह यह है कि अगर, मान लीजिए—भायखला की बस्ती जला दी जाय तो तीन दिनों में यह बस्ती यहाँ से हटकर माटुङ्गा के पास प्रकट हो जायेगी; माटुङ्गा से जला दीजिए यह पलट कर कोलाबे में प्रकट हो जायेगी, वहाँ से जला दीजिए तो माहिम में नज़र आ जायेगी। ऐसा मालूम होता है जैसे यह बम्बई शहर न हो एक बहुत बड़ा जिस्म हो, जिसमें जगह-जगह फोड़े और फुन्सियाँ उठते रहते हैं। आप एक जगह के फोड़े को दवाई लगाकर जला दीजिए; फिर फोड़ा किसी दूसरी जगह निकल आयेगा; वहाँ से जला दीजिए किसी तीसरी जगह से रिसने लगेगा। ऐसा मालूम होता है कि क़सूर फोड़े का नहीं है; अन्दर के ख़ून की ख़राबी का है; और जब तक अन्दर का ख़ून साफ़ नहीं होगा, गले-सड़े फोड़े और यह काली-मैली फुन्सियाँ उठती ही रहेंगी।

अकरम जब बस्ती में दाख़िल हुआ, तो उसे ये सब बातें एकदम समझ में नहीं आयी थीं, यह तो वहाँ लगातार रहने से आहिस्ता-आहिस्ता उसके दिमाग़ में घुस गयीं। लेकिन अन्धकार और घुटन के साथ-साथ सबसे बड़ी बात जो उसने उस

वक़्त महसूस की, वह उसकी नाक की तेज़ी थी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस बस्ती में बदबुओं का ऐसा विविध संग्रह था जो इस सिरे से उस सिरे तक गन्दगी के इन्द्रधनुष की तरह फैला हुआ था। उसने अपनी पूरी ज़िन्दगी में इतनी दुर्गन्ध कभी न सूंघी थी, कितनी खट्टी-मिट्ठी रसी दुर्गन्धें, कचांध, बसांध, भकरांध—एक से एक अलग। गन्दी दीवारों और छतों पर कीड़ों की तरह रेंगती हुई, यह दुर्गन्धें इतनी वास्तविक लगती थीं जैसे वह उन्हें अपने हाथ से छू सकता था।

उस वक़्त झुटपुटा-सा हो रहा था, जब जसवन्त अकरम को लिये बस्ती में दाख़िल हुआ। सब से पहले झोंपड़े के बाहर एक खाट पर शहबाज़ ख़ाँ पठान, जो सूद पर रुपये का लेन-देन करता था, बैठा हुआ माला फेर रहा था। उसने जसवन्त को सलामअलेकुम किया; और फिर गहरी निगाह अकरम पर डाली जो अजनबी था। जसवन्त अकरम को लिये आगे चला गया, जहाँ एक नीम के पेड़ के आसपास मिट्टी के एक ऊँचे चबूतरे पर बैठे हुए लोगों ने जसवन्त को एक अजनबी के साथ आते हुए देख लिया, इसलिए चुप हो गये। और जब जसवन्त चबूतरे पर आ के अकरम के साथ बैठ गया, तब भी वे ख़ामोश रहे और ख़ामोशी से अजनबी को घूरते रहे। मनजीतसिंह टैक्सी ड्राइवर, शहबाज़ख़ाँ पठान के बाद सब में तेज़ और तगड़ा माना जाता था। इस वक़्त उसने पगड़ी उतार कर अन्दर झोंपड़े में रख दी थी, जूड़ा अच्छी तरह से बाँध के सर के ऊपर रखा था और गले में एक मैली बनियान और कच्छा पहिने हुए अपने साँवले रंग में बड़ा भयानक दिखाई दे रहा था; उसने अपनी मूंछों पर ताव देते हुए जसवन्त से पूछा—

"यह कौन है ? यहाँ क्यों आया है ?"

जसवन्त ने कहा—"यह अकरम है; यहाँ रहने के लिए आया है।"

"क्या करता है यह ? पुलिस में तो नौकर नहीं है ? हम पहले ही पुलिस के हाथों से बहुत तंग हैं।" फ़ज़ल चिल्लाया। वह भी टैक्सी ड्राइवर था।

जसवन्त ने कहा—"नहीं, यह बेचारा तो दादर डाकख़ाने के बाहर ख़त लिखता है।"

"तो ठीक है।" एक बुढ़िया औरत अपनी बैठी हुई आवाज़ में चिल्लाई—"इस बस्ती में एक और पढ़े-लिखे आदमी की ज़रूरत भी थी।"

यह बूढ़ी औरत जमुना थी। अपने ज़माने में एक मशहूर वेश्या। अब एकान्त में रहना मंज़ूर करके इस बस्ती में ज़िन्दगी के आख़िरी दिन पूरे कर रही थी। उसकी झोपड़ी, जैसा कि अकरम को बाद में मालूम हुआ, बस्ती में सब से उम्दा थी, फ़र्श सीमेन्ट का था; मगर जमुना बेहद कंजूस थी और लोगों का ख़्याल था कि

इसने अपनी झोपड़ी में अपने अच्छे जमाने की दौलत को गाड़ रखा है; इसलिए फ़र्श पर सीमेन्ट करा रखा है, ताकि कोई फ़र्श आसानी से खोद न सके।

"इसकी जमानत कौन देगा ?" ठिगने-से घूमे ने कहा, जो मराठा था और पास की छाटा मिल में काम करता था।

जसवन्त बोला—"मैं देता हूँ, अभी तो इसके पास पैसे नहीं हैं; तुम मेरे हिसाब में लिख लो, आज शाम से तो इसने काम शुरू किया है, दस-बारह रोज में दे देगा।"

"अजी इसके हिसाब में क्या; मेरे हिसाब में लिख लो।" एक मोटी भारी गरजती हुई आवाज़ ने ऊँचे लहजे में चिल्ला के कहा; और सब उसकी तरफ़ देखने लगे, जिधर से आवाज़ आयी थी। अकरम भी उधर देखने लगा—एक मोटा आदमी छः फ़ुट से ऊँचा निकलता हुआ, बड़े-बड़े घुँघराले काले बाल माथे पर छिटकाये हुए, कमर तक नंगा, कमर से नीचे एक धोती पहिने हुए, हाथ में पानी की बाल्टी लिये क़रीब खड़ा उसकी तरफ़ देख कर मुस्करा रहा था।

"अरे तुम सत्यराय !" अकरम अपनी जगह से उठा।

सत्यराय ने उसे गले से लगा लिया और पानी की बाल्टी ज़मीन पर रखकर इस तरह बोला, जैसे उसके सामने बस्ती के दो-चार आदमी न हों, दस-बारह हजार का समूह हो। "दोस्तो, यह शायर है, कवि है, हिन्दुस्तान का सब से बड़ा शायर। हिन्दुस्तान का सब से बड़ा कवि। यह फ़िल्म डाइरेक्टर भी है, आँ ! क्या समझे ? हिन्दुस्तान का सब से बड़ा फ़िल्म डाइरेक्टर, सब से सच्चा, सब से उम्दा, सब से नेक, सब से प्यारा, ग़रीबों की मदद करनेवाला, ग़रीबों की सच्ची-सही जिन्दगी दिखाने वाला फ़िल्म डाइरेक्टर आप के सामने खड़ा है। दोस्तो, शर्म की बात है, डूब मरने की बात है; यह हमारा देश राजा राममोहन राय और स्वामी विवेकानन्द का देश है, महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू का देश है, (और फिर यह सोच कर कि अकरम मुसलमान है) यह हमारा मुहम्मदअली और शौक़तअली का देश है; धिक्कार है हम पर, ऐं...? कि हम ऐसी हस्ती की क़दर नहीं कर सकते...। आँ ?"

सत्यराय ने इस तरह घूर कर, नथुने फुलाकर, चेहरा कानों तक लाल करके चारों तरफ़ देखा, जैसे किसी को कच्चा चबा जायेगा, इसके बाद उसने निगाह चारों तरफ़ घुमा कर अकरम पर डाल दी; जैसे हथियार डाल दिये और बड़ी नर्मी से उसकी तरफ़ घूमा। "तुम फिकर न करो मेरे भाई ! तुम यहाँ शौक़ से रहो; जब तक तुम्हारा जी चाहे। मैं सब ठीक कर दूँगा, इन हरामज़ादों को; यह जो फ़िल्म इन्डस्ट्री पर इस वक़्त क़ब्ज़ा किये बैठे हैं। इन सब को चुन चुन कर बाहर निकाल दूँगा। मगर मेरा तरीक़ा दूसरा है।"

इसके बाद सत्यराय रुक गया और अपना एक हाथ हवा में ऊँचा करके बोला—"मैं—मुझे वह क्या समझते हैं ! आज मैं इस गन्दी बस्ती में हूँ मगर एक दिन दिखा दूंगा कि मैं सत्यराय बंगाली प्लस यूपियन, प्लस कायस्थ क्या होता है; कायस्थ का बच्चा....!"

"अरे भाई !" बाबूराम क्लर्क ने, जो उसके साथ में बैठा था और रिफ्यूजी सेक्शन में क्लर्क था; प्रोटेस्ट करते हुए कहा—मैं भी तो कायस्थ हूँ।"

"ओह ! आई ऐम वेरी सारी।" सत्यराय ने बड़ी नम्रता से कहा, और फिर अकरम की तरफ़ रुख करके कहने लगा—"देखते जाओ मेरी टेकिंग दूसरी है, मैं तो आहिस्ता-आहिस्ता पतंग उड़ाता हूँ, पहले रखा, फिर बाँधा, फिर ताना, फिर खींचा और खींच के छोड़ दिया कि जाओ बेटा लटके रहो !" यह उसका तक़िया-क़लाम था, यह अकरम को बाद में पता चला। इस वक़्त तो सत्यराय ने उसे अपने गले से लगाया और उसके बाद पानी की बाल्टी उठा के एक झोपड़ी में घुस गया।

सत्यराय से अकरम की मुलाक़ात सरसरी थी; एक मर्तबा उसने सत्यराय को सेठ बांकड़िया के फ़िल्म स्टुडियो में देखा था, दो-तीन बार—विभिन्न फ़िल्मी दफ़्तरों में चक्कर लगाते हुए। उसे इतना मालूम था कि सत्यराय एक फ़िल्मी दलाल है, जो प्रोड्यूसरों की फ़िल्में बिकवाने का धन्धा करता था, ऐसे आदमी को तेज़ ज़बान होना ही चाहिए। सत्यराय की ज़बान भी मोटर के पहिये की तरह पचास मील फी घन्टा की रफ़्तार से घूमती थी। उसकी सफलता का रहस्य यही था कि कोई दूसरा उसके सामने ज़बान खोल नहीं सकता था। सत्यराय के जाने के बाद सभा में बड़ी देर तक सन्नाटा रहा। खुद जसवन्त को अकरम ने अभी तक नहीं बताया था कि वह इससे पहले क्या था; उसका ख्याल था कि आहिस्ता-आहिस्ता उसे बताएगा। अब इस वक़्त जो उसने देखा तो सब लोग उसे नई निगाहों से तक रहे थे और वह बहुत परेशान हुआ। वह किसी की हमदर्दी नहीं चाहता था; वह तो उनमें उन जैसा होके रहना चाहता था।

फ़ज़ल खामोशी से सर झुकाए हुक्का पीता रहा, थोड़ी देर के बाद उसने जसवन्त से कहा—"इसे मेरी झोपड़ी में सोने दो, वहां जगह ज्यादा है।" "बहुत अच्छा" जसवन्त बोला। और उसने देखा कि जसवन्त उसके हां करने से बहुत खुश हुआ। मनजीतसिंह ने क़रीब आ के अकरम की पीठ पर ज़ोर से हाथ मार के कहा—"वाहगुरू सब ठीक कर देंगे, तू बिल्कुल न घबरा। मैं तुझे अपने छोटे भाई करतार से मिलाऊँगा, करतार मेरा छोटा भाई है।" और जब मनजीत यह कह रहा था; अकरम ने महसूस किया कि छोटे भाई के ज़िक्र से मनजीत की आवाज़

में घमंड सा आ चला है। "करतार यहाँ मेडिकल कालेज में पढ़ता है; दो साल में डाक्टर बन जायेगा। बड़ा डाक्टर! मेरा करतार। मेरा छोटा भाई। मैं उसे कभी यहां आने नहीं देता, इतवार को उससे मिलने के लिए होस्टल में जाता हूँ; अगले इतवार को तुम्हें ले चलूंगा।" जैसे मनजीत कह रहा हो; फ़िकर मत कर, तू भी मेरा छोटा भाई है।

मनजीत टैक्सी ड्राइवर था और खुद इस गन्दी बस्ती में रहता था; मगर उसकी सारी कमाई अपने छोटे भाई करतार को पढ़ाने में खर्च होती थी; अपने ऊपर वह बहुत कम खर्च करता। अक्सर कहा करता, "मेरा अब दुनिया में कोई नहीं है; बीवी-बच्चे दंगों में मारे गये। अब यही एक छोटा भाई बचा है, घर का चिराग़, यह डाक्टर बन जाये तो समझूंगा मैंने कुछ किया। वाहगुरू की कृपा से अब दो साल रह गये हैं।"

जैसे मनजीत कह रहा हो; 'मैं अनपढ़ हूँ, जाहिल हूँ, बे-पढ़ा-लिखा हूँ, तुम्हारी मुहब्बत के लायक़ नहीं हूँ, मगर मेरा एक भाई है, मैंने उसे पढ़ाया है, उसे होस्टल में रखा है; वह डाक्टर बनने जा रहा है, वह तुम्हारी मुहब्बत के लायक़ है, मैं तुम्हें उससे मिला दूँगा।'

अकरम का जी भर आया, उसने मनजीत को ज़ोर से गले लगा के कहा—"नही भैया मनजीत! मैं तुमसे भी मिलकर बहुत खुश हुआ हूँ; मुझे तो ऐसा मालूम होता हैं जैसे मैं मुद्दत के बात अपनों में आया हूँ।"

रात अँधियारी और बदबूदार थी। फ़र्श पर कीड़े चलते थे और खटमल रेंगते थे। हवा में मच्छर भनभनाते थे; फिर भी झोपड़ों के अन्दर और झोपड़ों के बाहर गली में और नीम के चबूतरे के फ़र्श पर लोग नींद में मदहोश पड़े थे; एक दूसरे के पास-पास लकड़ी के शहतीरों की तरह। नीम के पेड़ के ऊपर लालटेन धीमी-धीमी जल रही थी। सब सो रहे थे; मगर अकरम जाग रहा था और जमुना बुढ़िया अपने झोपड़े के दर्वाज़े में उकड़ूं बैठी हुई जाग रही थी। "अम्मा तुम सोई क्यों नहीं हो?" अकरम ने आहिस्ता से पूछा—"किसका इन्तज़ार है?"

बुड्ढी हँसी, उसकी हँसी कड़वी और विषैली थी।

फिर जमुना ने आहिस्ता से कहा—"बेटा! एक वेश्या चमगादड़ की तरह होती है। वह दिन को सोती है, रात को जागती है। बीस बरस तक रात को लगातार जागने से अब नींद आँखों से उड़ गयी; अब मुझे रात को नींद नहीं आती, ज़िन्दगी के दिन पूरे होने को आये। फिर भी अब आदत बन चुकी है। मैं रात को जागती हूँ, दिन को सोती हूँ। मुझे मालूम नहीं दिन कैसा होता है, भोर कैसी होती है, सूरज किधर से निकलता है? तुम मेरी फ़िकर न करो, बेटा! सो जाओ आराम से, सो

जाओ।" अकरम को अपना कंठ खिंचता हुआ, अन्दर को सिकुड़ता हुआ महसूस हुआ; जैसे कंठ में कोई चीज़ फँस रही हो। उसने आहिस्ता से अपना मुँह मोड़ लिया और करवट बदल के चबूतरे से लम्बा हो गया। फिर भी सोने से पहले उसके दिमाग़ में जो तस्वीर थी, वह एक बुड्ढी औरत की थी। जिसकी आँखों पर पलकें नहीं थी, और जो बिना आँखें झुकाए एक दर्वाज़े में उकड़ूँ बैठी अंधेरे में देख रही थी, अंधेरा उसके आगे था, अंधेरा उसके पीछे था, अंधेरा उसके ऊपर था, अंधेरा उसके नीचे था, अंधेरा, अंधेरा, अंधेरा...अंधेरा जो उसका आख़िरी गाहक था !

२८

औरत, औरत न थी....

दिन और रातें हफ़्तों में बदलती गयीं, फ़िल्मी संकट कम न हुआ; बढ़ता ही गया। अकरम के ख़त लिखने के काम का बहुत से लोगों ने बहुत मज़ाक उड़ाया था; यहाँ तक कि एक्स्ट्रा भाई लोगों के लिए भी वह हँसी का पात्र बन गया था। शुरू शुरू में अकरम के इस काम के करने की चर्चा भी हुई थी। बिलिट्ज ने उसकी तस्वीर भी छापी थी। इससे पहले भी एक अख़बार एक बी. ए. पास पालिश करनेवाले की तस्वीर भी छाप चुका था; लेकिन किसी सहानुभूति की निगाह से नहीं; सिर्फ़ सनसनी फैलाने की दृष्टि से। मगर इस बात को अब छः माह से ऊपर हो गये थे, फ़िल्मी लोग अकरम को भूल गये थे। उनके लिए अपनी ही परेशानियाँ क्या कम थीं ? भिन्न-भिन्न स्टुडियो में लाइटमैनों ने अपनी यूनियन बना ली थी; कई बार स्टुडियो में हड़तालें हुई थीं, बड़े बड़े पैसेवालों ने हाथ खींच लिया था। बहुत सी आधी चौथाई तैयार तस्वीरें डिब्बों में बन्द पड़ी थीं; नई तस्वीरें बहुत कम शुरू हो रही थीं, मुहूर्त बहुत कम होते थे, मुहूर्तियों को सुबह के वक्त फ़ाक़े हो रहे थे। दादर मेनरोड पर एक धुँआं-सी हालत थी। कभी ऐसा सन्नाटा जैसे सब ऊँघ रहे हों। कभी एक्स्ट्रा लोगों को, असिस्टेन्ट डाइरेक्टरों को, बल्कि कई सफ़ेद पोश डाइरेक्टरों को भी फ़ाक़े लग रहे थे। जिस्म पर धुला हुआ कपड़ा पहनना और चेहरे पर धुली हुई मुस्कराहट को बनाये रखना भी बड़ा मुश्किल मालूम हो रहा था।

भट्टाचारिया ने पहले अकरम का बहुत मजाक उड़ाया, फिर बड़ी गम्भीरता से उसे इस काम को छोड़कर फिर से फ़िल्मों में आने को कहा था; यहाँ तक कहा था कि उसके इस घृणित काम करने से फ़िल्मवालों का अपमान होता है; मगर अकरम

नहीं माना। अब वही भट्टाचारिया था कि अकरम की अक़्लमन्दी सराह रहा था; कह रहा था—"सुबह से रात के बारह बजे तक काम करता हूँ; फिर भी कोई पैसा नहीं देता, तीन पिक्चरों में असिस्टेन्ट डाइरेक्टर हूँ लेकिन एक पिक्चर के पूरे पैसे नहीं मिलते। सेठ बाँकड़िया सट्टे में बीस लाख हार गये हैं, बोलते हैं हालत पतली है। विचार करो, अरे जब हालत मोटी थी; तब तुमने कौन सी थैलियाँ खोल दी थीं ?"

अकरम खामोश रहा।

"तुम बहुत अच्छे रहे" भट्टा ने कहा—"दिन में कितना कमा लेते हो ?"

"दो ढाई रुपये, किसी दिन तीन भी हो जाते हैं।"

"यहाँ डेढ़ भी नही मिलता।" भट्टा ने अकरम की तरफ़ ईर्षा से देखते हुए कहा।

"अच्छा मैं वह लिफ़ाफ़ा डाल आऊँ, भाई से सौ रुपया मंगाया है।"

भट्टा ने लिफाफ़ा अकरम को दिखाया, और फिर डाकखाने के अन्दर घुस गया।

× × ×

एक दिन अकरम ने किसी आदमी को डाकखाने में घुसते हुए देखा, जान-पहिचान का लगा, मगर चूंकि उस आदमी की पीठ अकरम की तरफ़ थी और अकरम उस वक्त एक खत लिखने में व्यस्त था इसलिए उसने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। थोड़ी देर के बाद जब वही आदमी डाकखाने के बाहर निकला तो अकरम ने झट पहिचान लिया, मिर्ज़ा राहत हुसेन थे, मगर किस क़दर पिचक से गये थे, उनके सुर्ख व गोरे कल्ले अन्दर को धँस गये थे, माथा धुँआँ धुँआँ सा हो रहा था।

"अरे मिर्ज़ाजी !" अकरम के मुँह से सहसा निकला। मिर्ज़ाजी ने भी आश्चर्य से अकरम की तरफ़ देखा, हैरत दोनों को एक दूसरे को इस हालत में पा कर हो रही थी, मगर अकरम अपनी हालत पर ज्यादा सन्तुष्ट नजर आता था। मिर्ज़ाजी ने अपनी आँखें झपकाई और घबरा के बोले—

"अमाँ, तुम यहाँ क्या करते हो ?"

"खत लिखने का काम करता हूँ।"

मिर्ज़ाजी चुप हो गये, थोड़ी देर के बाद बोले—

"देखा, अच्छे पढ़े लिखे मुसलमानों को भी यहाँ काम नहीं मिलता, मैं तो पाकिस्तान जा रहा हूँ।"

"क्यों ?"

"क्या करूँ, यहाँ एक साल से बेकार बैठा हूँ, अब तो भूखों मरने की नौबत आने लगी।"

"पाकिस्तान में क्या लंघन नहीं होंगे, वहाँ क्या बेकारी, ग़रीबी, अनपढ़, जहालत और ऐसी ही दूसरी समस्याएँ नहीं होंगी ?"

मिर्ज़ाजी फिर सर हिला के बोले—"कराची में मेरा साढ़ू है, वह वहाँ एक ऊँचे सरकारी औहदे पर है, उसने मुझे लिखा है कि अगर मैं पाकिस्तान आ जाऊँ तो वह मुझे पब्लिसिटी डिपार्टमेन्ट में छः सौ की पोस्ट दिलवा देगा।"

"ठीक है, मगर तुम्हारा मुल्क तो यह था। तुम्हें लखनऊ इस क़दर पसन्द था मिर्ज़ाजी, साल में दो बार तुम अपने वतन जाते थे, लखनऊ के पान, उसका कल्चर, वहाँ के दसहरी आम, ज़मीन की सी सोंधी सोंधी ख़ुशबू लिये...."

मिर्ज़ाजी ने अपनी नज़रें अकरम से फेर लीं, आहिस्ता से बोले—"मैंने सब मंज़ूर कर लिया है।" और अकरम ने मिर्ज़ाजी के गोरे चेहरे, उनके चिकन के कुर्ते और सफ़ेद पायजामे की तरफ़ देखकर सोचा—ए ख़ूबसूरत सपनों में रहनेवाले, ख़ूबसूरत लोगों! अब तुम्हारे लिए कोई शुरू नहीं और कोई अन्त नहीं है, कोई गुनाह नहीं है और कोई सज़ा नहीं है, क्यों कि तुमने अपने लिए सब कुछ मंज़ूर कर लिया है। एक दिन तुम्हें ज़िन्दगी के बजाय पिस्तौल की गोली मिलेगी, और तुम उसे भी मंज़ूर कर लोगे, क्योंकि तुम्हारी रूह का तूफ़ान मर चुका है और तुम्हारे किनारे की बाढ़ उतर चुकी है, और तुम्हारी रूह ने थकन की घनेरी छाया को देख लिया है। इसलिए अब तुम्हारे लिए कोई पत्ता नहीं खड़खड़ायगा, और कोई डाल नही काँपेगी, और कोई बहार तुम्हारे दर्वाज़े पर दस्तक देने के लिए नहीं आयेगी और तुम अपने बर्फ़ से ढके हुए बगीचों में सर्दी से ठिठुरते हुए मर जाओगे, ऐ मेरे ख़ाली-खूली ख़ूबसूरत निकम्मे लोगों!

मिर्ज़ाजी ने उससे कहा—"तुम यहाँ अपनी ज़िन्दगी बर्बाद क्यों कर रहे हो? पाकिस्तान चले चलो, पढ़े-लिखे मुसलमानों के लिए अब भी वहाँ बहुत इज़्ज़त है।"

"अगर सभी पढ़े-लिखे मुसलमान चलते बने, तो यहाँ के अनपढ़ मुसलमानों का क्या होगा?" "अपने की ख़ैर मनाओ।" मिर्ज़ाजी ने फ़ौरन जवाब दिया। अकरम की आँखें ग़ुस्से से चमक उठीं, उसने ज़रा बुलन्द लहज़े में कहा—"तुम भूलते हो मिर्ज़ाजी, मैं अकेला नहीं हूँ। बेकारी, ग़रीबी, मुसलमानों में ही नहीं है, हिन्दुओं, सिखों, ईसाइयों और पारसियों में भी है। ग़रीबी का कोई धर्म नहीं होता। लेकिन अगर तुम मुसलमानों की ही बात करते हो, तो यह भी सुन लो कि इस मुल्क में साढ़े चार करोड़ मुसलमान बसते हैं, कोई और मुल्क इतना बड़ा नहीं है कि इन्हें सहारा दे सके, यही इनका मुल्क है, यही इनका वतन है। इसी वतन से प्यार करके, इसी मिट्टी के गीत गा के, इसी के समाज का एक ज़रूरी कीमती हिस्सा बन के इन्हें आगे बढ़ना है; और कोई दूसरा रास्ता नहीं है मेरे दिमाग़ में। यह बात बिलकुल साफ़ है।"

मिर्ज़ाजी एक कड़वी निराश हँसी हँसे, बड़ी सतर्कता से उन्होंने अपने जेबी पानदान में से एक पान निकाला, उसे कल्ले में दबाया और बग़ैर किसी सलाम-दुआ

के अकरम से मुँह फेर के चले गये; जैसे उन्होंने किसी मुसलमान का नहीं किसी क़ाफ़िर का चेहरा देख लिया हो।

× × ×

अकरम देर तक मिर्ज़ा की पीठ की तरफ़ देखता रहा; एकाएक उसके कानों में आवाज़ आयी—"सलाम ए!"

और वह चौंक कर मुड़ा; उसके सामने विलायत बेगम खड़ी थी। मगर वह रुप, वह अदा, वह भोलापन अब जाने किधर ग़ायब हो गया था! विलायत बेगम ने अपनी ख़ूबसूरत भौंहें उस्तरे से साफ़ करवा डाली थीं; और पेन्सिल से नकली कमान की तरह उन्हें तिरछा बनाया था; उसकी आँखों के नीचे गहरे घेरे थे; जिन्हें छिपाने के लिए उसने अपने गालों पर रँग ज़रुरत से ज़्यादा थोपा था। होंठों पर लिपस्टिक इस क़दर ज़्यादा थी कि दोनों होंठ फटे हुए घाव की तरह मालूम होते थे। इस क़दर शोख़-सा रंग था वह!

विलायत बेगम ने हँस कर कहा—"मुझे रफ़िया ने बताया कि अब तुम यहाँ बैठते हो।"

"कौन रफ़िया?"

"अरे रफ़िया को तुम नहीं जानते हो! कमाल है, अरे वह नाचती है अपने साथ, जिस्म बहुत अच्छा है उसका; वह तो तुम्हारी इतनी तारीफ़ करती है कि मैं समझी तुम पर आशिक है। तुम ज़रूर उसे जानते होगे।"

अकरम को याद आया; उसने सर हिला के कहा—"हां उसे दो-तीन बार देखा ज़रूर है, मगर दूर से। मिला आज तक नहीं।"

विलायत बेगम हँसी; बोली—"किसी दिन मिला दूँगी; इस वक़्त एक मनीआर्डर लिख दो।"

"कितने का है?"

"पछत्तर रुपये का।"

"किसे भेजोगी?"

"अरे मेरी तरफ़ से मत भेजना; वरना कमाल का ग़ज़ब हो जायेगा। इशरत के नाम से भेजो।"

अब अकरम चौंका—"कौन इशरत?"

"अरे वही इशरत जो कभी राज के पास था, राज ने उसे निकाल दिया, उस बेचारे की बहुत बुरी हालत है।"

"मगर इशरत का तुमसे क्या सम्बन्ध?"

विलायत बेगम ने आहिस्ता से कहा—"अब वह मेरे पास है, वैसे तो घर वाले

मुझसे बहुत नाराज़ हैं, मगर मुझे बड़ा तरस आया उस पर, मैंने कहा—"जहां इतने लोगों को पालती हूँ वहाँ एक और सही। मनीआर्डर जल्दी से लिख दो।"

"किस पते पर जायगा ?"

"रईसगंज जायगा, हुसेनपुरा मुहल्ले का नाम है; और असग़री बेगम उसकी माँ का नाम है; उसकी माँ बहुत बीमार है; उसने पैसे मंगाये थे, इशरत के पास कहां से होंगे; इसलिए भेज रही हूँ ! मेरा पता न लिखना।"

"तो किसका पता लिखूं ?"

"इशरत का लिखो, और—और"—विलायत बेगम ने यकायक सोच के कहा—"नीचे अपना पता दे दो; जब रसीद आयेगी मै तुमसे आके ले जाऊँगी, ठीक है ?"

"बहुत अच्छा।"

"तुम बहुत अच्छे हो !" विलायत बेगम ने अकरम से कहा—"उस दिन जुहू पर जब तुमने मुझे बुरी बात तक नहीं कही; मैंने अपने दिल में कह दिया था कि इस बेचारे का बुरा हाल होगा; सो देख रही हूँ।"

"क्यों ?"

"यह दुनिया शरीफ़ों की नहीं है।"

"नही विलायत बेगम ! यह दुनिया शरीफ़ों की ही है।" अकरम ने उससे कहा।

"नही !" विलायत बेगम बड़ी सख़्ती से बोली—"यह दुनिया शरीफ़ों की नही है।"

अकरम चुप रहा। मनीआर्डर लिखा के विलायत बेगम ने उसे एक रुपया दिया, अकरम ने इन्कार कर दिया।

"ले लो !" विलायत बेगम ने कहा—"हराम की कमाई है। एक रुपया तुम ले गये तो कौन-सा ग़ज़ब हो जायेगा।"

"ऐसा क्यों करती हो विलायत !" अकरम ने बड़ी उदासी से कहा—"ऐसा क्यों करती हो, यह ठीक नहीं है अपने आप को तबाह कर देना।" विलायत की सारी शोखी एकदम खत्म हो गयी, जैसे उसके चेहरे से अंधियारे की घनी छाया घूम गयी, वह यकायक खांसने लगी, ज़ोर से खांसने लगी, उसकी आँखें उबल आयीं, उसके हलक़ से थूक के साथ खून की एक लकीर-सी बाहर फ़र्श पर दौड़ गयी।

अकरम काँप गया।

"तुम अपना इलाज कराओ; तुम ये बातें छोड़ दो, किसी को यह हक़ नहीं—तुम किसी अस्पताल में भर्ती हो जाओ; मैं तुम्हारे साथ चल कर तुम्हें दाख़िल करा दूंगा।"

विलायत उसके हाथ का सहारा ले के उठी, बोली—"अब कुछ नहीं हो सकता,

अब मुझमें कुछ नहीं रहा; अब सब ख़त्म हो चुका है।" और वह चली गयी। अकरम देर तक उसे देखता रहा, वह एक अजीब बेढंगी चाल से चल रही थी; दाहिना पांव कहीं और बायां कूल्हा कहीं; और ऐसा मालूम होता था जैसे एक औरत नहीं; दो औरतें बीच में से अलग होके अलग-अलग टांग और एक कूल्हे के सहारे दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में घसिट रही हैं। अकरम ने मुंह फेर लिया; बहुत मुश्किल है, चीज़ों को देखना, समझना और समझ कर ख़ामोश हो जाना या अपने दिल व दिमाग़ को इस क़दर खाली कर देना कि वहाँ कोई सोच बाक़ी न रह जाय !

हमारे देश में कितनी ही औरतें, आधी औरतें हैं, आधी से भी कम, एक तिहाई। ऐसी औरतें जिनके अन्दर कोई औरत नहीं है। जिनके सिर्फ़ जिस्म औरतों के से हैं, लेकिन जिनके अन्दर कोई औरत बाक़ी रहने नहीं दी गयी; कोई मां, कोई बहन, कोई बीवी, कोई प्रेयसी। औरतें, जिन्हें सिर्फ़ सौदागर बना दिया गया है, सिर्फ़ दूकानदार, सिर्फ़ मुनाफ़ाख़ोर। जिनके अन्दर से दिल भी निकाल लिया गया है और वहाँ एक चाँदी का सिक्का रख दिया गया है। बहुत मुश्किल है उस ज़ुल्म को देखना और चुप रह जाना। अकरम ने दोनों हाथों से अपने सर को पकड़ लिया। कहीं कोई रास्ता है ? अगर उसने रास्ता जल्द तलाश न किया तो वह पागल हो जायगा।

२६

आओ, रोशनी आओ !

उस रोज बरसात बरस के थम गयी थी। शाम का वक़्त था और बस्ती के ऊपर आसमान की लाली अनार के से गहरे लाल रंग की झालरें सजाये खड़ी थी। बस्ती के आसपास और बस्ती की गली में छोटे-छोटे गढ्ढों में पानी भर गया था और उस वक़्त आसमान की लाली के प्रतिबिम्ब से ऐसा मालूम होता था जैसे पानी की सतह पर हज़ारों गुलाब तैर रहे हैं। आसमान के इस छोटे से कोने में इस वक़्त इतनी सुन्दरता थी कि नीचे देखते हुए तकलीफ़ होती थी। मगर बस्ती के लोग ऊपर नही देख रहे थे। एक अरसा हुआ वह आसमान को भुला चुके थे। इस वक़्त नीम के पेड़ के नीचे बड़े ज़ोर शोर से बहस जारी थी, घूमे जो अक्सर ख़ामोश रहता था, इस वक़्त बहुत ही बेचैन अंदाज़ में बातें कर रहा था। वह कह रहा था—सेठ ने मुझे बुलाया, क़ाग़ज का पुर्ज़ा जो मैंने मिल के मैनेजर को दिया था, और मिल के इन्जीनियर को दिया था, वह उस वक़्त उसके सामने था।

वह बहुत बेचैन और परेशान नज़र आया। मुझे अपने सामने खड़ा देखकर कहने लगा—"कब से तुम हमारी मिल में काम करते हो ?"

"दस साल से।"

"इस क़ाग़ज पर तुम दस्तख़त करा रहे थे ?"

"हाँ !"

"तुम जानते हो इस क़ाग़ज पर क्या लिखा है ?"

"जी ! लिखा है—कि दुनिया में लड़ाई बन्द होनी चाहिए।" सेठ ने क़ाग़ज दोहरा किया, तेहरा किया, चौहरा किया। उसने उसे फिर आहिस्ता से खोला, और इतने अरसे तक वह बिल्कुल ख़ामोश रहा, फिर उसने मुझसे कहा—

"क्या तुम बम्बई शांति सभा के मेम्बर हो ?"

"मेम्बर तो नहीं हूँ; वालिन्टियर ज़रूर हूँ।"

"दुनिया में शांति हो या युद्ध हो, तुम्हें इससे क्या ? तुम मज़े से अपना कपड़ा बुनते जाओ।"

मैंने सेठ को हिरोशिमा के बारे में बताया। उसने मेरी आधी बात सुनकर ही कहा :

"राजनीति ! राजनीति ! तुम मज़दूर लोग अगर राजनीति कम कर दो, और काम ज़्यादा करो; तो दुनिया में किसी प्रकार का कष्ट बाक़ी न रहे।"

मैंने कहा—"मेरे पिछले दस साल का रिकार्ड देख लो, कैसा काम मैंने किया है।"

सेठ बोला—"इसीलिए तो तुम्हें समझा रहा हूँ; कोई दूसरा होता तो उसे फ़ौरन निकाल देता।" इतना कहकर उसने मुझे ग़ौर से देखा बल्कि घूरा, जैसे पुलिसवाले किसी अपराधी को घूरते हैं। उसके बाद उसने एकबारगी मुझसे पूछा—"क्या तुम कम्यूनिस्ट हो ?"

मैंने पूछा—"क्या शांति चाहने के लिए कम्यूनिस्ट होना ज़रूरी है ?"

सेठ हँसा; बोला—"तुम बहुत चालाक हो; अच्छा जाओ, अब तुम्हें माफ़ कर देता हूँ, मगर आइन्दा ऐसी हरकत न करना।" उसके बाद उसने वह दस्तख़तों वाला क़ाग़ज ले के फाड़ दिया।

"फिर !" जसवन्त ने अपनी नाक उंगली से दो तीन बार मोड़ते हुए पूछा—"तुम ने दस्तख़त नहीं करवाये ?"

घूमे बोला—"ऐसा भी क्या ? मगर अब मैं बहुत संभल गया; मैंने जाके अपने मज़दूर भाइयों से कहा कि सेठ क्या कहता था। कई मज़दूर भाई जो इससे

पहले शांति सभा की अपील पर दस्तख़त न करते थे; उन्होंने फ़ौरन दस्तख़त कर दिये।"

"क्यों ?"

वे बोले—"सेठ अगर इस अपील पर दस्तख़त नहीं करता है तो इसमें ज़रूर कोई अच्छी बात होगी।" इस पर एक क़हक़हा पड़ा, मनजीतसिंह और फ़ज़ल ख़ूब ज़ोर से हँसे। अकरम जो अब तक धूमे को कुछ बेवक़ूफ़ समझता था, मुस्करा कर उसे नई निगाहों से देख रहा था; और समझने की कोशिश कर रहा था। धूमे ने अपनी नेकर की जेब से क़ाग़जों का एक पुलिंदा निकाला, कहने लगा—"पहला क़ाग़ज जो सेठ ने फाड़ दिया था उस पर मुश्किल से दो सौ दस्तख़त हुए होंगे, सेठ के मना करने के बाद आठ सौ लोगों ने इस पर दस्तख़त कर दिये; तुमने अगर उस वक़्त उन लोगों के चेहरे देखे होते !"

धूमे एकाएक ख़ामोश हो गया; उसने दस्तख़तों वाले काग़जों का पुलिंदा जसवन्त के हाथों में दिया।

जमुना बोली—"इस जंग की तो मैं बात नहीं करती, लेकिन पिछली जंग में मुझे याद है; सिपाही मुँह माँगे दाम दे जाते थे।"

मनजीत ने कहा—"और उसके बाद वे एक ख़न्दक़ पर जाके गोली खाके मर जाते थे। इसी तरह मेरा चचा मरा था। मुझे याद है, हमारे गाँव में दीवाली का मेला था, उस रोज़ हम लोगों ने नये कपड़े पहने थे। हमारे दोनों हाथ मिठाइयों से भरे हुए थे। और जेबों में आतिशबाज़ी का सामान था, जो हम पहले ख़रीद के ले जा रहे थे। इतने में एक डाकिया मेरे बाप को ढूँढ़ता हुआ आया, और वह तार पढ़ के मेरा बाप दहाड़े मार के रोने लग पड़ा।" वह चुप हो गया, फिर मनजीत ने सर हिलाकर कहा—"सच, ज़िन्दगी बहुत अच्छी चीज़ है, मुझे अपना चचा अभी तक याद है, लाम पर जाने से पहले वह किस क़दर ख़ूबसूरत और तन्दुरुस्त दिखाई देता था। उसकी दाढ़ी लाल थी, लाल उसके बाल थे और लाल उसके गाल थे। और वह एक विधवा और एक बच्ची छोड़कर मर गया; अगर वह आज ज़िन्दा होता तो शायद मैं अपनी पढ़ाई ज़ारी रख सकता।" मनजीत ने उदासी से सर हिलाया।

फ़ज़ल ने कहा—"पिछले युद्ध की बात तो मैं नहीं करता; लेकिन इस जंग के दिनों में रुपये बहुत मिलते थे। मेरी टैक्सी सुबह से शाम तक चलती थी, दिन से ज़्यादा रात में कमाता था। कोई दिन ही ऐसा होता होगा, जिस दिन साठ-सत्तर रुपये न कमा लेता हूँगा। अब मुश्किल से बाईस-तेईस रुपये होते हैं।"

जसवन्त ने कहा—"जंग में राशन कितना मिलता था ? सत्तर रुपये में तुम

ख़रीद क्या सकते थे, बंगाल में जंग के दिनों में क्या हुआ, तीस लाख आदमी भूख से क्यों मर गये ? क्योंकि सारा अनाज जंग के मोर्चे पर जा रहा था, इसलिए तुम्हें और मुझे फ़ाक़े करने पड़े, सिर्फ़ रुपयों पर कोई नहीं जी सकता, और आदमी की जिन्दगी एक टैक्सी की कमाई से हज़ार दर्जे बेहतर है, मानते हो कि नहीं ?" फ़ज़ल ने हाँ में सर हिलाया, थोड़ी देर के बाद रुक के बोला—"एक अपील मुझे भी दे दो, मैं टैक्सी ड्राइवर यूनियन के सामने उसे रखूंगा।"

जसवन्त ने अपील का एक छपा हुआ काग़ज़ उसे दिया; फिर उसने अकरम से मुड़ के कहा—"तुम फ़िल्म इन्डस्ट्री में इतने बड़े बड़े नामी कलाकारों, डाइरेक्टरों, डिस्ट्रीब्यूटरों को जानते हो, अगर तुम उन लोगों से दस्तख़त करा सको तो हमारे काम को बहुत फ़ायदा पहुंच सकता है।"

अकरम ने काग़ज हाथ में ले के कहा—"मगर इसमें है क्या ! मैं तो समझता नहीं, कौन ऐसा आदमी होगा जो अपने होश व हवास में हो, और इस अपील पर दस्तख़त न कर दे।"

जसवन्त ने कहा—"यह चीज इस क़दर आसान नहीं है; तुम छाटा मिल के सेठ की बातें तो सुन चुके हो।"

"वह सेठ तो पागल मालूम होता है; सारी दुनिया थोड़े ही पागल है।" अकरम ने हँसकर कहा।

"दुनिया में कई ख़तरनाक पागल मौजूद हैं, जो पागलख़ाने में बन्द नहीं हैं; बल्कि ऊँचे-ऊँचे पदों पर काम कर रहे हैं, और दिनरात जंग जंग चिल्लाते हैं।"

"होंगे ! दूसरे मुल्कों में होंगे।" अकरम ने ज़रा ऊँचे स्वर में कहा—"मगर हमारे मुल्क में नहीं हैं। खुद हमारे प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू की पालिसी भी यही है कि दुनिया में कहीं जंग न हो।"

"इसमें कोई शक नहीं।" जसवन्त बोला—"पंडित नेहरू की अथक कोशिशों ने शान्ति के आन्दोलन में हिन्दुस्तान को एक ऐतिहासिक शक्ति प्रदान की है; मगर दुर्भाग्य से खुद हमारे देश में ऐसे लोग मौजूद हैं, जो तरह तरह से पंडित नेहरू की मैत्री की पालिसी का विरोध करते हैं; उनका मुँह बन्द करना ज़रूरी है; और पंडित नेहरू की शान्तिप्रिय नीति को आगे बढ़ाने के लिए जनसाधारण का सहयोग देना भी बहुत ज़रूरी है।"

धूमे ने बाबूराम की तरफ़ मुस्करा कर कहा—"अपने बाबूराम ने अपील पर दस्तख़त नहीं किये।"

"क्यों बाबूराम ?" जसवन्त ने पूछा।

अब हर व्यक्ति बाबूराम की तरफ़ देख रहा था; बाबूराम के लिए उनकी

निगाहों से बचना बेहद कठिन हो गया। पहले तो उसने अपने हाथ अपनी पीठ की तरफ़ कर लिये; जैसे वह ख़ुद नहीं उसके हाथ थे, जिन्होंने इस अपील पर दस्तख़त नहीं किये थे। फिर उसने दायाँ पाँव उठा के बाएँ पाँव पर रखा और जब उससे भी काम न बना तो यकायक ग़ुस्से में बोला—

"मेरी समझ में नहीं आता कि अकाउण्ट क्लर्क का लड़ाई या शान्ति के प्रश्न से क्या सम्बन्ध है ? मेरे लिए इतना जानना ही काफ़ी है कि दो और दो चार रुपये होते हैं।"

घूमे ने कहा—"कभी कभी दो और दो रुपये ही नहीं होते चार सिपाही भी होते हैं" "और दो और दो चार बम भी होते हैं।" मनजीतसिंह ने बाबूराम के स्वर में बिल्कुल उसकी नक़ल करके इस तरह कहा—कि अब सबको हँसी आ गयी।

जसवन्त बोला—"और अगर इन चार बमों में से एक बम, एटम बम या हाइड्रोजन बम हुआ; तो तुम और तुम्हारा यह कारख़ाना और तुम्हारा यह ख़ूबसूरत शहर बम्बई एक क्षण में नष्ट हो जाएगा।"

बाबूराम ने ग़ुस्से से कहा—"हो जाय मुझे क्या; मैं तो इस गली सड़ी बदबूदार बस्ती में...." मगर वह अपना वाक्य पूरा न कर सका; उसकी आँखें अपने आप गली के सिरे पर घूम गयीं और उसने ज़ोर से साँस अन्दर खींची कि चबूतरे पर बैठे हुए दूसरे लोग भी उसी तरफ़ देखने लगे जिधर बाबूराम देख रहा था।

गली के सिरे पर से लड़कियाँ चली आ रही थीं, जवान, मुस्कराती धीरे-धीरे। आसमान की लाली पीछे थी जिनसे उनकी साड़ियों के रंग और भी निखर गये थे और उनके सर के आसपास लाल रोशनी घूमती हुई मालूम होती थी। वे इस दुनिया, कम से कम इस बस्ती की रहनेवाली मालूम न होती थीं। उनके चमकते चेहरे, उनकी सफ़ेद बिल्लौरी हँसी हवा में एक सफ़ेद फ़ाख़्ता की तरह डोलती हुई मालूम होती थी, और जब वे चबूतरे के क़रीब इतने आदमियों को देखकर ठिठक गयीं, तो गली के छोटे छोटे गड्ढों में उनकी साड़ियों के रंग इन्द्रधनुष की तरह फैल गये। यकायक एक क्षण के लिए वे सहम-सी गयी; फिर उनमें से एक ने, जो दूसरी से ज़्यादा होशियार मालूम होती थी, अपनी मोहिनी-मोहिनी पलकें झपका के पूछा—"छः नम्बर की झोंपड़ी कौन-सी है ?"

एक क्षण के लिए या शायद एक सदी के लिए किसी ने जवाब न दिया, फिर जमुना ने आहिस्ता से कहा—"वह मेरी झोंपड़ी है चार नम्बर की, उससे आगेवाली का नम्बर पाँच है, उससे आगे की झोंपड़ी छः नम्बर की है।" हौले-हौले क़दम बढ़ाते हुए, चबूतरे के क़रीब से बदन चुराते हुए वे दोनों लड़कियाँ साड़ी सँभालती हुईं आगे चली गयीं।

वह लड़की जिसने सवाल पूछा था, उसके बालों में बाबूराम ने देखा गुलाब का एक फूल लटका हुआ था; कितना अरसा हुआ उसने गुलाब का फूल नहीं देखा था, एक बेनाम-सी महक, उसके नथुनों में लहरा गयी, और वह सर से पाँव तक काँप उठा।

जसवन्त ने अपनी निगाहें लड़कियों से फेर लीं, और बाबूराम के चेहरे पर गाड़ दीं, वह आहिस्ता से बोला—"जहाँ इन्सान रहता है, वहाँ ख़ूबसूरती भी होती है, चाहे वह यह गली सड़ी बस्ती क्यों न हो।"

बाबूराम लाजवाब हो गया; उसने जसवन्त की तरफ़ हाथ बढ़ा के कहा—"वह काग़ज़ मुझे दो, मैं दस्तख़त कर देता हूँ।"

और किसी ने नहीं पहचाना था; लेकिन अकरम ने पहचान लिया था, इनमें एक रज़िया थी और दूसरी जिसने सवाल पूछा था वह रफ़िया थी। जैसा कि बाद में अकरम को मालूम हुआ, रफ़िया की हालत अच्छी न थी, रज़िया उसकी मदद कर रही थी; मगर फिर भी कब तक कोई किसी की मदद कर सकता है इस ज़माने में ? रफ़िया ने भिण्डी बाज़ार का कमरा छोड़कर यहाँ बस्ती में छः नम्बर की झोंपड़ी किराये पर ले ली थी और अब यहाँ अपनी अम्मा और अपनी स्वर्गीया बहन के पाँच बच्चों को लेकर आयी हुई थी; इस वक़्त वह रज़िया को साथ ले के झोंपड़ी देखने के लिए आयी थी। बस्ती में ऐसी ख़ूबसूरत औरतें, ऐसी ख़ूबसूरत साड़ियाँ, ऐसे ख़ूबसूरत रंग काहे को किसी ने देखे थे। वे लड़कियाँ सदियो के रंगीन स्वप्न की तरह अचानक इस बस्ती में प्रकट हो गयी थीं और किसी को विश्वास नहीं आता था। वे लोग बदबू, सड़ांध, बदसूरती, कमीनगी और घुटन से इस क़दर परिचित हो चुके थे कि एक दमकता चेहरा, एक साफ़-सुथरी साड़ी, गुलाब का महकता हुआ फूल भी इनके लिए अजनबी था। वह एक ऐसा ख़ूबसूरत क्षण था, जो शायद परियों की दुनिया से आया था।

नंग-धड़ंग बच्चे, गन्दे और शोर मचाते हुए बच्चे ! मैले-कुचैले बाल खोले हुए औरतें सूखे स्तनों से, रें–रें करते हुए बच्चों को दूध पिलाती हुई दर्जनों की संख्या में झोंपड़ी के सामने आ के खड़ी हो गयीं। यह ख़ूबसूरती विश्वास के योग्य न थी, यह क्षण इस ज़मीन का नहीं, रंगीन आसमान का टुकड़ा था।

बहुत देर तक लोग खड़े देखते रहे, देर तक रफ़िया अन्धेरी झोंपड़ी में रज़िया के साथ खड़ी उसकी दीवारों और छतों को देखती रही; मगर वहाँ देखने की चीज़ ही क्या थी ? यहाँ आठ रुपये किराया था, भिंडी बाज़ार की खोली का सत्ताईस रुपये था, फ़ैसला पहले हो चुका था। थोड़ी देर देखने और सोचने के बाद रफ़िया और रज़िया हौले-हौले झोंपड़ी से निकल गली में आहिस्ता-आहिस्ता चलती

हुई, साड़ी उठाकर कीचड़ से बचती हुई, अपने सुन्दर सैंडिलों से टप-टप करती हुई, गली के सिरे पर जिधर से आयी थीं उधर मुड़ गयीं। यह सब कुछ इतना अचानक, इतनी अजीब शीघ्रता से हुआ कि बस्ती के लिए विश्वास करना कठिन था कि अभी यहाँ कुछ क्षण पहले ख़ूबसूरती आयी थी, हुस्न उतरा था, गुलाब महका था, बहार जगमगाई थी !

वही तंग व अंधेरी गली थी, वही उसके कुरूप दाग़ थे, वही बदरंग दीवारें, वही बदबू, वही वीरानी सन्नाटा !

गली के दूसरे सिरे पर एक आदमी क़मीज़ पहिने हुए बैठा हुआ था, यकायक वह अपनी बीवी को ज़ोर-ज़ोर से पीटने लगा।

अकरम के सारे वदन में झुरझुरी-सी आयी, उसने घबड़ा कर आसमान की तरफ़ देखा।

मगर आसमान पर भी लाली ग़ायब हो चुकी थी, आसमान पर सिर्फ़ बादलों की कोरी राख बाक़ी रह गयी थी। इतने में जमुना अपने काँपते हुए हाथों में लालटेन जला के ले आयी और फ़ज़ल ने लालटेन उसके हाथ से लेकर नीम के पेड़ पर लटका दिया। रोशनी का एक मंडल-सा झोंपड़े पर पड़ने लगा। लोग, जो अब तक ख़ामोश थे, धीरे-धीरे बातें करने लगे। आओ, रोशनी आओ, कहीं से भी आओ !! मेरे वतन में आओ !!!

३०

शान्ति की अपील

इतवार को फ़िल्म स्टुडियो तो बन्द नहीं होते थे; लेकिन फ़िल्म कम्पनियों के दफ़्तर ज़रूर बन्द रहते थे, और अगर नहीं होते थे तो उन कम्पनियों के, जिनकी शूटिंग उस रोज़ किसी स्टुडियो में जारी थी। लेकिन नवभारत प्रोडक्शन का दफ़्तर, शूटिंग हो न हो, हमेशा खुला रहता था, सिर्फ़ बाहर का दर्वाज़ा ज़रा-सा बन्द कर दिया जाता। अन्दर हाल में दो बड़ी मेज़ों पर बड़े ज़ोर की रमी चलती थी। मैडम का टेबिल अलग था, सेठ वाँकड़िया का अलग था। मैडम की टेबिल पर आना-आना प्वाइंट का गेम होता था, सेठ वाँकड़िया की टेबिल पर शहर के बड़े-बड़े सट्टेबाज़ आते थे, वह आना-आना प्वाइंट को क्या ख़्याल में लाते, दो रुपये प्वाइंट तक तो वह क्रीकेट क्लब आफ़ इण्डिया में खेल सकते थे। इसलिए सेठ

बाँकड़िया ने अपनी टेबिल पर पाँच रुपये प्वाइंट की गेम रखी थी; ताकि कुछ तो मज़ा आये। उसका नतीजा यह हुआ कि औरतें चाहे वह लाखों कमानेवाली हिरोइनें क्यों न हों, कभी सेठ के टेबिल पर न खेलती थीं; वे मैडम के टेबिल पर ताश लेकर बैठ जातीं और उनके साथ दूसरे बड़े-बड़े कलाकार या सिलवर जुबली मनानेवाले डाइरेक्टर भी कभी-कभार शामिल हो जाते। रमी ग्यारह बजे दिन से शुरू होती और रात के ग्यारह बजे से पहले ख़त्म न होती। बीच में दोपहर का खाना, शाम की चाय, रात की व्हिस्की और खाना सभी कुछ चलता। सारी हवा सिगरेटों के धुएँ और शराब की बू से भर जाती, आँखें सिर्फ़ ताश के पत्तों पर लगी रहतीं। खाना, चाय, व्हिस्की, सिगरेट सिर्फ़ हाथों के ज़रिये होठों तक पहुँचते थे, आँखें उस वक़्त ऐसे मामले में बिल्कुल बेकार थीं, वे न शराब का रंग देख सकती थीं, न सिगरेट का ब्रान्ड, न चपाती की सूरत, वे सिर्फ़ ताश के पत्ते देख सकती थीं।

ऐसे मौक़े पर अकरम का शान्ति-सभा की अपील लेकर पहुँच जाना एक आश्चर्य से कम न था। बहुत से लोगों ने बुरा माना; मगर वे ताश के पत्तों में इस क़दर खोये हुए थे कि इस वक़्त उन्होंने खमोशी से उस अपील पर दस्तख़त कर देना ही सब से अच्छा समझा। अगर कोई दूसरा वक़्त होता तो वे अकरम से ख़ूब-ख़ूब जिरह करते, उससे सवाल पूछते और अकरम खुद ही सोच के आया था और चाहता भी था कि सवाल और जवाब हों, बातचीत में रंग आये, बहस में बात खुल के सामने आये, अच्छी तरह जान लेने के बाद वे लोग दस्तख़त करें। उसने दो-एक बार इस मामले पर रोशनी डालने की कोशिश भी की; मगर ताश खेलने वाले, रमी के रसिया, कहाँ इस वक़्त राजनीतिक बात सुनने वाले थे। 'हाँ ! हाँ ! ठीक है।' कहकर जल्दी से वे दस्तख़त कर के अपना पीछा छुड़ाते गये। अकरम बहुत निराश हुआ; उसे इस बात की उम्मीद न थी कि परिस्थितियाँ यह सूरत धारण करेंगी। यकायक उसका जी चाहा कि वह इन दस्तख़तों का कराना बन्द कर दे और इस विषय को फिर किसी दूसरे रोज़ के लिए टाल दे। मगर मुसीबत तो यह थी कि उसे इतवार के सिवाय और किसी दिन छुट्टी न मिलती थी, सिर्फ़ इतवार को डाकख़ाना बन्द होता था; और इतवार को यहाँ हर रोज़ सेठ बाँकड़िया के दफ़्तर में रमी होती थी। और यही एक जगह थी, जहाँ इन्डस्ट्री के लगभग सब बड़े-बड़े कलाकार इकट्ठे मिल जाते थे। वह निराश हो के अपील को तह कर के अपनी जेब में रखने की सोच ही रहा था कि इतने में परिस्थितियों ने पलटा खाया, और सेठ बाँकड़िया ने ताश के पत्ते मेज़ पर ज़ोर से फेंक कर अपील पर दस्तख़त करने से इन्कार कर दिया।

"मैं कहता हूँ," सेठ बाँकड़िया मेज़ पर मुक्का मारकर बोले—"इससे युद्ध हज़ार दर्जा अच्छा है।"

हर शख़्स सेठ बाँकड़िया की तरफ़ देखने लगा, फ़िल्म इन्डस्ट्री का सब से बड़ा सेठ इस वक़्त राजनीतिक मसले पर अपनी राय से दुनिया को प्रतिष्ठित कर रहा था। हर शख़्स ने अपने पत्ते मेज़ पर रख दिये और ग़ौर से सेठ बाँकड़िया की तरफ़ देखने लगा।

अकरम ने पूछा—"क्यों ? युद्ध शान्ति से क्यों अच्छा है ?"

"अनुभव, मेरे बच्चे अनुभव !" बांकड़िया ने अकरम की तरफ़ मित्रवत् भाव धारण करते हुए कहा; जो अकरम को बहुत बुरा लगा, मगर वह चुप होके सेठ की बातें सुनने लगा।

"युद्ध से पहले मैं क्या था, तुम सब जानते हो। लड़ाई के दिनों में मुझे बारह लाइसेंस तस्वीरें बनाने के लिए मिलते थे। हर लाइसेंस के दाम मार्केट में सवा लाख-डेढ़ लाख रुपये से कम नहीं थे। जब तक लड़ाई रही मैंने लाखों रुपया कमाया लेकिन जब लड़ाई बन्द हुई, हुकूमत ने लाइसेंस देने बन्द कर दिये। युद्ध के दिनों में मैंने तीन स्टुडियो खरीदे, जंग के बाद मैंने एक नई गाड़ी भी नही खरीदी। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मुझे युद्ध ने बहुत फ़ायदा पहुँचाया है, मैं चाहता हूँ दुनिया में फिर से युद्ध हो, फिर से फ़िल्म के लाइसेंस चलें, मेरी जेब हरी हो। मैं बिज़नेसमैन हूँ, बिज़नेस की बात करता हूँ बेटा ! बोलो क्या कहते हो ?" अकरम ने कहा—"सेठ साहब आप जैसे कितने लोग हैं जिन्होंने जंग में लाखों कमाये हैं, उँगलियों पर गिने जा सकते हैं।" बाँकड़िया ने कहा—"एक मुझ ही पर क्या निर्भर है, इन कलाकारों से पूछो तुम्हारे सामने मेज पर बैठे हैं। राजलता जंग से पहले पाँच हज़ार एक फ़िल्म में काम करने का लेती थी; अब पचास हज़ार से कम में नहीं आती। शमशाद से पूछो—सात हज़ार लेती थी अब सत्तर से कम की बात मुश्किल से करती है। दिलीपचन्द से पूछो, देवकुमार से पूछो। ये सब लोग तुम्हारे सामने बैठे हैं। मेहता जी से पूछो ये भी मेरी तरह फ़िल्म प्रोड्यूसर हैं। जंग से पहले जिस इलाक़े का तीस हज़ार रुपया एक फ़िल्म का मिलता था; अब उसी का जंग के ज़माने में पछत्तर हज़ार मिलने लगा। शान्ति हुई तो फिर तीस हज़ार बल्कि पच्चीस हज़ार ही मिलने लगेगे, बताओ शान्ति ठीक है कि युद्ध ?"

मेहता जी ने मुस्करा कर कहा—"इस हिसाब से तो युद्ध ही अच्छा। यही मैं भी कहता हूँ।"

अकरम ने कहा—"आपकी तरह सोचने वाले कितने आदमी हैं, दो, जो उँगलियों पर गिने जा सकते हैं।"

सेठ भगतलाल ने कहा—"इस मामले में मैं अकरम से सहमत हूँ। जंग के ज़माने में इन प्रोड्यूसरों ने हम डिस्ट्रीब्यूटरों का ख़ून चूसा है, कितने ही डिस्ट्रीब्यूटर युद्ध में दिवालिया हो गये।"

सेठ कुत्तरचन्द ने कहा—"हां, यह तो ठीक है।"

अकरम ने मुस्करा के कहा—"दो के विरोधी दो।"

राज बोली, "कुछ भी हो जंग बुरी चीज़ है; मैंने वह लड़ाई तो नहीं देखी; लेकिन मेरा ख़ान्दान बहुत बड़ा है; हर रोज़ कभी न कभी सर फुटव्वल हो जाती है, बड़ी बुरी चीज़ है, यह लड़ाई।"

शमशाद बोली—"मुझे शान्ति की ज़िन्दगी पसन्द है। मुझे याद है जब जापानियों के बम कलकत्ते पर गिरे थे. तो मैं बम्बई से भागने की सोच रही थी। यह सही है, जंग में मेरी कला की क़ीमत बहुत बढ़ी; मैंने बम्बई में कई बिल्डिंगें भी ख़रीद लीं; मगर जिन दिनों कलकत्ते में बम पड़े उन दिनों मैं सोचती थी कि मेरी जायदाद का क्या होगा! सुनती हूँ आजकल ऐसे ऐसे बम बन रहे हैं, राज तू ही बता रही थी न मुझे, कि एक बम में सारा शहर भक से उड़ जाता है। ना, ना, बाँकड़िया सेठ, लाखों रुपिया कमाने का फ़ायदा क्या जब कमा के आदमी ज़िन्दा ही न रहे!"

"चार!" अकरम ने कहा।

फिर अकरम दर्वाज़े पर खड़ा होके चपरासी की तरफ़ मुड़ा और उससे कहने लगा—"फड़के तुम भी कुछ कहोगे?"

फड़के चुप रहा और ख़ामोशी से बांकड़िया सेठ यानी अपने मालिक की तरफ देखने लगा।

सेठ बांकड़िया ने मुस्करा के कहा—"हाँ हाँ भइ, आजकल ग़रीबों का ज़माना है; हमारी हुकूमत भी सोशलिस्ट हो रही है, तुम भी कहो श्री फड़के।"

फड़के का चेहरा इस व्यंग्य से लाल हो गया; मगर उसने अपने-आप पर क़ाबू पा लिया—आहिस्ता से बोला—"जब आप इतने बुद्धिमान आदमी बैठे हैं, मैं एक नासमझ मूर्ख किसान क्या कहूँ? लड़ाई में वे लोग मेरे दोनों बड़े भाइयों को फ़ौज में ज़बरदस्ती भर्ती करके ले गये। बड़ा भाई तो मारा गया, छोटा भाई अन्धा हो गया; मैं अगर गाँव से भाग के यहाँ न आता तो शायद इस वक़्त यह बात कहने के लिए ज़िन्दा भी न होता।"

"कौन-सी बात?" सेठ बाँकड़िया ने पूछा।

"आदमी रुपये के बग़ैर ज़िन्दा रह सकता है; ज़िन्दगी के बग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकता।"

फड़के इतना कह के ख़ामोश हो गया, सारे हाल में सन्नाटा छा गया; हाल में

बैठे हुए ताश खेलने वाले नामी लोगों ने सोचा भी न था कि मामूली अनपढ़ गाँव से आया हुआ चपरासी ऐसी सूझ-बूझ की बात करेगा।

अकरम ने कहा—"पाँच। और कोई बात करेगा ?"

मैडम बोली—"तुमने सेठ की लाखों रुपयेवाली बात का जवाब नहीं दिया है।"

अकरम ने कहा—"फड़के ने जवाब दे दिया है; मैं उससे सुन्दर जवाब नहीं दे सकता; लेकिन मैं एक सवाल का जवाब ज़रूर सेठ से पूछना चाहूँगा—यह जो लाखों रुपये सेठ ने इकट्ठे किये हैं, क्या यह आसमान से उतरे हैं ? क्या सेठ ने कोई टकसाल खोल रखी है ? कहाँ से आये हैं ? आख़िर किसी ने मेहनत की होगी, किसी ने खेत में हल चलाया होगा, किसी ने कारखाने में कपड़ा बुना होगा, किसी ने भट्ठे में ईंटें लगाई होंगी, किसी ने दफ़्तर में सुबह से शाम तक काम किया होगा; और फिर दस-दस आने कर के सिनेमा का टिकट ख़रीदा होगा। क्या यह उचित है कि पब्लिक का लाखों रुपया एक आदमी की तिजोरी में आ के बन्द हो जाये ? एक लाख आदमी भूखे रहें और एक आदमी के पास कई लाख रुपया इकट्ठा हो जाय। मैडम ! क्या आप नहीं देख सकतीं कि सेठ युद्ध इसलिए चाहते हैं, ताकि आराम से लाइसेंस ले के लाखों आदमियों की ज़िन्दगी का ब्लैक-मार्केट कर सकें ?"

मैडम बोली—"तो तुम मानते हो कि सेठ को जंग ने फ़ायदा पहुँचाया है।"

"हाँ !" अकरम ने स्वीकार किया।

मैडम जीत के लहज़े में बोली—"तो लाओ, मेरे दस्तख़त काट दो, मैंने उस वक़्त रमी के रश में दस्तख़त कर दिये थे, मेरा ध्यान पत्तों में था।"

अकरम ने मैडम के दस्तख़त पर स्याही की लकीर फेर दी; फिर उसने मेज़ पर बैठे हुए दूसरे लोगों से मुस्करा कर कहा—"और कोई अपना दस्तख़त वापस लेना चाहता है ?" कोई नहीं बोला।

अकरम ने काग़ज़ तह करके जेब में रख लिया; फिर सेठ की तरफ़ देखकर बोला—"सेठ मैं फिर आऊँगा तुम्हारे पास; क्योंकि मुझे यक़ीन है कि तुम मेरे काग़ज़ पर दस्तख़त करोगे।"

"क्यों ?" सेठ ने पूछा।

"क्योंकि मुझे यक़ीन है कि यह वह काग़ज़ का टुकड़ा है; जो अमीर और और ग़रीब, नेक और बद, फरिश्ते और शैतान दोनों को अपनी ज़िन्दगी गुज़ारने; अपनी क़िस्मत आज़माने और अपने अपने नतीजे तक पहुँचने का मौक़ा देता है; जिस तरह का भी वह नतीजा हो, इससे भी गरज़ नहीं; लेकिन जो जंग अब सामने नज़र आ रही है, उसे जैसे भी हो रोकना है; वह अमीर और ग़रीब, नेक और बद,

फरिश्ते और शैतान में कोई भेद बाक़ा नहीं रखेगी। हम सब मर जायेंगे; मुझे इस बात का भी यक़ीन है कि अगली जंग में तुम लाखों भी कमा न सकोगे; बल्कि पिछली दो जंगों में जो लाखों तुमने कमाये हैं; वे भी हाथ से खो दोगे। याद करो हिरोशिमा ! कोई नहीं कह सकता हवा का रुख़ किधर बदलेगा ? कोई नहीं कह सकता सेठ ! एक दिन—एक दिन यह बम्बई हिरोशिमा से ज़्यादा बर्बाद बन जाये। एक बम और तुम्हारी सारी बिल्डिगें और सारे स्टुडियो एक क्षण में ग़ायब ! और उनके साथ तुम भी। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ सेठ मैं फिर आऊँगा क्योंकि इस अपील पर तुम जैसे ब्लैक मार्केटिए के भी दस्तख़त लेने मंज़ूर हैं।"

बांकड़िया ने हँसते हुए सेठ भगत लाल को कुहनी मार के कहा—"सुनते हो ! साला मुझे कैसे-कैसे ख़िताब दे रहा है, बस एक इसको मैंने छूट दे रखी है।"

"क्यों ?" सेठ भगतलाल ने थोड़ा नाराज़ होकर पूछा।

"मालूम नहीं क्यों ? शायद कभी-कभी किसी दूसरे के मुँह से अपने बारे में सच सुनना अच्छा मालूम होता है।" बांकड़िया ने स्वीकार किया।

फिर उसने मुड़कर जाते हुए अकरम को आवाज़ दे के कहा—"ऐ अकरम ! इधर आ, कम्बख़्त ! शायद तू ठीक कहता है, अगली जंग में कुछ नहीं बचेगा मेरे लिए, बता कहाँ दस्तख़त करूं ?"

जब अकरम काग़ज़ जेब में डाल के बाहर की तरफ़ चला; तो शमशाद ने राज के कान में चुपके से कहा—"हाय ! मुझे बड़ा अच्छा लगता है यह अकरम ! जब बात कर रहा था तो कैसा मासूम भोला-सा लग रहा था और कितना प्यारा; बिल्कुल एक प्यारे आइरिश पूडल की तरह !"

राज ने दबे-दबे लहज़े में उसे जवाब दिया—"कहो तो उसे सन्देश भेज दूं कि तुम किसी को बहुत अच्छे मालूम होते हो !"

शमशाद ने आह भरके कहा—"नहीं राज ! उस इशरत की घटना के बाद दादी अम्मा बहुत सम्भल गयी हैं। मेरा ख्याल है मैं एक आइरिश पूडल ही ख़रीद लूंगी।" और जब अकरम हाल के बाहर हो गया; तो उसे जसवन्त ने, जो दर्वाज़े के पीछे खड़ा-खड़ा यह सब बातचीत सुन रहा था; बड़ी हैरत से उसकी तरफ़ देख के कहा—"तुमने उसे ऐसी खरी-खरी सुनाई कि मेरा ख्याल था वह तुम्हे खड़े-खड़े निकलवा देगा।"

अकरम ने कहा—"अगर मैं उसे खरी-खरी न सुनाता तो वह कभी दस्तख़त न करता; मैं उसे ख़ूब जानता हूँ।"

सत्यराय ने उसकी पीठ पर थपकी देके कहा—"वाह रे मेरे शेर ! झण्डे गाड़

दिये तूने आज ! तूने झण्डा हिमालिया से उठाया और एशिया पर गाड़ दिया, कैसे तूने उस सेठ को रखा, बांधा, ताना, खींच के छोड़ दिया कि जाओ बेटा लटके रहो !"

मनजीत सिंह ने पूछा—"अच्छा अब कहाँ चलेंगे ?"

अकरम ने कहा—"पास ही राजमहल स्टुडियो है; देखें अगर वहाँ किसी की शूटिंग हो रही हो तो दस्तख़त करा लेंगे।"

३१

जोशी जी ने माफ़ी माँगी

अकरम जिस वक़्त राजमहल स्टुडियो में अपने साथियों को ले कर पहुँचा, उस वक़्त जोशी जी की पिक्चर की शूटिंग हो रही थी, मगर संयोग से शूटिंग बन्द थी; क्योंकि जोशी जी और स्वदेश परांजपे—एक लाइटमैन के बीच झगड़ा चल रहा था। बड़ी मामूली-सी बात थी। जोशी जी ने सेट पर एक नाचनेवाली लड़की रोज़ी को छेड़ दिया था और इस क़िस्म की छोटी-मोटी हरकतें स्टुडियो में अक्सर हो जाया करती थीं, और लोग आम तौर से इस तरफ़ से आँख बन्द करके काम करते थे; मगर आज स्वदेश परांजपे बिगड़ बैठा था। वह एक मामूली लाइटमैन था, रोज़ी का चाहनेवाला भी न था, फिर उसे बीच में बोलने का क्या हक़ था ? जोशी जी बहुत बिगड़ रहे थे।

"साला दो टके का आदमी ! हम पर रुआब करता है।" जोशी जी ने बम्बइया ज़बान में कहा।

स्वदेश परांजपे ने कहा—"साला दो टके का हो या चार टके का हो, तुमको इससे क्या ? हम तुमको बोलता रे, तुम डाइरेक्टर रे, तो सेट पर शराफ़त से काम करो, यह साला स्टुडियो है कोई पवनपुल का कोठा नहीं है।"

"यह रोज़ी तुम्हारी मा लगती है ?" जोशी जी ने ग़ुस्से से पूछा।

स्वदेश परांजपे बोला—"यह न हमारी मा है, न बहन, न दोस्त ! हमारी कुछ भी नहीं है, फिर भी औरत तो है, औरत की इज्ज़त करना माँगता हमको।"

"बड़ा आया इज्ज़त करनेवाला। साले अगर यह मुझे चाहती है तो तू बीच में बोम मारनेवाला कौन होता है ?"

"सवाल मर्ज़ी का नहीं है, सवाल उसूल का है, कल को यह कुछ और के लिए तैयार हो जायगी तो क्या हम उसकी इजाज़त देंगे ? कभी नहीं।"

स्वदेश परांजपे ने बड़ी मज़बूती से इन्कार में सिर हिलाया।

"तुम कौन होते हो, हुक्म देनेवाले ?" जोशी जी ने अपनी ठोढ़ी आगे बढ़ा के पूछा। उसकी नेवले की-सी आँखों में गुस्से की लहरें दौड़ गयीं। "मैं इस सेट का डाइरेक्टर हूँ जो चाहे कर सकता हूँ, जिसे चाहे कान पकड़कर बाहर निकाल सकता हूँ, गेट आउट, यू ब्लडी स्वाइन !" जोशी जी ने अँग्रेज़ी में कहा।

"यू ब्लडी डाग !" स्वदेश परांजपे ने भी उसी लहज़े में अँग्रेज़ी में तुर्की बतुर्की कहा। जोशी जी और उसका असिस्टेंट भट्टाचारिया और दूसरे लोग आश्चर्य में पड़ गये। एक लाइटमैन अँग्रेज़ी बोल रहा था, उनके बराबर अँग्रेज़ी ! जोशी जी ने एक नई नज़र से स्वदेश परांजपे की तरफ़ देखा।

स्वदेश परांजपे एक खाकी नेकर, खाकी क़मीज़ पहने अपनी जगह पर अब चुप खड़ा था। अकरम ने उसकी घनी भौंहों के नीचे की चमकती आँखों को देखा, उसके उभरते हुए मराठी गालों के नीचे मज़बूत जबड़े को देखा, गर्दन के नीचे के मज़बूत शरीर को देखा। स्वदेश परांजपे का रंग खुलता हुआ गेहुँआ था, जो अब गुस्से से लाल हो रहा था।

मगर अकरम देख रहा था कि स्वदेश अपने आप पर काबू पाने की बहुत कोशिश कर रहा है।

जोशी जी बोले—"मैं बतौर एक डाइरेक्टर के तुम्हें हुक्म देता हूँ सेट से बाहर चले जाओ।"

स्वदेश परांजपे एक क्षण के लिए रुका फिर वह घूम कर सेट से बाहर चला गया।

जोशी जी ने कैमरामैन से कहा—"लाइट फिक्स करो जल्दी से।"

कैमरामैन ज़ोर से चिल्लाया—"वह सोलर इधर लाओ, बेबी इधर खिसकाओ, भांडुप फिक्स करो।" मगर किसी लाइटमैन ने कैमरामैन के हुक्म का पालन नहीं किया, और सब लोग सिर झुकाए रोशनियों के पास से खिसक आये और आहिस्ता आहिस्ता चलते हुए सेट के बाहर चले गये।

शूटिंग बन्द हो गयी।

रफ़िया और रज़िया, रोज़ी, सुलोचना, मैरिया, दिलरुबा और दूसरी नाचने-वाली लड़कियाँ और उनका उस्ताद बाबूलाल सब हैरत से खड़े के खड़े रह गये। यकायक रफ़िया को मालूम हुआ कि स्टुडियो का काम चलानेवाला सिर्फ़ डाइरेक्टर नहीं होता, एक मामूली लाइटमैन भी होता है; जो दिन-रात स्टुडियो की रोशनियाँ

इधर से उधर और उधर से इधर ले जाता है। वह अगर चाहे तो एक मिनट में स्टुडियो बन्द करा सकता है।

घूमे खुद एक मजदूर था, इसलिए उसे इस घटना में बड़ी दिलचस्पी पैदा हो गयी। स्टेज नम्बर एक के बाहर जहाँ स्वदेश परांजपे और दूसरे उसके लाइटमैन साथी खड़े थे, वह खुद अपना परिचय कराने के लिए चला गया और उन सबसे बातें विस्तार से पूछने लगा। स्वदेश परांजपे कहने लगा—"एक तो तीन माह तक पगार नहीं मिलती है, दूसरे हम लोग इनकी बदमाशी भी देखें, नहीं चलेगा।" स्वदेश परांजपे ने बड़ी मज़बूती से सिर हिलाया, "हमको उसकी प्राइवेट लाइफ़ से कोई मतलब नहीं है, मगर यह इधर सेट पर अपन को किसी की प्राइवेट लाइफ़ नहीं दिखा सकता! नहीं चलेगा।"

उसने फिर दूसरी बार बड़ी मज़बूती से सिर हिलाया—"साला हलकट!" दूसरा लाइटमैन बोला—"मैं साले का सिर तोड़ देता, बड़ा आया कहीं का, डाइरेक्टर!"

स्वदेश नर्मी से बोला—"सिर तोड़ने से काम नहीं चलेगा, सेट पर यह गन्दा धन्धा बन्द होना चाहिए, बस।"

घूमे ने पूछा—"क्या तुम्हारी युनियन है?"

"हाँ!" दूसरा लाइटमैन बोला—"अक्खा बम्बई की युनियन है, हमारा स्वदेश उसका वाइस प्रेसीडेंट है।"

दूसरे लाइटमैन ने बड़े अभिमान से स्वदेश की तरफ़ देखकर कहा।

अकरम ने स्वदेश से हाथ मिलाया—"तुमने बहुत अच्छा काम किया, इन लड़कियों की बहुत बुरी हालत थी।"

स्वदेश ज़रा-सा मुस्कराया।

इतने में उन लोगों ने देखा कि कोने के मेक-अप रूम से बहुत सी लड़कियाँ निकलीं और धीरे-धीरे उनकी तरफ़ आ गयीं, जिधर ये लोग खड़े हुए थे। बहुत सी लड़कियाँ लज्जा अनुभव कर रही थीं, और एक दूसरे को ठोका दे के आगे चलने पर मज़बूर कर रही थीं या एक दूसरे के पीछे हो के हँसने की कोशिश कर रही थीं, जैसे लड़कियाँ ऐसे मौक़ों पर अक्सर किया करती हैं।

रफ़िया और रज़िया उन सब में आगे थीं।

रज़िया बोली—"आपने उस वक़्त बहुत अच्छा किया। हालांकि हमें खुद यह लड़ाई लड़नी चाहिए थी। मैं तो उन लड़कियों को लाख समझाती हूँ, मगर बड़ी डरपोक हैं।"

रोज़ी रुआसी-सी एक कोने में खड़ी थी, अब वह हिम्मत कर के आगे आयी उसने स्वदेश से हाथ मिलाया मगर कुछ कहा नहीं, उसकी आँखों में आँसू थे। स्वदेश ने कहा—"तुम हमारी बहन हो, हमारी ही तरह मज़दूर हो, हमारी ही तरह दिन रात ख़ून-पसीना एक कर के थका देनेवाले स्टुडियों में काम कर के अपनी रोटी कमाती हो। उसके ऊपर से अगर कोई तुम्हारी बेइज्ज़ती करे तो तुम को खुद मना करना चाहिए। ऐसा भी क्या ?" स्वदेश के लहज़े में बड़ी मुलायमियत थी।

रज़िया ने उसकी बाज़ू को ठोका मार के कहा—"अबकी ऐसा ही होगा, हमारी आँखें खुल गयी हैं, हमने देख लिया कि अकेली-अकेली अलग-अलग रह कर दूसरों की शराफ़त पर भरोसा करने से कुछ न होगा, हमने अभी मेक-अप रूम में अपनी युनियन बनायी है और रफ़िया को अपना सेक्रेटरी भी चुन लिया है और अब जब कभी कोई ऐसी शरारत होगी हम सब की सब वाक आउट कर जायेंगी।"

"बस।"

स्वदेश मुस्कराने लगा, उसने रफ़िया से कहा—"जिस स्टुडियों में तुमसे कोई गड़बड़ करने की कोशिश करे मुझसे कहो, वहाँ के किसी भी लाइटमैन से कहो, साले हम स्टुडियो में हड़ताल करा देंगे, मगर यह बदमाशी नहीं चलने देंगे, नहीं चलेगा ! ख़त्म ! !"

अकरम को स्वदेश का ख़त्म बहुत पसन्द आया, उसने स्वदेश से पूछा—"तुम कहाँ रहते हो ?"

"माहिम काज़वे की झोपड़ियों में।" स्वदेश ने उसे बताया।

"पढ़े-लिखे मालूम होते हो ?"

स्वदेश चुप रहा।

उसके एक साथी ने बड़े अभिमान से अकरम को बताया—"हमारा स्वदेश मैट्रिक तक पढ़ा है।"

इतने में रज़िया ने कहा—"चलो लड़कियों ! मेक-अप उतारो, घर चलें।" थोड़े अरसे में यह ख़बर सारे स्टुडियो में फैल गयी, कि न सिर्फ़ लाइटमैनों ने बल्कि नाचनेवाली लड़कियों ने भी हड़ताल कर दी है।

जोशी जी का असिस्टेन्ट भट्टाचारिया दौड़ता-दौड़ता उनके पास आया, हाँफते हुए बोला, "रज़िया बाई, रज़िया बाई ! क्या ग़ज़ब कर रही हो, सेट लगा पड़ा है। आज काम ख़त्म न हुआ तो फिर लगवाना पड़ेगा, दस हज़ार का नुकसान हो जायेगा।"

"हमसे क्या कहते हो, अपने उस डाइरेक्टर जोशी गंजे से कहो। काहे को हमारी लड़की को छेड़ा था।" रज़िया ने कहा।

रफ़िया बोली—"अब की जाने दो, जोशी दिल में बहुत शर्मिन्दा है।"

रज़िया ने अपनी उँगली नचाते हुए कहा—"दिल में शर्मिन्दा होने से काम नहीं चलेगा, सब के सामने माफ़ी मागनी पड़ेगी। सेट पर जितने आदमी मौजूद थे, जिनके सामने जोशी जी ने यह बुरी बदमाशी की, उन सबके सामने उन्हें रोज़ो के पांव छू कर माफ़ी मांगनी पड़ेगी। जाओ अपने डाइरेक्टर से कह दो।"

भट्टाचारिया मुँह लटकाए हुए जोशी जी के पास चला गया, उनके जाने के बाद लड़कियों ने ज़ोर से ताली बजाई और अपनी ताक़त को महसूस करके ख़ुश बच्चों की तरह चंचल और हँसी से भरपूर नज़र आती थीं। थोड़ी देर के बाद उन्होंने ताली बजा बजा कर गाना और नाचना शुरू किया। स्टेज नम्बर एक के हाल में सारे लाईटमैन और दूसरे बहुत से लोग जमा हो गये, मालूम होता था स्टुडियो में स्ट्राइक नहीं, मेला है। कोई एक घंटे के बाद भट्टाचारिया बड़ा उदास सा मुँह बनाए उस भीड़ के क़रीब आया। "अन्दर चलिए, जोशी जी माफ़ी मांगने के लिए तैयार हैं।"

भीड़ ने ख़ुशी के नारे बुलन्द किए, टोपियाँ उछलीं, लड़कियों ने नाच का आख़िरी चक्कर ज़ोर से ख़त्म किया, फिर सब लोग अन्दर सेट की तरफ़ भागे।

अन्दर सेट पर जोशी जी सिगरेट पर सिगरेट पी रहे थे, उनके क़रीब कैमरा-मैन और उसका असिस्टेन्ट खड़े थे, और बाबूलाल डांस मास्टर। तमाम लाइटमैन और नाचने वाली लड़कियाँ और दूसरे भी कई तमाशाई अन्दर आ गये और सब ख़ामोशी से खड़े हो गये, देखें अब जोशी जी क्या करते हैं? जोशी जी की भौंहें तनी हुई थीं, उनके माथे पर पसीने की बूँदें आ रही थीं, उन्होंने सिगरेट को ज़ोर से फ़र्श पर फेंक कर उसे ज़ोर से अपने जूते से मसल दिया, रूमाल निकाल कर अपने माथे से पसीना साफ़ किया, फिर कहा—"हाँ, मेरी ग़लती थी, मुझे माफ़ कर दिया जाय।" फिर वह एकाएक आगे बढ़े और उन्होंने रोज़ी के पांव छू लिए—"अब ज़िन्दगी भर मैं कभी ऐसी हरकत नहीं करूँगा।"

जोशी की आवाज़ में दृढ़ता थी, उसकी आँखों में आँसू थे, वह स्वदेश की तरफ़ मुड़ा और उससे कहा—"मैंने तुम्हें गाली दी।"

"और मैंने तुम्हें।" स्वदेश ने अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए कहा।

"हाथ मिलाओ।" जोशी जी ने हाथ आगे बढ़ाया, स्वदेश ने बड़ी मज़बूती से हाथ मिलाया, सारे सेट पर तालियों की गूँज सुनाई दे गयी। कैमरामैन ने चिल्ला के कहा—"हाँ, वह रायफ़ल इधर लाओ, उस छज्जे पर भांडुप मारो, वह स्पाट किधर है?"

लाइटमैन बत्तियाँ इधर स उधर ले जाने लगे।

साउन्ड ने नाच के गीत का प्लेबैक शुरू किया। लड़कियाँ पांव से ताल देने लगीं।

काम शुरू हो गया।

स्टुडियो से बाहर आके सत्यराय ने हाथ ऊँचा करके ज़ोर से चिल्ला के कहा—"तुम नहीं जानते आज हमारी इन्डस्ट्री में कितनी महान् क्रान्ति ने जन्म लिया है।"

यकायक अकरम को मिर्ज़ा जी याद आ गये, वह जो पाकिस्तान चले गये थे, उनकी सब बातें, उनकी थकन, मायूसी, घबड़ाहट, ख़ुद उनका हाथों में सिर पकड़ कर बैठ जाना। रास्ता ? रास्ता कहाँ है ? यकायक अकरम के दिल में बहुत सी बातें साफ़ हो गयीं। अब उसे यकायक मालूम हो गया कि रास्ता किधर से जाता है। पहले उसका ख्याल था कि रास्ता शायद बड़े बड़े लोग उसे बताएँगे, यकायक उसे मालूम हो गया कि यह रास्ता तो फ़िल्म के बहुत मामूली लोगों के दिलों और ज़िन्दगियों से हो के गुज़रता है, एक लाइटमैन, एक नाचनेवाली, एक फ़िल्म एक्स्ट्रा, दर्वाज़े पर पड़ा हुआ चपरासी.....। धूमे ने उससे कहा—"यह बहार ही और है, यह हालत ही और है।"

"क्या ?" अकरम ने पूछा।

"यह सब कुछ जो हो रहा है, किसने इन्हें बताया था ? हम लोग तो अलग इनसे रहे, कभी इन लोगों से बात भी नहीं की। मौक़ा ही नहीं मिला, मगर यह तो वातावरण में ही है, तुम इस तरह के विचार रखने वालों को क़ैद कर सकते हो, इस पूरी हवा को कैसे बन्दी बनाओगे ?"

३२

विलायत बेगम मर गयी !

पैदल चलते हुए वे लोग अभी बहुत दूर न गये होंगे कि एक टैक्सी उनके पास आके रुकी और किसी ज़नानी आवाज़ ने कहा—"मिस्टर अकरम !"

अकरम ने सर उठाकर देखा—रफ़िया थी।

"मिस्टर अकरम" रफ़िया बोली—"विलायत बेगम को तो आप जानते होंगे, वह जो आपकी पिक्चर में काम कर रही थी शहर के हास्पिटल में बहुत बुरी हालत में बीमार पड़ी है, उसे देखने चलिएगा ?"

अकरम ने टक्सी के अन्दर निगाह डाली; पीछे की सीट पर रफ़िया के साथ

रज़िया और रोज़ी बैठी थीं। अकरम ने अपने साथियों से इजाज़त ली और दर्वाज़ा खोलकर आगे की सीट पर बैठ गया।

"टैक्सी जल्दी !"

अकरम ने मुड़ के पूछा—"क्या हुआ था उसे ?" लड़कियों ने शर्म से मुँह फेर लिया; किसी ने कोई जवाब न दिया। अकरम कुछ-कुछ तो समझ गया, फिर उस की बुद्धि में विलायत बेगम से उसकी आख़िरी मुलाकात उभर आयी और उसने उन्हें वह घटना सुनायी, कि किस तरह वह इशरत की अम्मा के लिए सौ रुपये मनीआर्डर करने के लिए आयी थी। इशरत का नाम सुनते ही अकरम ने देखा रफ़िया ज़रा चौंकी फिर उसका रंग फ़क़ हो गया; मगर वह कुछ समझ न सका। उसे यह बात अजीब सी मालूम हुई; लेकिन उसने उसकी तरफ़ ज़्यादा ध्यान नहीं दिया।

रोज़ी बोली—"वह दिल की बड़ी नेक है; मगर—" और चुप हो गयी।

थोड़ी देर ख़ामोशी रही, फिर रफ़िया बोली—"आप आजकल कोई पिक्चर नहीं बना रहे हैं ?" वह सब जानती थी; फिर भी उसने यह सवाल पूछा।

"नहीं !"

"क्यों ?"

"वे, जिन लोगों के हाथ में दौलत की थैलियाँ हैं; मुझे मेरी मर्ज़ी का सब्जेक्ट नहीं लेने देते, इसलिए।" अकरम ने हँसकर कहा। "इसलिए अब मैं दादर पोस्ट आफ़िस के बाहर ख़त-नवीसी करता हूँ।"

रफ़िया ने आश्चर्य से पूछा—"आप ख़ुश हैं, अपने इस काम से ?"

"उतना ही ख़ुश जितना कोई उस हालत में रह सकता है।"

रोज़ी बड़ी हैरत से अकरम की तरफ़ देखने लगी; मगर कुछ बोली नहीं, उसके उभरे हुए रसीले होंठ सचमुच इस क़दर ख़ूबसूरत थे कि किसी मर्द को पागल कर सकते थे। अकरम ने सोचा कि रोज़ी की बड़ी-बड़ी चमकदार आँखों में कितनी तरावट है; जैसे आदमी जुलाई की तपती हुई लू को छोड़कर किसी ठण्डे सोते के किनारे आ बैठे।

अस्पताल में विलायत बेगम के कमरे के बाहर एक बेन्च पर बेबे, अब्बा जलालुद्दीन, शफ़ी और अमीरअली बैठे थे; परेशान हाल, पिचके हुए, मुर्दा और उदास। मगर उनमें इशरत कहीं नज़र न आया। अकरम को बड़ी हैरानी हुई; मगर बाद में उसे शफ़ी से मालूम हुआ कि विलायत बेगम के अस्पताल में दाख़िल होते ही उन लोगों ने इशरत को घर से निकाल दिया था; मगर फिर भी—अकरम ने सोचा—इशरत को यहाँ आना चाहिए था। थोड़ी देर तक वे सब लोग बाहर खड़े बेबे

और उनके घर के दूसरे लोगों से बातें करते रहे और विलायत बेगम के स्वास्थ्य के बारे में पूछते रहे और बेहद अफ़सोस करते रहे। फिर जब अस्पतालवालों की तरफ़ से कमरे के अन्दर जाने की इजाज़त मिल गयी; तो उसके इशारे पर वे सब लोग एक-एक करके आहिस्ता-आहिस्ता अन्दर चले आये। एक ऊँचे सफ़ेद बुर्राक़ बिस्तर पर विलायत बेगम बेहोश पड़ी थी, उसकी आँखों के नीचे गहरे गड्ढे थे और उसके गाल नीले थे। उसे अभी अभी आक्सीजन दी जा चुकी थी; लेकिन उसका मुँह ज़ोर से अन्दर को भिंचा हुआ था, और नाक से, नथुनों से अन्दर साँस की नली तक साँस यूँ रुक-रुककर गुड़-गुड़ करती हुई चल रही थी; जैसे साँस के रास्ते में किसी ने भारी चट्टानें गिरा दी हों। और अब साँस उन चट्टानों से होती हुई बड़ी मुश्किल से नाक के नथुनों से बाहर हो रही थी।

यह बड़ा ही भयानक दृश्य था। विलायत बेगम का वह फूल का सा रंग जाने कहाँ गायब हो गया था। उसके दोनों बाज़ू काले और स्याह जली हुई लकड़ियों की तरह उसके दोनों तरफ़ सिरहाने पर अशक्त बेहरकत पड़े थे; कभी-कभी उसकी उंगलियों में एक हल्की सी कंपकंपी पैदा होती थी। वे उँगलियां जैसे मुट्ठी में बन्द होना चाहती थीं; वे बाज़ू जैसे सिरहाने से उठके सीने की तरफ़ आना चाहते थे। दो-तीन बार विलायत बेगम के बाज़ुओं में ऐसी हरकत भी पैदा हुई, उसके हाथ अपनी जगह से उठे और सीने की तरफ़ चले; मगर नर्स ने उन्हें सहलाते हुए फिर सिरहाने पर रख दिया।

ठोढ़ी सूजी हुई थी, जिस पर एक बहुत बड़ा घाव था, टाँगों का जो हिस्सा यानी घुटनों से नीचे का जो हिस्सा नज़र आता था वहाँ पर घाव थे। सब पर पट्टी बँधी हुई थी; मगर सब घाव रिस रहे दे। और साँस गुड़गुड़-गुड़गुड़ कहीं मीलों दूर से आती हुई घसिट-घसिटकर चल रही थी।

यकायक विलायत बेगम ने आँखें खोल दीं। रफ़िया और रज़िया ज़रा आगे को हो लीं; मगर विलायत बेगम तो सिर्फ़ छत को तक रही थी; वह किसी को पहचान न रही थी; सिर्फ़ छत तक रही थी। उसके होंठ हिलने की कोशिश कर रहे थे; कुछ कहने की कोशिश कर रहे थे, बहुत ही धीमे-धीमे फुसफुसाहट में उसके होठ से आवाज़ निकली—"मेरा बच्चा ! मेरा बच्चा !" रफ़िया का दिल काँप गया, वह कितने ही अरसे पहले की एक रात में खो गयी, जब वह और विलायत राजलता के घर नाची थीं; जब वह इशरत के लिए, इस क़दर उदास थी; और विलायत ने उसे बताया था कि किस तरह उसका दिल एक बच्चे के लिए तड़पता था।

वे होंठ बन्द हो गये; वे आँखें देर तक छत की सतह पर घूमती रहीं: जैसे किसी को खोज रही हों। यकायक एक तेज़ झटके से विलायत बेगम बिस्तर से उठकर

बैठ गयी। नर्स हैरत में रह गयी; उसने विलायत बेगम को लिटाना चाहा; मगर उसके जले हुए बाजुओं में न जाने कहां से इस वक़्त ताक़त आ गयी थी कि उसने अपने हाथ से नर्स को परे कर दिया। वह आँखें सीधी-ऊपर देख रही थीं, वे हाथ तेज़ी से उठे और सीने की तरफ़ गये, विलायत बेगम ने अपने सीने को ज़ोर से पीट-पीटकर रुंधे हुए गले से चिल्लाकर कहा—

"ऐ खुदा ! क्या मैं हमेशा अधूरी औरत रहूँगी; क्या मेरी छातियों में कभी दूध नहीं उतरेगा ? कभी दूध नहीं उतरेगा ? ऐ खुदा ! बोलता क्यों नहीं ?" विलायत बेगम ज़ोर से चीख़ी और उसकी आवाज़ एक घायल पक्षी की तरह वायुमंडल में फड़फड़ाती चली गयी; फिर उसने एक-दो बार ज़ोर-ज़ोर से सीने पर हत्थड़ मारे और फिर एकाएक पीछे को बिस्तर पर गिर गयी, उसके दोनों बाज़ू बेजान होकर दाईं ओर गिर पड़े। नर्स जल्दी से आगे बढ़ी।

मगर वहाँ अब कोई न था; विलायत बेगम की आँखें ज्योतिहीन और बेजान थीं।

× × ×

'तो तुमने उसे मार डाला।' अकरम टैक्सी में सोचने लगा; 'मेरे प्यारे ख़ूबसूरत शरीफ़ समाज ! तुमने विलायत बेगम को पहले तो एक स्याहीचूस की तरह इस्तेमाल किया; फिर उसे एक गन्दे तौलिए की तरह बरता और आख़िर में एक गन्दी झाड़ू समझकर मौत के कूड़े करकट में फेंक दिया। लेकिन जब तक मेरी जान में जान है और मेरे हाथों में ताक़त है; आँखों में नूर है; दिमाग़ में शऊर और समझ की एक किरण भी मौजूद है, मैं लड़ता रहूँगा। इस अन्धे और डरावने ज़ुल्म के ख़िलाफ़; एक बार नहीं, दस बार नहीं; मैं दस लाख बार अपनी पूरी ताक़त से टक्कर लेता रहूँगा; ताकि कभी किसी वक़्त, किसी तरह तो तुम्हारे अन्धे दिमाग़ में कहीं से रोशनी की एक किरण पहुँचे। ऐ गन्दे, घिनौने, नापाक चेहरे लेकर चलनेवाले समाज !'

३३

'ब्लू फ़िल्म'

कभी वह कपड़े अच्छे थे; कभी उनकी चमक भी अच्छी थी; मगर इस वक़्त वह गन्दे मैले-कुचैले से दिखाई दे रहे थे; सेठ छेदीलाल बहुत देर तक इशरत के मुर्झाए हुए चेहरे की तरफ़ ध्यान से देखता रहा; मगर इशरत की आँखें असाधारण तौर पर चमकदार थीं और पुतलियाँ भी फैली हुई नज़र आती थीं।

रात भर इशरत बुखार से तपता रहा था; कई दिनों से उसे बुख़ार आ रहा था, जिस्म को घुला देनेवाला बुख़ार जो यकायक सुबह को ग़ायब हो जाता था; जिस्म की हड्डी-हड्डी टूटी हुई; हर एक अपनी जगह से अलग; और कंठ में प्यास की अधिकता से काँटे। इशरत ने काँच के टूटे हुए गिलास से दो-तीन बार नल से पानी पिया। 'या ख़ुदा ! अन्दर कितनी प्यास है, पेट में पानी की एक पूरी मशक चाहिए; इन दो-तीन गिलासों से क्या होगा।' पानी पी कर उसने पीले रंग का मफ़लर अपने गले के चारों ओर लपेटा। इतने में दर्वाज़ा खटखटाये बिना क़ासिम अन्दर आ गया। क़ासिम कमाठीपुरा का मशहूर दादा था और बिल्कुल दादा ही दिखाई देता था; कोई उसे देख कर ग़लती नहीं खा सकता था; कोई उसे किसी प्रकार से, किसी हैसियत से शरीफ़ इन्सान नहीं समझ सकता था, उसकी पूरी ज़िन्दगी, उसका पेशा, उसकी आदतें, उसका व्यक्तित्व उसके चेहरे पर लिखा हुआ था। वह क़ासिम बिल्डिंग के मालिक की तरफ़ से खोलियों का किराया वसूल करता था; और कोई कुछ भी कहे मालिक-मकान की अक़्ल की तारीफ़ करनी पड़ती थी। जिस क़िस्म के लोग उन खोलियों में रहते थे, उनसे किराया वसूल करना क़ासिम ही का काम था। क़ासिम ने आसपास की तीन बिल्डिंगें अपने जिम्मे ले रखी थीं।

क़ासिम ने पूछा—"कल पैसे मिले ?"

क़ासिम जवाब भी जानता था, फिर भी चुप रहा। इशरत ने आहिस्ता से सर हिलाया।

"तीन हफ़्ते हो गये, खोली का किराया तुमने नहीं दिया, ऐसे कैसे चलेगा ?"

"आज जा रहा हूँ दादा; शायद वहाँ काम मिल जाये।"

"तीन हफ़्ते से तुम यही कह रहे हो, तीन हफ़्ते से मैंने सब्र कर रखा है, खाना अपने पास से खिलाया है, खोली-भाड़ा नहीं लिया, माफ़िया कहाँ-कहाँ से ढूँढ़ कर लाता रहा हूँ। अपने बेटे की तरह रखा है तुझे। मगर तुमने अब तक कुछ करके नहीं दिया; मैं तुमसे कहता हूँ, यह काम-वाम कुछ नहीं मिलेगा तुम्हें ! कब से तुम्हें समझा रहा हूँ, मेरी टोली में आ जा, मज़े करेगा।"

"बस दो-तीन दिन और देखने दो।"

क़ासिम ने अपने कन्धे ज़ोर से हिलाये, जैसे कह रहा हो, सब बेकार है, मगर यह भी करके देख लो।

"दादा इन्जेक्शन ?"

"नहीं है !"

"दादा मर जाऊँगा।" इशरत गिड़गिड़ाने लगा। उसने क़ासिम के घुटने पकड़ लिये, इशरत की आँखों में अब कोई चमक न थी। ऐसी बेनूर-सी हो रही थीं वे—

क़ासिम मुस्कराया; बोला—"अबे पाँव क्यों पकड़ता है, तेरी ज़िन्दगी ले के आया हूँ।" क़ासिम ने उसे इन्जेक्शन दिया; इशरत बाहर चला गया।

× × ×

इस वक़्त छेदीलाल के सामने बैठा हुआ इशरत चाह रहा था कि किसी न किसी तरह आज उसे काम मिल जाए, कैसा भी काम! कोई भी काम! वरना उसे क़ासिम की शर्त माननी होगी। क़ासिम की टोली में शामिल होना पड़ेगा और क़ासिम की टोली में शामिल होने का मतलब यह है कि अगले दो-तीन माह में उसे जेल जाना पड़ेगा; क्योंकि क़ासिम ने उसे बताया था कि आदमी अपराधों की दुनिया में रहकर इतना होशियार नहीं होता, पाँच साल तक भी आदमी बाहर अपराध करता रहे तो भी उसे असली गुर का पता नहीं चलता, जब तक वह जेल न जाये। जेल के अन्दर ही वे तमाम उसूल और गुर अपराध करनेवाले पर एक-एक कर के खुलते जाते हैं, जिससे गुनाहों की दुनिया मिलती है। वहाँ एक से एक बड़ा उस्ताद रहता है; जिसने सारी ज़िन्दगी की मेहनत से यह कला हासिल की है। इसलिए क़ासिम ने यह उसूल बना रखा था कि ज्यों ही कोई नया आदमी उसकी टोली में शामिल होता, वह उसे दो-एक माह में जेल भिजवा देता और जेल भिजवाने में एक और बात भी थी; जेल जा के आदमी फिर इधर या उधर की नहीं सोचता, वह बस इधर का ही हो जाता है, उस दुनिया के दर्वाज़े उसके लिए बन्द हो जाते हैं और इस दुनिया के नीचे जो दुनिया बसती है, उसके दर्वाज़े उसके लिए खुल जाते हैं। एक दफ़ा जेल जा के आदमी की बेचैन आत्मा परम सन्तोष प्राप्त कर लेती है। उसे निर्वाण दो तरह का होता है—एक वह जो नेकी और पवित्रता से आता है और जिसका अन्त बैकुण्ठ है, दूसरा वह जो बदी और शैतानी में डूब जाने से आता है और जिसका अन्त नर्क है। वे लोग जो रात व दिन नर्क में रहते हैं, उनके लिए आग की लपट; बिच्छुओं के डंक और तपते हुए लोहे के दाग़ और जलते हुए मांस की गन्ध कुछ अर्थ नहीं रखती। यह तो नित्य की बात है। वे लोग नर्क से इस तरह गुज़र जाते हैं, जैसे बहती नहर के किनारे सैर कर रहे हों। कम से कम क़ासिम को देखकर, उसकी शान्ति व संतोष को देखकर यही अनुमान होता था। इन चन्द सालों में इशरत की अन्तरात्मा की खाल बेहद मोटी खुर्दरी और शून्य हो गयी थी; तो भी कुछ बाक़ी था। इशरत महसूस करता था कि अभी वह वहाँ तक नीचे नहीं उतरा, जहाँ तक उसे आत्मा का निर्वाण हासिल करने के लिए नीचे उतरना चाहिए। बस अब एक मामूली-सी झिझक थी, कहीं पर उसकी अन्तरात्मा की मोटी खाल के अन्दर कोई चीज़ अभी तक ज़िन्दा थी, हरकत करती

थी, कभी-कभी उसे परेशान कर देती थी। वह जब नीचे देखता तो उसे गहराई से बड़ा डर लगता। जाने इतनी दूर नीचे उन साँपों के बिल में क्या हो ? नीचे जाने का आकर्षण भी उसके दिल में था; क्योंकि अब जब वह ऊपर देखता तो उसे इतनी दूर ऊपर नज़र आता, जैसे वह किसी गहरे कुएँ में गिर चुका हो।

इशरत दो-तीन बार आहिस्ता से खाँसा, पसीने के तरेड़े उसके माथे से छूटने लगे। इशरत ने जेब से रूमाल टटोला, रूमाल कहीं न मिला; उसने कोट की बाँह से माथे का पसीना पोंछ लिया, इस हरकत से उसके पीले-पीले चेहरे पर लाली छा गयी।

सेठ छेदीलाल बोले—"आख़िरी मर्तबा मैंने तुम्हें राज के यहाँ एक पार्टी में देखा था, बहुत अरसा हो गया।"

इशरत ख़ामोश रहा।

"तुम बहुत बदल गये हो।"

इशरत फिर भी ख़ामोश रहा।

"उन दिनों राज ने तुम्हारी सिफ़ारिश की थी कि तुम्हें मैं अपनी तस्वीर में हीरो ले लूँ। मगर किसी न किसी कारण से वह बेल मढ़े न चढ़ सकी।"

इशरत खाँसा।

"यह खाँसी बहुत बुरी होती है, इलाज करवाओ।"

इशरत ने कहा—"मुझे काम चाहिए।"

"मुझे मालूम है।" छेदीलाल ने बनावटी हमदर्दी से कहा, "मगर मुसीबत यह है कि मेरी दोनों तस्वीरें खत्म हो रही हैं; उनमें तो कोई काम नहीं है; फिर उन तस्वीरों के खत्म होने, एडिट करने, सेन्सर को दिखाने और नई तस्वीर शुरू करने में छः माह तो ज़रूर लगेंगे।"

इशरत ने ज़िद करते हुए कहा—"मुझे तो आज ही काम चाहिए।" छेदीलाल हँसा, "कह नहीं सकता; तुम वह काम करोगे भी। तुम हीरो बनना चाहते थे ना ?" छेदीलाल ने चुटकी बजा के अपने जलते हुए सिगरेट की राख ट्रे में गिराते हुए कहा—"मैं तुम्हें हीरो बना सकता हूँ।"

इशरत हैरत से उसकी तरफ़ देखने लगा वह यह क्या कह रहा है। इसी सेठ छेदीलाल ने उस वक़्त राज के कहने पर मुझे हीरो नहीं बनाया और आज अपने आप बग़ैर किसी सिफ़ारिश के मुझे इस हालत में हीरो बनाने के लिए तैयार है। इशरत की साँस तेज़ चलने लगी, उसकी आँखों में असाधारण चमक आ गयी। क्या सच-मुच छेदीलाल ने यह कहा था; एक क्षण पहले उसके कान बज तो नहीं रहे थे ?

छेदी इशरत की हैरत और प्रसन्नता का ख़ामोशी से मज़ा लेता रहा; फिर

कहने लगा—"इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, मैं तुम्हें अपनी नई फ़िल्म का हीरो बनाने के लिए तैयार हूँ।"

"नई फ़िल्म का नाम क्या है ?"

"ख़ुफ़िया मोहब्बत, उर्फ कोका की कहानी।" छेदीलाल ने अर्थपूर्ण निगाहों से इशरत की तरफ़ देखा; मगर इशरत की समझ में कुछ न आया।

"और हिरोइन कौन होगी ?" इशरत ने पूछा।

"माहपारा ?" "मगर वह तो अब तीन-चार साल से किसी पिक्चर में हिरोइन नहीं आयी; पीछे जा पड़ी है।" छेदी ने सर हिला के कहा—"मैं जानता हूँ, आजकल उसके पास कोई काम नहीं है, मगर मैं उसे भी चान्स दे रहा हूँ।"

इशरत ने रुक रुक कर कहा—"यह—मैं—यानी यह क्या सुन रहा हूँ—सेठ ! तुम आदमी नहीं देवता हो।"

छेदीलाल ने अपनी उँगलियों पर पेन्सिल नचाते हुए कहा—"तुम अपने सामने किसी देवता को नहीं देख रहे, एक बिज़नेसमैन को देख रहे हो।"

इशरत ने प्रश्नसूचक निगाहों से देखा; सेठ छेदीलाल ने ज़रा आगे झुक के कहा—"यह एक ब्लू फ़िल्म होगी।"

"ब्लू फ़िल्म ?"

"हाँ।"

जैसे बिजली की करेंट ने इशरत को छू लिया हो। उसने ज़ोर से कुर्सी को अपने दोनों बाज़ुओं से पकड़ लिया। कुछ क्षणों के लिए, कुर्सी-मेज़, आसपास की दीवारें, तस्वीरें, चेहरे सब के सब उसकी नज़रों में घूम गये, गड्डमड्ड से हो गये। उसे भूत-भविष्य-वर्तमान, समय और स्थान का कोई ज्ञान न रहा: उसे अपने गले में कोई चीज़ फंसी हुई लगी; उसके होंठ बिल्कुल सूख गये जैसे किसी ने उनका सारा ख़ून चूस लिया हो। उसने होंठो पर अपनी ज़बान फेरी; मगर उसकी ज़बान पर कोई स्वाद न था; उसे ऐसा लगता जैसे वह अपने होंठों पर अपनी ज़बान नहीं कोई सूखा-सा ब्रश फेर रहा हो।

"आपका मतलब है कि...कि....कि...." इशरत अपना वाक्य पूरा न कर सका।"

"हाँ, हाँ, अरे इन दूसरी फ़िल्मों में क्या रखा है, चार लाख ख़र्च करो, कोई भरोसा नहीं, पास हो, फेल हो; मगर ब्लू फ़िल्म कोई फेल नहीं होती। इसमें सेठ भी कमाते हैं, आर्टिस्ट भी। यहाँ अपने हमाम स्ट्रीट और कालबादेवी रोड पर बहुत से भाई बन्द हैं, जो पाँच-पाँच हज़ार में एक फिल्म का प्रिन्ट उठा के ले जाते हैं; फिर दूसरे शहरों के बड़े-बड़े सेठ हैं, धनवान लोग हैं, राजे-महाराजे जो बेचारे ख़त्म

हो गये, वरना जनाब पचास-पचास हज़ार मैंने एक राजा से ब्लू फ़िल्म के प्रिन्ट का लिया है। अब भी पुराने राजाओं में दस-बारह अपने स्थाई ग्राहक हैं। मैं तुमसे सच कहता हूँ इशरत, ब्लू फ़िल्म जैसा सौदा पूरी फ़िल्म इन्डस्ट्री में कहीं नहीं है; और अब तो मामूली मामूली लोगों में भी उसके ग्राहक पैदा हो गये हैं। मैं दलालों को प्रोजेक्टर और फ़िल्म कमीशन पर देता हूँ, सारे बम्बई में वे लोग इधर से उधर घूमते हैं, और जहाँ कोई सुरक्षित जगह देखी वहाँ फ़िल्म चला के दिखाते हैं। अरे मेरी कई ब्लू-फ़िल्मों ने सिलवर जुबलियां की हैं, कई तो गोल्डेन जुबलियां मना चुकी हैं।"

"मगर ?" इशरत कुछ कहने वाला था कि छेदीलाल ने उसकी बात काट के वहीं पर कह दिया—"अगर मगर क्या, बात तो वही है जो दूसरी फ़िल्मों में है। वे लोग उसे ढक कर, निगाहों में छिपाकर, तरह-तरह से डान्स, गीत और संवादों में घुमा-फिरा कर कहते हैं, बारह-बारह हज़ार फ़ुट में कहते हैं। मैं एक हज़ार फ़ुट में या दो हज़ार फ़ुट में कहता हूँ और साफ़-साफ़ कहता हूँ, कोई लगी-लिपटी नहीं रखता, बोलो मन्ज़ूर है ?"

इशरत अपनी छंगुलिया का नाख़ून अपने दाँतों से काटने लगा; फिर उसने अपने कांपते हुए हाथों की तरफ़ देखा, फिर उसने सेठ छेदीलाल से पूछा—"और माहपारा ?"

छेदीलाल हँसा, बोला—"तुम क्या समझते हो, वह बेचारी पिछले तीन-चार साल से जो बेकार है, तो कैसे ज़िन्दा है ? वह बराबर मेरी ब्लू-फ़िल्मों में काम करती है, अरे जवाब नहीं है उसके काम का।"

'काम' इशरत ने अपने दिल ही दिल में सोचा। छेदीलाल ने अपनी घड़ी की तरफ़ देख कर कहा—"मुझे थोड़ी देर में सेठ कुत्तरचन्द के यहाँ जाना है, अगर मंज़ूर हो तो बोल दो, अपना ऐडवान्स भी ले जाओ, एक हज़ार रुपया दूँगा। पाँच दिन शूटिंग है, सौ रुपये अभी ऐडवान्स ले जाओ कल से हाज़िर हो जाओ। जहां ले जाऊँ, जिधर ले जाऊँ तुम बोल नहीं सकते। मैं किसी का भरोसा नहीं करता हूँ इस बात में। तुमको चौबीस घण्टे मेरे साथ रहना पड़ेगा। सारा यूनिट तुम, मैं, माहपारा, कैमरामैन, उसका असिस्टेंट सब लोग इकट्ठे होंगे। सात दिन तक कोई आदमी अपने घर नहीं जा सकता। कोई इजाज़त बिना टेलीफ़ोन नहीं कर सकता। खत नहीं लिख सकता। एक हज़ार रुपया दूँगा। सौ रुपया ऐडवान्स अभी ले जाओ मंज़ूर है ?"

इशरत ने अपना कांपता हुआ हाथ आगे बढ़ाया, कहा—"मंज़ूर है"

सेठ ने घंटी बजाई, एक चपरासी अंदर आया, सेठ ने चपरासी को कहा—

"खज़ान्ची को अन्दर भेज दो।" खज़ान्ची अन्दर आया। सेठ ने कहा—"इशरत को एक सौ रुपये ऐडवान्स दे दो और रसीद पर दस्तख़त ले लो।"

"किस हिसाब में ?"

"बच्चों की सदाचार सम्बन्धी जो डाक्युमेंटरी बन रही है उसके हिसाब में।"

जब खजान्ची चला गया, तो इशरत हैरत से सेठ का मुँह देखने लगा। सेठ ने हँस कर कहा—"अरे भाई, फ़िल्म बनाता हूँ, तुम्हें पैसे देता हूँ, तो उसका कहीं हिसाब भी रखूंगा कि नहीं ? सो आजकल एक डाक्युमेंटरी शुरू कर रखी है बच्चों की। दो एक शाट इसमें भी तुम्हारे हो जायेंगे मगर वह बिकेगी नहीं। सरकार तो आजकल अपनी डाक्युमेंटरी बनाती है, वह बड़ी फ़िल्म कहाँ से खरीदेगी, मैं भी हिसाब रखने के लिए काट-पीट के किसी तरह वह डाक्युमेंटरी पूरी कर दूँगा, और इस ब्लू फ़िल्म का सारा खर्चा उस पर डाल दूंगा। अरे क्या करें इशरत भाई, आजकल सीधे धन्धे का ज़माना ही नहीं रहा।"

बच्चों की सदाचार सम्बन्धी फ़िल्म !

ख़ुफिया मोहब्बत उर्फ कोका की कहानी !!

× × ×

इशरत जब छेदीलाल के दफ़्तर से बाहर निकला तो एक कशमकश में खोया हुआ था, मगर उसकी जेब में सौ का नोट था, और उस सौ के नोट का मतलब था, रोटी, खोली का किराया, मार्फ़िया, चरस, भंग, शराब और सबसे बड़ी बात यह थी कि वह क़ासिम से बच जायगा। एक हज़ार रुपया ! अरे इसमें से पाँच सौ अपनी अम्मा को रईसगन्ज में भेज सकता है !

रात को जब क़ासिम उसके पास आया, तो इशरत ने पछत्तर रुपये निकाल के उसे दे दिये, अपने पास सिर्फ़ पच्चीस रखे। क़ासिम बड़ा हैरान हुआ, जब इशरत ने उसे बताया कि उसे एक फ़िल्म में काम मिल गया है। वह बहुत हैरान हुआ मगर क्या कर सकता था ! नोट ले कर चुपचाप चला गया। इशरत ने अपनी झिलंगी चारपाई पर लेट कर अपनी बहन का ख़त शायद बीसवीं मर्तबा पढ़ा :

प्यारे भैया,

तुम्हें बम्बई गये हुए यह तीसरा साल जा रहा है, अम्मा बहुत परेशान रहती हैं, क्या तुम सचमुच रईसगन्ज नहीं लौटोगे ? एक बार भी अपनी अम्मा और अपनी छोटी बहन और भाइयों को देखने के लिए नहीं आओगे ? यहाँ मैंने सब से कह रखा है कि तुम फ़िल्म में हीरो का काम कर रहे हो, मगर तीन साल से अब तक तुम्हारी कोई फ़िल्म रईसगन्ज में नहीं आयी, इसलिए मेरी सहेलियाँ अब मुझसे

मज़ाक करती है, वे नहीं समझतीं कि तुम सचमुच किसी फ़िल्म में हीरो का काम कर रहे हो। सच बता देना, भैया, तुम किस फ़िल्म में हीरो का काम कर रहे हो ? वह फ़िल्म रईसगन्ज में कब आयेगी ? तुम्हें देखे हुए इतना अरसा हो गया है कि अब तो अगर मैं तुम्हें फ़िल्म में देख लूं तो देखते ही रो पड़ूंगी, अच्छा बताओ अच्छे भैया ! तुम्हारी फ़िल्म कब पूरी होगी ? हमारे रईसगन्ज में कब आयेगी ? उस फ़िल्म का नाम क्या है ? मैं अपनी सारी सहेलियों को ले कर उसे देखने जाऊंगी और वह जो खां साहब.... ....

इशरत आगे न पढ़ सका, एक ज़ोर का खोखला क़हक़हा उसके कंठ से निकला। इशरत हीरो !--एक ब्लू फ़िल्म का हीरो !!

फिर सहसा तेज़ी से आंसू उसकी आँखों में उमड़ आये, और उसने अपनी बहन के खत से अपना चेहरा छिपा लिया और चारपाई पर औंधा हो के गिर गया और सिसक-सिसक कर रोने लगा।

× × ×

दूसरे दिन शाम के झुटपुटे में कमाठीपुरा पुलिस लाइन के पीछे जब क़ासिम अपने गुर्गों से सट्टे का हिसाब ले रहा था और रक़में वसूल कर रहा था कि किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा। क़ासिम ने चौंक कर पीछे देखा, यह इशरत था; मगर क़ासिम इशरत को देखकर हैरान हो गया। इशरत के चेहरे पर ख़ून की एक बूंद न थी--वह एक मुर्दा लाश का चेहरा था, आँखों में कोई चमक न थी, और जब इशरत बोला तो ऐसे बोला, जैसे कुंए में से बोल रहा हो।

"क्या है ?" क़ासिम ने जरा सम्भल कर कहा।

इशरत ने कहा—"दादा मैं तुम्हारे साथ काम करूँगा।" क़ासिम अन्दर से तो बहुत ख़ुश हुआ, मगर ऊपर से उसने वह कठोर लहज़ा अख़्तियार किये रखा, बोला—"क्या हुआ वहाँ जहाँ काम मिला था ? मालिक को काम पसन्द नहीं आया ?"

"नहीं !" इशरत के पैर काँपने लगे।

"अरे बेवक़ूफ़ के बच्चे ! काम करने से आता है। कोशिश तो की होती।"

"बहुत कोशिश की दादा ! मगर सेठ ने निकम्मा कहकर मुझे निकाल दिया, बहुत नाराज़ था सेठ ! कहता था; मेरा एक दिन क्या बर्बाद हुआ, हज़ारों का नुक़सान हो गया, उसके आदमियों ने मुझे धक्के दे के निकाल दिया।" इशरत के होंठ कांपने लगे। वह नर्क का सा दृश्य था !

अन्धेरे में खोया हुआ, अन्धेरे के अन्दर आग की लपट की तरह भड़कता

हुआ, ज़हर की सांस लेता हुआ; वह उसे भूल जाना चाहता था; लेकिन वह उसकी आंखों के सामने हमेशा आजाता था, बार-बार मिटाने से भी आजाता था, वह कभी बोल नहीं सकता था; जैसे किसी ने दहकते हुए लोहे की गरम सलाख से उसकी आत्मा पर वह दृश्य खींच दिया था। वह जानता था, वह ज़िन्दगी भर उसे कभी नहीं भूल सकता।

और फिर वह हँसी—बेशर्म—बेहया औरत की नंगी हँसी! बार-बार उसके जिस्म पर कोड़े लगा रही थी।

शराब, भंग, चरस, मार्फिया का मारा हुआ खोखला जिस्म, गन्दी बीमारियों के कीड़ों से खाया हुआ खोखला जिस्म, दुनियावालों ने उसकी हड्डी का आख़िरी गोश्त भी खा लिया था। "यकायक उन्होंने मुझे बाहर फेंक दिया; एक निचुड़े हुए नींबू की तरह।"

भूल जाओ इशरत! उसे भूल जाओ।

इशरत ने अपनी आँखें बन्द कर ली और लड़खड़ा कर क़ासिम के क़दमों में बेहोश होकर गिर पड़ा।

३४

हाथापाई होते-होते बची

एक रात को खाना खाने के बाद चबूतरे पर बैठे हुए अकरम और धूमे के बीच बड़े ज़ोर की बहस चली; बहस बढ़ते-बढ़ते हाथापाई पर आ गयी थी; अगर जसवन्त, मनजीत सिंह, फ़ज़ल और दूसरे लोग बीच-बचाव न करते। बहस हिन्दुस्तानी फ़िल्मों के बारे में हो रही थी और ख़ासतौर से प्रगतिशील फिल्मों के बारे में, जिनके लिए धूमे अपना अलग दृष्टिकोण रखता था और अकरम जिनकी नाकामयाबी से झल्लाया हुआ था। अकरम की प्रगतिशील फ़िल्मों के बारे में कुछ कहना भिड़ के छत्ते को छेड़ना था। अक्सर वह बहस में मानसिक सन्तुलन खो बैठता था।

धूमे ने कहा—"मुझे तुम लोगों की तस्वीरों पर सब से बड़ी आपत्ति यह है कि वह सब की सब उदास और निराशा से भरी हुई होती हैं। तुम्हारी तस्वीरों का मज़दूर है तो इस क़दर पिसा हुआ, घुटा हुआ; अत्याचार व अन्याय का मारा हुआ कि कभी हँसता ही नहीं। मैं तुम से कहता हूँ कि यह सच नहीं है, यह

असलियत के ख़िलाफ़ है, । इसमें कोई शक नहीं कि हम पर बहुत अत्याचार व अन्याय हुए हैं; होते हैं; मगर हम इस क़दर उदास और रोते बिसूरते हुए नहीं हैं जिस क़दर तुम हमें फिल्मों में दिखाते हो। हम ज़ुल्म का जवाब अपने सामूहिक संघर्ष से देते हैं, हमारी दौड़धूप बड़ी ही सख्त किस्म की है; मगर हमारी ज़िन्दगी में हर रोज़ ऐसे क्षण आते हैं, जब सूरज चमकता है और ओस की बून्दें मुस्कराती हैं; जब स्नेह की चितवन हम पर जादू कर देती है, जब हम गीत गाते हैं और हमारे बच्चे ख़ुशी से घूम मचाते हैं। तुम उन क्षणों को भूल क्यों जाते हो?"

अकरम ने कहा—"उन क्षणों की मौजूदगी से मैं इन्कार नहीं करता; ग़रीब लोगों की ज़िन्दगी में ऐसे क्षण ज़रूर आते हैं; मगर ये पल बड़े क्षणिक होते हैं। जो सच्चाई है उसको बड़ा करके दिखाना हमारा फ़र्ज़ है।"

घूमे ने कहा—"तुम्हारा सब से पहला फ़र्ज़ है कि तुम ऐसी तस्वीरें बनाओ जो हम दिलचस्पी से देख सकें। तुम्हारी फ़िल्में दिलचस्प नहीं रहतीं। वह सूखे हुए आलुओं की तरह होती हैं। यह भी कोई तस्वीर है, हिरोइन देखो तो कपड़े तार तार, शक्ल ऐसी कि देखकर उबकाई आये, हीरो देखो तो इक्का मार्का बीड़ी का ट्रेड मार्क, मौक़ा मिले न मिले भाषण झाड़ देता है। अरे भाई! हम सिनेमा में भाषण सुनने नहीं जाते। भाषण बहुत सुनते हैं। कामगार मैदान में हमारे ट्रेड युनियन के लीडर हमें गरीबी के बारे में तुमसे ज़्यादा हिसाब दे सकते हैं। मगर हम सिनेमा में हिसाब देखने नही जाते, दिनभर के थके हारे। काम, वह भी गन्दे वातावरण में, काम करने के बाद जब हम सिनेमा में जाते हैं तो कोई ऐसी तस्वीर देखना चाहते हैं, जिससे हमारे दिल को शान्ति पहुँचे, आँखों में तरावट आये, दिल कुछ इस तरह डूब जाय कि यह दुनिया अपनी कठोरताओं और मुसीबतों के बावजूद इतनी बुरी जगह न रहे कि तुरन्त ही सिनेमा हाल से निकल कर आत्महत्या ही कर ली जाये। अरे! मैं तुमसे सच कहता हूँ; तुम्हारी बहुत सी तस्वीरें देखकर सचमुच यह ख्याल होता है कि यह दुनिया इतनी बुरी है। हालत इस क़दर बेचैन बना देनेवाली और विरोधी शक्ति का दबाव इतना अधिक होता है कि आत्महत्या के सिवाय कोई और उपाय ही नहीं। मैं तुमसे सच कहता हूँ अकरम भाई! तुम लोगों की तस्वीर तो मैं अक्सर आधी देख के उठ आता हूँ।"

अकरम का चेहरा लाल हो गया; उसके नथुने दो-तीन बार तेज़ी से काँपे और उसे अपना ख़ून तेज़ी से कनपटियों की तरफ़ जाता हुआ मालूम हुआ। "मैं तुम्हारे मुंह से, एक पढ़े-लिखे मज़दूर से ऐसी बातें सुन रहा हूँ। जो कुछ तुम कह रहे हो, उसका तो यह मतलब हुआ कि ज़िन्दगी के कटु-सत्यों से मुंह मोड़ के मनोरंजक तस्वीरें

बनें। यानी ऐसी दिलचस्प तस्वीरें; जिनसे तुम्हारे थके हुए भावों को शान्ति मिले। तुम्हारी फ़िलासफ़ी हालीवुड की तस्वीरों की फ़िलासफ़ी है।"

घूमे ने ग़ुस्से से कहा—"तुम मेरी बात नहीं समझते हो।"

मगर अकरम ने उसे टोककर कहा—"मैं ख़ूब समझता हूँ यह दिलचस्पी की फ़िलासफ़ी और सन्तोष की फ़िलासफ़ी कि ज़िन्दगी की सच्चाई से मुँह मोड़ लो। जितनी कहानियाँ बनाओ, हत्या या मारधाड़ की तस्वीरें बनाओ; शारीरिक उत्तेजन देनेवाले नाच गाने रखो। वह आँखों को बहुत भले मालूम होते हैं। या सिर्फ़ खयाली फेन्टेसी बनाओ। अलादीन का बेटा, बग़दाद का दर्जी, शाही हरम, कुँवारी शाहजादी—ऐसी ज़िन्दगी जो ख़ुद आज के अरब मुल्कों में कहीं नज़र नहीं आती। उसकी फोटोग्राफ़ी करके दूसरे मुल्कों के कल्चर की बेइज़्ज़ती करके अपनी जेबें भरो।"

"तुम क्या...." घूमे बीच में बोल उठा; "तुम बात को समझते नहीं, बीच में बकवास करने लगे.....।"

"बकवास तुम करते हो।" अकरम ने जवाब दिया। घूमे की आँखें एक क्षण के लिए लाल हो गयीं, फिर वह ग़ुस्से को पी गया; फिर उसके चेहरे पर एक अजीब सी मुस्कराहट आयी। वह धीरे से बोला—"अकरम भाई! यह बकवास नहीं है, तुम सिर्फ़ अपने किताबी ज्ञान के बल-बूते पर, अपनी किताबी कल्पना के ज़ोर पर तस्वीरें बनाते हो और इसलिए असफल रहते हो। किसलिए तुम्हारी और तुम्हारे दूसरे साथियों की तस्वीरें असफल रहीं, कभी तुमने उसके बारे में सोचा? तुमने अपने दिमाग में अपनी असफलता की जो एक थ्योरी गढ़ रखी है; जिसमें तुम लोग अपने आपको प्रगतिशील का शहीद समझते हो, उससे अलग हटकर सोचने के लिए तुम बिल्कुल तैयार नहीं हो। मैं तुमसे सच कहता हूँ, तुम लोग बिल्कुल शहीद नहीं हो। अपने तमाम ज्ञान के होने पर भी आप लोग अनपढ़ हैं; और मैं यह साबित कर सकता हूँ।" घूमे ने अपनी बायीं हथेली पर दायें हाथ का मुक्का मार के कहा। और फिर विजयी दृष्टि से फ़ज़ल, मनजीत सिंह, बाबूराम, जसवन्त और दूसरे साथियों की तरफ़ देखा।

"साबित करो।" अकरम बोला।

"करता हूँ; मगर पहले मैं तुमसे एक सवाल कर लूँ। क्या तुम मुझे बता सकते हो कि प्रेम में क्या बुरी चीज है? एक युवा-पुरुष और एक युवा-स्त्री जीवन में पहली बार प्रेम से परिचित होते हैं, एक दूसरे को चाहते हैं, इसमें क्या बुरी बात है? क्यों यह एक अच्छी फ़िल्म का विषय नहीं बन सकता। नाच और गाने के तुम सब लोग बुरी तरह विरोधी दिखाई देते हो। तुम सब लोग इसी बात पर अड़े रहते हो कि ऐसी तस्वीरें बनायी जायँ जिसमें कम से कम नाच और गाने हों।

बल्कि अगर बिल्कुल ही न हों तो वह सबसे ज्यादा प्रगतिशील फ़िल्म होगी। सेट जितने बुरे होंगे, कपड़े जितने फटे-पुराने होंगे, रोना-धोना जितना ज्यादा होगा, दृश्य जितने अन्धकारपूर्ण होंगे, उतनी ही ज्यादा वह प्रगतिशील फ़िल्म होगी; और सत्य के अधिक निकट होती जायगी। तुम ऐसा क्यों सोचते हो, मैं तुमसे पूछ सकता हूँ ? नाच और गानों में क्या बुराई है ? हमारी संस्कृति की एक उत्तम देन हैं, ये पुराने नाच और संगीत। तुम इस बहुमूल्य संस्कृति से हम लोगों को अपनी फ़िल्मों में क्यों वंचित रखना चाहते हो ? यह लोकनृत्य सारे के सारे वासनापूर्ण नहीं हैं; लेकिन कुछ हैं भी तो इनमें क्या बुराई है ? क्या पुरुष और स्त्री का प्रेम और सच्ची शारीरिक प्रसन्नता एक नाच में प्रकट नहीं की जा सकती ? यह किस प्रकार की प्रगतिशीलता है ? तुम कहना क्या चाहते हो, यही न कि हिन्दुस्तान के मजदूर और किसान इस क़दर पिसे हुए और घुटे हुए हैं, उनकी ज़िन्दगी में प्रतिदिन की रोटी का संघर्ष इस क़दर ज्यादा है कि हँसने के लिए और नाच और गाने से आनन्द मनाने के लिए न तो उनके पास वक़्त है और न उनके पास इसका ढंग है। ये दोनों बातें ग़लत हैं और हम परेशान हैं। इसलिए तुम्हारी तस्वीरें हमारी सहानुभूति, प्राप्त करने में बहुधा असफल रहती हैं।"

अकरम ने कहा—"तुम पर और तुम्हारी तरह तस्वीरें देखनेवालों के मन में उत्तेजक तस्वीरों का ज़हर असर कर चुका है। जो असलियत हम अपनी तस्वीरों में बनाते हैं वह बेहद कड़वी है; तुम लोग उसे सहन नहीं करते; मगर एक वक़्त आयेगा।"

"कौन-सा वह वक़्त आयेगा ?" धूमे ने चिल्ला के कहा—"अगर तुम आज की समस्याएँ हल कर लेते हो तो आज के लोगों को उनमें सबसे ज्यादा रुचि होनी चाहिए। जब ये समस्याएँ खत्म हो जायगी तो आनेवाली सन्तानों के लिए उनका सिर्फ ऐतिहासिक महत्व रह जायेगा। मगर यह ग़रीबी, यह बेकारी, यह बदमाशी, यह परेशानी आदि जो आज की समस्याएँ हैं जिनमें आज के युग के दोनों तरह के लोगों को गहरी रुचि होनी चाहिए; फिर वे क्यों तुम्हारी फिल्में नहीं देखते ? क्यों वे दूसरी फ़िल्मों की तरफ़ आकर्षित होते हैं ? बात बिल्कुल स्पष्ट है; तुम उन फ़िल्मों को सही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत नहीं करते; इसलिए वे मनोरंजनरहित और शुष्क रहती हैं।"

"रूस, अमरीका, यूरोप के बहुत-से देशों में इस तरह की तस्वीरें बनती हैं।" जमवन्त ने बहस में हिस्सा लेकर कहा —

"दूसरे मुल्कों की नक़ल में मक्खी पर मक्खी मत मारो। रूस में, अमरीका में, बरतानिया में, इटली में लोगों की दिलचस्पी के लिए और बहुत से सामान हैं। रूस में थियेटर और बैले बहुत उन्नत दशा में हैं। यूरोप के मुल्कों में टेलीविजन है,

म्यूज़िक हाल हैं, ओपेराहाउस हैं, गश्ती थियेटर हैं, संगीत और नाच की पार्टियाँ हैं, जो घरों और देहातों में जा जा के वहाँ के लोगों की कलारुचि को सन्तुष्ट करती हैं। यहाँ पर क्या है? न थियेटर न टेलीविज़न, न संगीत पार्टी, न नृत्य का प्रबन्ध। ले दे के सीमित तरीक़े पर एक सिनेमा रह गया है; जिसमें दस आना खर्च के जन-साधारण जा सकते हैं; इसलिए दस आने में वे चाहते हैं कि नाच भी देख लें, गाने भी सुन लें, ज़िन्दगी की कड़वी सच्ची बातों के साथ थोड़ा-सा उदास हो लें, थोड़ा-सा हँस-बोल भी लें। अगर वे इन तमाम बातों को एक ही फ़िल्म में पैदा होते हुए देखना चाहते हैं; तो उनकी यह अभिलाषा स्वाभाविक है; और हमारी विशेष परिस्थितियों का ही यह नतीजा है। ज़िन्दगी सारी की सारी दुखान्त तो नहीं। वह सारी की सारी सुखान्त भी तो नहीं।"

"ट्रेजेडी ही यथार्थ है।" अकरम बोला।

जसवन्त बोला—"ज़िन्दगी शायद एक कामिक-ट्रेजेडी है, या ट्रेजेडी-कामोडी है। ज़िन्दगी के ड्रामे के ये दोनों मूलतत्व एक दूसरे में इस तरह घुले हुए हैं कि उन्हें एक दूसरे से अलग करना मुश्किल है। मेरा यहाँ कहने का यह मतलब है; कि हमारा हिन्दुस्तानी फिल्मों का फार्मूला, जिसे तुम इस क़दर घृणा की दृष्टि से देखते हो, ज़रा इस पर सोचो और गौर करो तो तुम्हें सम्भव है कुछ ऐतिहासिक मजबूरियों के पहलू दिख जाएं। मैं यह तो नहीं कह सकता कि तुम लोग सौ फ़ीसदी उसकी नकल करो; हाँ तुम उसे इस्तेमाल कर सकते हो, अपने दृष्टिकोण के लिए। इससे तुम्हारी कला अधिक मनोरंजक हो जायगी; जनसाधारण के ज़्यादा निकट आ जायगी। चीज़ों, रिश्तों, ज़िन्दगियों के बारे में किताबी ज्ञान लाभकारी होता है; लेकिन सौ फ़ीसदी एक किताबी दृष्टिकोण से हमेशा किसी एक चीज को देखे जाना और जब वह विफल हो जाये तो उसकी त्रुटियों पर गौर करना; उन त्रुटियों के कारणों पर दृष्टि न डालकर अपनी हठ पर डटे रहना मैं समझता हूँ बुद्धिमानी नहीं है। हिन्दुस्तान में फिल्म की कला बाहर से आयी है, मैं मानता हूँ; लेकिन यहाँ उसका पालन-पोषण बिल्कुल उस ढंग में नहीं हुआ जैसे रूस या अमरीका या ब्रतानिया या फ्रांस में हो रहा है, उसकी जड़ें हिन्दुस्तानी होंगी।"

धूमे ने सर हिलाके कहा—"बस बिल्कुल यही बात मैं कहना चाह रहा था; लेकिन मैं ठीक ढंग से नहीं कह सका। मैं वास्तव में मिजाज का बहुत तेज़ हूं, और—कभी—कभी शब्द—तुम जानते हो मैं ज़्यादा पढ़ा-लिखा भी नहीं हूँ, शब्द ज़बान से लुढ़क-से जाते हैं; बुरा मत मानना।" धूमे ने अकरम की तरफ़ हाथ बढ़ाया। अकरम ने मुस्करा के धूमे का हाथ अपने हाथ में ले लिया, ज़ोर से हाथ मिलाया। फिर सब लोग खिलखिला के हँस पड़े और बहस खत्म हो गई।

३५

मार्फ़त फुटपाथ

और सबके लिए बहस खत्म हो गयी थी, लेकिन दो आदमियों के लिए यह बहस खत्म न हुई थी। रात के सन्नाटे में जब सब सो गये, तो अकरम देर तक जागता रहा, और बहस के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर ग़ौर करता रहा। उसे मालूम था कि विषय के चुनाव और आस-पास पर निगाह डालने के तरीक़े हैं। उसकी तरह सोचनेवाले दूसरे दोस्तों में कोई कमी न थी; कमी थी तो यह कि वे लोग अपने जोश में या अनुभव की कमी के कारण या दोनों बातों की वजह से, जो कहना चाहते थे; उसे सही ढंग से कह नहीं पाये। धूमे और जसवन्त ने आज जो बातें कहीं, उनमें बहुत सच्चाई थी।

हर मुल्क के अपने हालात होते हैं, उसकी अपनी कल्चरी ज़रूरतें होती है। ऐसी चीज़ जो दूसरे मुल्कों या क़ौमों से नक़ल कर ली जाय उसे भी दूसरे मुल्कों में जाकर वहाँ की ज़िन्दगी में जड़ पकड़नी पड़ती है; वरना वह मुर्झा जायेगी, अकरम की असफल फ़िल्मों की तरह !

'इसमें कोई शंका नहीं' अकरम ने अनुभव किया, 'मैंने बहुत बड़ी-बड़ी गलतियाँ की हैं।'

अकरम देर तक यही सोचता रहा, और बहस के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर वह ग़ौर करता रहा; मगर उसे मालूम नहीं था कि एक और आदमी भी बराबर जाग रहा है, वह भी उसकी तरह सोया नहीं। उसी बहस के भिन्न पहलुओं पर वह भी ग़ौर करता रहा है; वह सत्यराय था....।

अकरम को बड़ी हैरानी हुई; जब सत्यराय ने उसका नाम लेकर पूछा—क्यों कि इस पूरी बहस में सत्यराय ने बिल्कुल कोई हिस्सा नहीं लिया था।

"अकरम ?"

"हाँ !"

"जाग रहे हो ?"

"हाँ !"

"उस बहस के बारे में एक बात सोच रहा था।"

"क्या ?"

सत्यराय करवट बदल के अकरम के निकट आ गया। कानाफूसी में बोला, ताकि दूसरे सोनेवाले जाग न जायं, "मुझे कोई दिलचस्पी न थी तुम्हारी फ़िल्मों में

या जिस तरह की फ़िल्में तुम्हारे दोस्त बनाते हैं। मेरा मतलब है कि दिमाग़ी दिलचस्पी तो नहीं, मगर कमर्शियल पहलू से जब फ़िल्में असफल होने लगें तो एक बेचारा दलाल क्या करेगा ?"

"ठीक है।" अकरम बोला।

"मगर—" सत्यराय ने एक लम्बे मौन के बाद कहा—"मगर आज की बहस से मेरा ऐसा ख़्याल होता है कि अगर, ठीक तरीके से, मेरा मतलब है, जैसा कि घूमे और जसवन्त कहते हैं, उन बातों को रखा जाये एक फ़िल्म में, तो भाई मुमकिन है वह फ़िल्म सफल हो जाये—चान्स ज़्यादा है।"

अकरम चुप रहा।

सत्यराय बोला—"क्या कहते हो ?"

"ऊँ—उम—" अकरम ने जवाब दिया।

सत्यराय आहिस्ता से हँसा—"हार नहीं मानना चाहते। ख़ैर ठीक है; मेरा कहने का मतलब यह था कि अबकी तुम और हम मिल के एक तस्वीर बनाएँ, ऐसी ही। उन नये ख़्यालों को इस तरीक़े से पेश करें। क्या ख़्याल है ?"

अकरम ने कहा—"कल की रोटी का तो कुछ पता नहीं; तस्वीर बनाने चले हैं।"

सत्यराय ने कहा—"बेटा ! तुम सत्यराय को नहीं जानते; मैं हूँ बंगाली कायस्थ दुनिया को हिला दूंगा। एक हफ़्ते में दो टेरीटरी बेच दूंगा, ओवरसीज़ तो यूं चुटकी बजाते जायगा और उसके बाद बंगाल, बंगाल में अहीन्द्र घोष डिस्ट्रीब्यूटर मेरा अपना दोस्त है। जब वे टेरीटरी निकल गयीं तो फिर फिनान्स हासिल करना क्या मुश्किल है। रखा, बांधा, ताना, खींचा और खींच के छोड़ दिया कि जाओ बेटा लटके रहो !"

अपनी स्कीम फुसफुसाहट में बताते बताते सत्यराय इस क़दर जोश में आ गया कि उसने अन्तिम वाक्य बिल्कुल चिल्ला के कहा—उसकी तेज आवाज़ सुन के चबूतरे पर सोये हुए दूसरे साथी बल्कि आसपास के बहुत से लोग जाग गये, और चोर-चोर की आवाज़ें लगने लगीं। मगर अकरम ने हँसकर सबको बता दिया, "कुछ नहीं हुआ था, सत्यराय सपने में बक रहा था।"

"देखते जाओ, मैं बक नहीं रहा हूँ, एक रोज़ मेरा यह सपना ज़रूर पूरा होगा।" सत्यराय ने पूरे विश्वास के साथ सर हिलाते हुए कहा और सचमुच मुश्किल से एक मास बीता होगा कि सत्यराय अपनी तस्वीर की दो टेरीटरियाँ बेचने में सफल हो गया जैसा उसने दावा किया था। एक तो ओवरसीज़ और दूसरी बंगाल की टेरीटरी। और कान्ट्रैक्ट लाके अकरम को दिखाया। इस कान्ट्रैक्ट में तस्वीर का नाम था—तूफ़ान।

"तूफ़ान की कहानी क्या होगी ?" अकरम ने पूछा।

"अब मैं क्या जानूं ?" सत्यराय ने बड़ी सफ़ाई से कहा—"अब कहानी तुम बताओ, डिस्ट्रीब्यूटर कहानी का नाम पूछता था, नाम बताये बग़ैर कान्ट्रैक्ट कैसे हो सकता है ? मुझे फ़िल्म कम्पनी का नाम भी देना पड़ा; मैंने अपना नाम दे दिया—सत्यराय प्रोडक्शन !"

"और कम्पनी का पता ?"

"मार्फ़त फुटपाथ बम्बई। अभी तो यही पता है।" सत्यराय ने हँसकर कहा—"मगर तुम देखते जाओ, इस तरह एक न एक रोज़ फिनान्स भी हासिल कर लूंगा।"

"हिप हिप हुर्रे !" अकरम जोर से चिल्लाया।

"मज़ाक मत करो, मामला बहुत गम्भीर है।"

"हुँ, कैसे ?" जसवन्त ने पूछा।

"बात यह है कि कालबादेवी रोड पर एक सिन्धी सेठ की पेढ़ी है; मैं उस पेढ़ी पर गया था, सेठ से मिलने के लिए। वह सेठ प्रोड्यूसरों को, पिक्चर गिरवी रख के उस पर रुपया देता है। मैंने उससे बात की थी, वह हमारी पिक्चर को फिनान्स करने के लिए तैयार है। उसने मुझसे कहानी भी सुनी। कहानी उसे बहुत पसन्द आयी।"

अकरम ने कहा—"तुमने उसे कहानी भी सुना दी, कैसे ?"

"जो मेरे जी में आया मैंने बढ़ा-चढ़ा के उसे सुना दिया। इन मामलों में तुम जानते हो, जब मैं अपनी बातों में आ ही जाऊँ, तो कोई मेरा मुक़ाबला नहीं कर सकता। मैंने ऐसे गरजते गूंजते शब्दों में उसे कहानी सुनाई कि वह वहीं पर चित्त हो गया। उसने मेरे घुटने पकड़ लिये बोला—सत्य बाबू ! ऐसी कहानी मैंने ज़िन्दगी में नहीं सुनी। मैंने कहा—तुम क्या जानते हो; यह कहानी किसी छोटे-मोटे फिल्मी मुन्शी की कहानी नहीं है; अरे यह कहानी इन्टरनेशनल ख्याति प्राप्त लेखक और कवि—हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, चीन, जापान, और अफगानिस्तान के महान कलाकार जनाब अकरम बाबू की है। अकरम बाबू तुम मुझको दुआ दो मैंने तुम्हारा झंडा फुटपाथ बम्बई से उठाया, हिमालय पर गाड़ दिया; हिमालय से उठाया, एशिया पर गाड़ दिया, जयहिन्द !"

सत्यराय आगे बोला—"घबराओ नहीं अकरम बाबू ! कहानी वही तैयार होगी जो तुम चाहोगे। उस सेठ को कहानी भला क्या याद रहने की है, और अगर याद रहेगी भी तो कह देंगे—हमने बाद में बदल दी; इस वक्त बहुत बड़ा काम तो फिनान्स हासिल करना है।"

"मगर पूंजी कैसे हासिल की जाय ? यही तो सबसे बड़ी मुश्किल है।" मनजीत सिंह ने कहा—"एक है सरदार गुरुमुखसिंह ! लकड़ी का कन्ट्रैक्टर था किसी ज़माने में, मगर वह सिर्फ़ टैक्सियों पर रुपया देता था।"

"अरे इन दो-चार हज़ार से क्या होगा ?" सत्यराय ने मुस्करा के कहा—"मनजीत सिंह जी ! यहाँ तो लाखों की बात हो रही है; कम से कम एक लाख साठ हज़ार चाहिए।"

जसवन्त ने कहा—"तुम उस पेढ़ीवाले सेठ की बात कर रहे थे ?"

"हाँ ! वह तैयार है डेढ़ लाख देने के लिए। मगर एक टेरीटरी और बिक जाय तब देगा। कहता है—उत्तरी हिन्दुस्तान की टेरीटरी बेच के दिखाओ।"

"तो बेच के दिखाओ।" धूमे बोला—"दो तो तुमने बेच ही डाली हैं।"

"अरे मेरा बस चले तो मैं सेठ की पेढ़ी भी बेच कर दिखा दूं; मगर मेरे हाथ में भी तो कुछ हो। सुबह से शाम तक सिगरेट-पान-बीड़ी का खर्चा नहीं चलता। खैर, वह सब छोड़ो।" सत्यराय यह कह कर आगे झुक गया और गम्भीर होके बोला—"बात यह है दोस्तों ! कि पचास प्रतिशत काम हो गया है। अब पचास प्रतिशत काम बाक़ी है। इसमें कुछ थोड़ी-सी मदद तुम लोग करो तो झंडा एशिया पर गड़ जाये।"

"कैसे ?" फ़ज़ल ने पूछा।

× × ×

बातचीत चूंकि फ़िल्म के बारे में हो रही थी; इसलिए जमुना बिल्कुल खामोश बैठी थी। हाँ, फ़िल्म की चर्चा सुनकर रफिया चबूतरे पर आ बैठी थी; उसने अभी अभी सिर धोया था; इसलिए उसके बाल खुले और गीले थे और वह इस सारी बातचीत को ध्यान से सुनते हुए बार बार तौलिये से अपने बालों को सुखाती जाती थी। बाबूराम कभी कभी औरों की नजर बचाकर उसकी तरफ़ देख लेता। उसका चेहरा इस वक्त अनाथ कुत्ते की तरह लालची दिखाई दे रहा था। नहाने के बाद जवान औरत की रंगत में जो ताज़गी और निखार आ जाता है उसने बाबूराम को बिल्कुल आकर्षित सा कर लिया था। वह बार बार नज़र चुरा कर उसकी तरफ़ देख लेता; और जब देखता तो सर से पाँव तक उसके बदन में आग सी लग जाती।

"देखो मैं फ़िल्म बिजनेस को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ।" सत्यराय ने सबको समझाते हुए कहा, "यह तीसरी टेरीटरी इस तरह नहीं बिकेगी; जैसी ये पहले दो बिक गयी। पीढी वाला सेठ इस तरह फिनान्स करेगा कि अब वह मौक़ा आ गया है कि फेमस बिल्डिंग महालक्ष्मी में एक कमरा लिया जाय। वह फ़िल्मी दफ़्तरों

का गढ़ है। तमाम डिस्ट्रीब्यूटर लोग वहाँ पर रोज़ आते है। वहाँ दफ़्तर खोलना चाहिए। मैंने बिल्डिंग के मैनेजर से बात भी की है; सिर्फ़ तीन माह का किराया पेशगी देना पड़ेगा पौने पाँच सौ रुपया। फिर कुछ फर्नीचर भी चाहिए; वह तो खैर किराये पर आ सकता है। एक चपरासी रखना पड़ेगा। पहले रोज़ जिस दिन दफ़्तर खोला जायगा, उस रोज़ उसका मुहूर्त भी होगा। मैं बहुत से डिस्ट्रीब्यूटर लोगों को बुलाऊँगा, उस दिन पेड़े बांटे जायेंगे, बस पचास रुपये का खर्चा उस दिन होगा। मैं समझता हूँ हमारे पास अगर कुल सात सौ रुपया हो तो काम चल सकता है। टेरीटरी बिक सकती है, पिक्चर बन सकती हैं, झंडा गड़ सकता है।"

"सात सौ रुपये इकट्ठा करना नामुमकिन है।" अकरम ने कहा।

"क्या नामुमकिन है ?" रफ़िया ने जोश से कहा, "पाँच रुपये मैं देती हूँ, दस रुपये मेरी सहेली रज़िया देगी, बीस रुपये मेरी सहेली का मर्द देगा, यह पैंतीस रुपये तुम मेरे नाम लिख लो।"

"हुर्रे" जसवन्त ताली बजा के बोला—"भई ! औरत शर्म दिला रही है, तब तो कुछ करना ही पड़ेगा। क्यों धूमे ?"

"मै चार रुपये दूंगा।" धूमे सतर्कता से सोच सोच के बोला—"लेकिन मैं अपनी मिल में बात करूँगा, अगर मज़दूरों की समझ में बात आ गयी—तो—पहली तारीख़ भी क़रीब आ रही है, तुम्हें काफ़ी मिल जायगा।"

"पैंतीस चार उन्तालिस !" अकरम गिनते हुए बोला।

फ़ज़ल बोला—"मै इकट्ठी रकम तो नहीं दे सकता, लेकिन हर रोज़ की कमाई से एक रुपया दे सकता हूँ; एक महीना तक।"

"फ़ज़ल तीस रुपये ? अबे साले !" मनजीत सिंह जल्दी से ताव खा के उठा और वह कोई बहुत रक़म बोलने वाला था कि यकायक उसे अपने छोटे भाई करतार का ख्याल आया; और उसका मुँह खुले का खुला रह गया। उसका चेहरा जो उस वक़्त जोश और प्रसन्नता से चमक उठा था; यकायक बुझ गया। एक छाया-सी उसके चेहरे पर आ गयी। उसने यकायक अपना खुला हुआ मुंह बन्द कर लिया, सिर झुका लिया और बोला—"मैं—मैं—दस रुपये से ज्यादा नहीं दे सकूंगा; वह भी महीने भर में दूंगा। फ़ज़ल की तरह। मेरा भाई करतार"— वह इतना कह कर चुप हो गया।

फ़ज़ल ने उसे गले से लगा लिया। उसकी पीठ पर थपकी देकर बोला—"अबे ढक्की ! दस रुपये कम हैं क्या तेरी तरफ़ से ? मैं तो अकेला हूँ तेरे ऊपर तो करतार की पढ़ाई का खर्चा है, क्या हम नहीं समझते हैं।"

जसवन्त बोला—"आठ आना रोज़ करके एक महीने के लिए मुझसे भी लेते जाओ।"

"वाह! वाह!" रफ़िया ने ज़ोर से ताली बजाई; फिर वह बाबूराम की तरफ़ देख कर बोली—"और तुम? तुम क्या दोगे?"

बाबूराम दो रुपये कहने वाला था; मगर जब उसने रफ़िया को अपनी तरफ़ संकेत करते हुए देखा, तो वह बिल्कुल घबरा सा गया; उसकी ज़बान बन्द हो गयी। रफ़िया का मीठा-मीठा सवाल उसे उकसाने लगा—तुम क्या दोगे? तुम क्या दोगे? उसकी आवाज़ उसके कानों में ज़ोर ज़ोर से गूंजती रही।

यकायक बाबूराम ने चिल्ला के कहा—"बीस रुपये।" वह इतनी ज़ोर से बोला कि उसे खुद भी अपनी आवाज़ पर आश्चर्य हुआ? दूसरों को उसकी आवाज़ पर नहीं, उसकी उदारता पर हैरत हुई, बाबूराम बीस रुपये! वह देगा कैसे?

जसवन्त ने कहा—"कुछ कम कर दो, घबराहट में ज़्यादा बोल गये हो शायद।"

"नही नहीं!" बाबूराम अकड़ के बोला—"मैं बीस ही दूंगा, चाहे इस पहली को ले लो।"

"और जमुना दादी तुम?" रफ़िया ने मुड़ कर जमुना से पूछा।

और बाबूराम को बेहद अफ़सोस हुआ कि रफ़िया ने उस की उदारता और साहस पर ताली नहीं बजाई। वह उसे इस तरह भूल गयी जैसे वह वहाँ था ही नहीं। उसे दूसरे क्षण अपनी फ़िज़ूलख़र्ची पर बड़ा क्रोध आया। व्यर्थ में वह बीस रुपये बोल गया।

"अरे वह क्या देगी?"—मनजीत सिंह ने जो अब तक चबूतरे के एक तरफ़ अधलेटा-सा था यकायक उठ खड़ा हुआ। सब जानते थे कि मनजीत सिंह को जमुना से बड़ी नफ़रत है। वह जप जी का पढ़नेवाला, पूजापाठ का भगत, नियम के साथ गुरुद्वारे जानेवाला, धर्म-कर्म का सच्चा सादा सिख था। उसे जमुना से, उसके बीते जीवन से बड़ी नफ़रत थी। यहाँ, बस्ती में ही जब उसने देखा कि वह कितनी कंजूस है और किस तरह एक-एक पाई पर जान देती है तो उसकी नफ़रत और भी बढ़ गयी। मगर उसके साथी और दोस्त उसके इस व्यवहार को पसन्द नहीं करते थे और वे जमुना से, तथा जहाँ तक हो सके, बस्ती के दूसरे लोगों से अच्छा सलूक करते थे। इसलिए मनजीत सिंह भी उसकी उपस्थिति को चबूतरे पर सहन कर लेता था। यद्यपि जमुना पैसे पर जान देती थी; मगर उनके कई तरह के काम यूँ ही कर देती थी—लालटेन को साफ़ करके चबूतरे पर लटकाना, चबूतरे पर झाड़ू देना, उनके कमरों की रखवाली करना, क्योंकि

वे सब लोग तो अपने काम से बाहर चले जाते थे, वही उनकी झोंपड़ियों का ख्याल रखती थी। उनमें से अगर कोई बीमार पड़ जाये, जो कम होता था, तो वह दवा-दारू लाती थी। उनकी सेवा सुश्रूषा करती थी और यह सब बिल्कुल खामोशी से, चुपचाप, एक शब्द बोले बिना। साधारणतः जमुना इस क़दर खामोश रहती थी जैसे उसके मुंह में ज़बान नहीं है, बस खाली हूँ-हाँ या नहीं से अपना काम चलाती थी। जब रफ़िया ने जमुना से पूछा तो इसके पहले कि जमुना कुछ बोलती; मनजीत सिंह ने अपनी जगह से उठते हुए कहा—"अरे यह कंजूस-मक्खीचूस औरत क्या देगी? अरे इसका धन मत लो सत्यबाबू! तुम्हारी पिक्चर फेल हो जायगी, यह तो धेले-धेले पर जान देती है।"

सब हँस पड़े; क्योंकि यह सच था। जमुना सममुच रुपये-पैसे के मामले में बड़ी कंजूस थी।

"अब मत कहो" फ़ज़ल ने जमुना को फुसलाते हुए कहा, "बेचारी जमुना अगर लुटाने पर आ जाय तो तुम्हारी सारी पिक्चर खुद बना डाले, झोंपड़े में इतना ढेर सा रुपया दबा रखा है उसने। मरने के बाद हम ही में से किसी एक के नाम वसीयत कर के जायगी।"

फिर सब हँसने लगे। मगर रफ़िया नहीं हँसी बल्कि उसके माथे पर बल पड़ गये। उसने जमुना का पल्लू पकड़ के कहा, "अच्छा, मज़ाक जाने दो भाई, जमुना दीदी कितने रुपये दोगी तुम?" रफ़िया बड़ी मिठास से बोली।

जमुना के होंठ काँपे। उसने अपने सूखे हुए होठों पर ज़बान फेरी, आग बरसानेवाली निगाहों से उसने मनजीत सिंह की तरफ़ देखा और बोली—"एक रुपया!"

"इन्क़िलाब जिन्दाबाद!" मनजीत सिंह दोनों हाथ ऊपर उठा के बोला, और फिर अकरम की तरफ़ मुड़के कहने लगा—"गज़ब हो गया अकरम बाबू। बस्ती में तुम तो इन्क़िलाब ले आये। अभी तक जमुना ने एक रुपया क्या एक छदाम तक किसी नेक काम के लिए नहीं दिया था। यह तुमने क्या कर दिया! मेरे ख्याल में तो बुढ़िया मर मिटी तुम पर।"

"छिः! छिः!" रफ़िया ने उसे टोकते हुए कहा।

मनजीत सिंह यद्यपि अपना वाक्य पूरा न कर सका; फिर भी जमुना ने समझ लिया था कि वह क्या कहना चाहता है; वह गुस्से से उठ कर चली गयी।

उसके जाने के बाद रफ़िया ने कहा, "तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए था।" "हाँ, हाँ, यह बहुत बुरी बात की तुमने।" बाबूराम ने रफ़िया का समर्थन किया।

"अच्छा यारो !" मनजीत सिंह लहरा कर बोला, "आइन्दा नहीं कहूँगा, अब तुम आगे चलो !" वह हमेशा ही कहता था, आइन्दा नहीं कहूँगा, मगर फिर कहता था। लोग उसकी कमज़ोरी जानते थे, चुप हो रहे।

अकरम ने कहा—"मैं अभी कुछ नहीं दे सकता; मुझे जसवन्त के बहुत से रुपये उधार देने हैं, उस रक़म को चुका देने के बाद अलबत्ता—"

सत्यराय ने चिल्ला के तुरन्त कहा—"अरे ! तुमसे तो बहुत से काम लेने हैं—कहानी, सिनेरियो, संवाद, दिग्दर्शन सब तुम्हारा होगा; तुम्हें तो हम अपने पास से कुछ देंगे।" फिर वह पलट के बोला—"हिसाब करो कितनी रक़म हुई है। यह सब रक़म मैं दोस्तों को वापस कर दूँगा। एक-एक पाई। सूद समेत। पिक्चर सेन्सर हो जाने के बाद। मैं प्रोड्यूसर रहूँगा, अकरम डाइरेक्टर होगा, रफ़िया का एक शानदार रोल होगा, एक्स्ट्रा लोगों पर एक पाई खर्च करने की ज़रूरत नहीं है। बस्ती के सब लोग हमारे साथ फ़िल्म में एक्स्ट्रा लोगों का काम करेंगे। वह रुपया साफ़ यूँ बच जायगा, एशिया पर झंडा गड़ जायेगा।"

अकरम काग़ज़ पर हिसाब करने लगा। रफ़िया ने तौलिये से दो-एक बार बालों को झिटक कर सुखाते हुए उनका जूड़ा बाँध लिया। बाबूराम उसकी गर्दन की सुराहीदार बनावट को देखने लगा। इतनी ज़िन्दगी गुजर गयी थी; आज तक किसी जवान औरत ने उसकी तरफ़ मुस्करा के न देखा था।

अकरम ने कहा—"एक सौ पन्द्रह रुपये होते हैं।"

"और हमें चाहिए सात सौ रुपये !" सत्यराय ने बड़ी उदासी से कहा—जैसे उसका बना बनाया घरौंदा यकायक ज़मीन पर आ गिरा हो।

सब चुप हो गये; पाँच-दस-बीस-सौ की बात होती तो वे लोग कुछ करते; मगर इकट्ठे छः सौ रुपये ! बहुत ज़्यादा फ़र्क़ था स्वप्न में और सत्य में, आशा और वास्तविकता में, आसमान में और ज़मीन में; बहुत ज़्यादा दूरी थी !

सबके चेहरे निराश और काले नज़र आने लगे। अकरम ने वह काग़ज का पुर्ज़ा टुकड़े-टुकड़े करते हुए बुरा-सा मुँह बनाकर कहा—"हटाओ, गोली मारो।"

लेकिन उसके कुछ रोज़ बाद जब नये महीने की पहली तारीख़ को धूमे ने अकरम को तीन सौ रुपये ला के दिये; तो वह चौंक पड़ा, दंग रह गया और जब धूमे ने उसे बताया कि यह तीन सौ रुपये मज़दूरों ने अपने ख़ून-पसीने की कमाई में से दो-दो चार-चार आने करके दिये हैं; तो अकरम की आँखों में आँसू आ गये। अकरम ने रुपये गिनकर सत्यराय को दिये। सत्यराय का चेहरा इस तरह खिल गया; जैसे किसी ने उसकी आँखों के अन्दर का बुझा हुआ बल्ब उतारकर नया बल्ब

जला दिया हो। उसका चौड़ा चेहरा ख़ुशी से चमकने लगा और उसने दोनों हाथ ऊपर उठा के कहा—"झण्डा गाड़ दिया!"

रफ़िया बोली—"मैंने अपने यहाँ डान्सर्स युनियन में बात की थी; वे लोग हमारी तस्वीर में मुफ़्त काम करेंगे।"

"हुर्रे!" अकरम ने ख़ुशी से ताली बजाई।

"और हाँ, ये दस रुपये रज़िया ने दिये हैं।" रफ़िया ने अकरम को दस रुपये दिये। अकरम ने सत्यराय को दे दिये।

"ढाई-तीन सौ अभी और चाहिए।" अकरम ने सोचते हुए कहा—"कहाँ से आयेंगे?"

"सोचेंगे! सोचेंगे!" सत्यराय ने ख़ुश होके कहा—"ठहर जाओ; मैं कल जाके फेमस बिल्डिंग के सेठ से बात करता हूँ, शायद वह कम ऐडवान्स लेने पर राज़ी हो जाय।"

× × ×

वह रात बहुत अँधियारी थी, आसमान बादलों से ढँका हुआ था, बारिश कम थी; मगर हवा के ज़ोर से इस क़दर तेज़ फ़र्राटों में आती थी कि लोगों ने बस्ती में अपनी झोंपड़ियों के दर्वाज़े बन्द कर लिये थे और अन्दर पड़े सो रहे थे। सिर्फ़ अकरम की आँखों में नींद नहीं थी, वह रात के सन्नाटे में अपनी झोंपड़ी के दर्वाज़े पर खड़ा दूर आसमान की तरफ़ तक रहा था; जहाँ तूफ़ान कड़क रहा था, बिजली चमक रही थी और हवा बारिश की बौछारें अपने हाथों में लिये हुए सारे शहर में एक उन्मत्त मस्ती के आलम में नाच रही थी। अकरम विचारों में खोया हुआ था। वह उस वक़्त चौंका; जब उसने देखा कि जमुना उसके साथ खड़ी है और लालटेन उठाये उसके चेहरे की तरफ़ तक रही है। अकरम को मालूम था जमुना रात को नहीं सोती है; फिर भी वह इस तरह जमुना को अपने सामने देखकर चौंक गया।

जमुना ने अपने बेदाँत के मसूढ़ों से मुस्कराते हुए पूछा—"नींद नहीं आयी?"

"हूँ!—हाँ!"

अकरम उन पुतलियों में खो गया। वे आँखें जिन्होंने जाने कैसी-कैसी ज़िन्दगी देखी थी, बेपलकों के पपोटे! कभी उन आँखों में बिजली दौड़ती थी, उन आँखों में कभी पलकें धीरे से उठकर गिरकर नौजवान दिलों को गरमा देती थीं। जमुना किसी गाँव की रहनेवाली थी? शायद उसका कोई बाप भी था, कोई मा, कोई भाई—? फिर क्या हुआ?

अकरम उन पुतलियों में खो गया।

जमुना ने अपने पपोटे झपकाते हुए, जो अकरम को बड़े उपहासजनक मालूम

हुए, धीरे से कहा—"तुम कैसी कहानी सोच रहे हो। अपनी फ़िल्म के लिए—?"

"यह एक कहानी है; किसान और उसकी ज़मीन के बारे में।"

"किसान ?—ज़मीन ?" जमुना ने धीरे से प्रश्नसूचक भाव में कहा; फिर अपने आप से कहने लगी—"मैं भी एक किसान की बेटी थी।"

फिर वह चुप हो गयी, थोड़ी देर बाद उसने फिर पूछा—"और उस कहानी में लड़कियाँ भी होंगी ?"

"होंगी !" अकरम ने जवाब दिया।

"तुम कैसा उनके साथ सलूक़ करोगे ?" जमुना ने काँपती हुई आवाज़ में पूछा।

"क्या मतलब ?" अकरम ने पूछा।

जमुना बोली—"मेरा मतलब है, वे कैसी लड़कियाँ होंगी, मर्दों के खिलौने या इन्सान ?"

अकरम ने चौंककर आश्चर्य से जमुना की तरफ़ देखा। वह उसकी तरफ़ देखता ही रह गया। देखता ही चला गया।

"जवाब दो !" जमुना की आवाज़ में ज़रा-सी सख्ती थी।

"इन्सान !" अकरम ने आहिस्ता से कहा।

जमुना ने वह लालटेन ऊपर उठाई, ऊपर उठाई, लालटेन बिल्कुल अकरम के चेहरे के सामने आ गयी। इतने में बिजली यकायक चमक उठी, ज़ोर का कड़ाका हुआ, बिजली का कौंधा शहर के चारों तरफ़ फैल गया। अकरम की आँखें सहसा बन्द हो गयीं, लेकिन जब खुलीं तो वह फिर उसी बुढ़िया की लालटेन को ही देख रहा था। बहुत देर के बाद बुढ़िया ने साँस ले के कहा—"मुझे विश्वास है तुम उनसे इन्सानों का-सा वर्ताव करोगे।" फिर उसने लालटेन नीचे कर दी। काँपते हुए हाथों से उसने अपनी चोली में हाथ डाला और तीन सौ के नोट निकाल कर अकरम के हाथों में दे दिये, "जाओ फ़िल्म बनाओ, भगवान तुम्हें क़ामयाब करें।" और वह जल्दी से क़दम मोड़कर, तेज़ी-तेज़ी अपने झोंपड़े की तरफ़ चली गयी। यकायक बारिश के एक तेज़ थपेड़े से लालटेन बुझ गयी और चारों तरफ़ अन्धेरा छा गया।

मगर उस रात बहुत देर तक अकरम झोंपड़े के दर्वाज़े पर खड़ा रहा और हैरान होता रहा। उसके मस्तिष्क में मैडम आयीं और फिर यह सूरत जिसका नाम जमुना था, वह सेठ जिसका नाम बांकड़िया था; और वह टैक्सी ड्राइवर जिसका नाम फ़ज़ल था, मनजीत सिंह था, वह बजनदत्त जिसने अपने लोकगीतों को बेच रखा था और धूमे और जसवन्त; कितने ही चेहरे नये और पुराने सामने खड़े होते गये, और वह उन दोनों दुनियाओं के बीच में दर्वाज़े पर खड़ा रहा और हैरान होता रहा। फिर यकायक एक क्षण में बिजली के कौंधने की तरह उसकी समझ में आ

गया कि उसे किधर जाना है। यकायक दर्वाज़े को छोड़कर वह बाहर गली में बैठ गया, बारिश के तेज़ थपेड़ों ने उसे सर से पाँव तक भिगो दिया, मगर अकरम ने ज़रा परवाह न की। यकायक खुशी की एक लहराती हुई करेन्ट उसके सारे शरीर में पैरती हुई चली गयी और जब बादल गरजा तो उसने अपने सीने के बटन खोल दिये और अपने दोनों हाथ फ़र्श से आसमान की तरफ़ उठा दिये, और बेथोवन के शब्दों में कहा—

"मैं आदमी हूँ, मैं बादलों की तरह गरजूँगा; और उतनी ही गम्भीर बुलंद आवाज़ में संगीत पैदा करूंगा!"

३६

गाड़ दिया, झंडा गाड़ दिया

वह दिन कितना खूबसूरत और खुशियों से भरा हुआ था; जिस दिन सत्यराय और अकरम ने फ़ाइन फ़िल्म्स के दफ़्तर का फेमस बिल्डिंग में मुहूर्त किया। उसकी जान-पहचान वाले फ़िल्म के बहुत से लोग इस मौक़े पर मौजूद थे; लेकिन नये लोग भी मौजूद थे; जिन्हें इससे पहले ऐसे मौक़ों पर किसी ने न देखा था। अर्थात् मनजीतसिंह टैक्सी ड्राइवर, धूमे टेक्सटाइल मज़दूर, जसवन्त टाइपिस्ट, बाबू-राम, फ़ज़ल और बस्ती के बहुत से मज़दूर, कारीगर मौजूद थे। छाटा मिल्स की वर्कर्स युनियन ने इस मौक़े के लिए अपने तीन प्रतिनिधि भेजे थे। डान्सर्स युनियन, एक्स्ट्राज युनियन, और लाइट मैन्स युनियन के प्रतिनिधि भी मोजूद थे; और इन लोगों की संख्या शार्कस्किन की पतलून और दो घोड़ा बोस्की की कमीज और सोने के बटन पहननेवालों से कहीं ज्यादा थी। ये लोग बोलचाल, मिज़ाज और रंग-रूप के खुर्दरे, खरे, सख्त और गँवार नज़र आते थे; लेकिन आज ये सब लोग बेहद खुश थे। दफ़्तर का कमरा इन लोगों के हँसी ठट्ठों से भरा हुआ था। एक कोने में जमुना सफ़ेद धोती पहने सिमटी-सिमटाई बैठी थी। बहुत दिनों के बाद आज वह दिन को भी जाग रही थी। उसने पहले तो आने से इन्कार किया था; मगर सत्य-राय और उसके साथी नहीं माने। ज़िन्दगी में जमुना के लिए शायद यह पहला मौक़ा था कि वह इज्ज़तवाले लोगों में इस तरह इज्ज़त से बैठी हुई थी। बार-बार उसकी आँखें आँसुओं से भर जातीं और वह उन्हें धीरे से अपनी सफ़ेद धोती के उजले पल्लू से पोंछ लेती। बस्ती में तो वह गन्दी नहीं तो कम से कम बेहद मैले कपड़ों में रहती थी। वह, यहाँ पहली मर्तबा जाने कितने सालों के बाद एक सफ़ेद

धोती पहनकर आयी थी। उसे उन लोगों में बैठकर ऐसा लग रहा था कि जैसे ख़ुद उसकी आत्मा साफ़ और उजली हो गयी है। जब दफ़्तर का मुहूर्त्त हो चुका और पेड़े बँट चुके और लोग अकरम और सत्यराय से हाथ मिला के मुबारकबाद देकर चले गये, तो स्वदेश परांजपे अकरम और सत्यराय को दफ़्तर के बाहर बरामदे में ले गया। और कहने लगा—

"तुम जानते हो, सेठ ने स्टुडियो के कर्मचारियों को चार महीने से तनख़्वाह नहीं दी ?"

"हूँ !" अकरम ने कहा।

"हाँ, किसी तरीक़े से इन चार महीनों में हम काम चलाते रहे; मगर जब पानी सर से गुजर गया, तो हमने हड़ताल करने की धमकी दी। सेठ बोला—मेरे पास पैसे नहीं हैं। तुम समझो स्टुडियो तुम्हारा है। तुम इसे चलाओ। उसका ख़्याल था शायद हम इसे चला नहीं सकेंगे, हम लोगों ने एक मीटिंग करके स्टुडियो अपने हाथ में ले लिया है।"

"मगर क्या तुम इसे चला पाओगे ?" सत्यराय ने पूछा, "ऐसा न हो, झण्डा कहीं हिमालय से उठे और कीचड़ में गिर जाये।"

स्वदेश ने मुस्करा के कहा—"नहीं, ऐसा नहीं होगा। हमने बहुत-सोच समझ के ऐसा किया है। हमने स्टुडिओ वर्कर्स की एक क्वापरेटिव बना ली है और क्वापरेटिव अब स्टुडियो चलाएगी, एक साल के लिए। हमने भी सोचा कि सेठ स्टुडियो का किराया बहुत ज़्यादा लेता था; साढ़े सात सौ रुपये रोज़ सचमुच बहुत ज़्यादा हैं। वह तो लूटता था लोगों को। हमें तो लूटना है नहीं; हमने स्टुडियो का रेट घटाकर छः सौ कर दिये हैं।"

"बहुत अच्छा किया।" अकरम बोला।

स्वदेश ने कहा—"अब मैं असली बात की तरफ़ आता हूँ। मुझे मालूम है कि तुम लोग किस तरह तस्वीर बना रहे हो, तुम लोगों के किस तरह के ख़्यालात हैं, कौन लोग तुम्हारी मदद कर रहे हैं। हम भी मदद करना चाहेंगे। हम लोगों ने फ़ैसला किया है; अगर तुम लोग हमारे स्टुडियो में तस्वीर की शूटिंग करो तो हम तुम्हें पचास फ़ीसदी उधार देंगे; यानी छः सौ रोज़ाना में से तुम्हें एक शूटिंग का सिर्फ़ तीन सौ देना पड़ेगा, बाक़ी तीन सौ सेन्सर के बाद।"

अकरम ने ज़ोर से स्वदेश का हाथ पकड़ लिया और स्वदेश ने उसका और दोनों ने सीधी निगाह से एक दूसरे की तरफ़ देखा; यह एक बड़ा ही मज़बूत सम्बन्ध था। अकरम को मालूम था कि स्टुडियो के मज़दूर कितनी मेहरबानी कर रहे थे इस तस्वीर के लिए। अपनी प्रतिदिन की कमाई में से भी बीस हज़ार का

उधार इसे पूरी करने के लिए दे रहे थे। सत्यराय, अकरम और स्वदेश दोनों से गले मिला। उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसने चिल्लाकर कहा—"गाड़ दिया, झंडा गाड़ दिया, फेमस बिल्डिंग से उठाया और सारी फ़िल्म इन्डस्ट्री पर गाड़ दिया। अब दुनिया की कोई ताक़त हमें पराजित नहीं कर सकती !"

वह इतने ज़ोर से चिल्लाया कि आसपास के दफ़्तरों के बाहर बैठे हुए बहुत से ऊँघते हुए चपरासी जाग गये और चौंककर उसकी तरफ़ देखने लगे। कई लोग तो अपने दफ़्तरों से बाहर निकल आये। स्वदेश परांजपे मुस्कराया और वह सत्यराय की बग़ल में हाथ डालकर उसे वापस दफ़्तर के अन्दर ले गया।

शाम के क़रीब जब अकरम दफ़्तर बन्द करके चर्चगेट जानेवाला था जहाँ मन्चुनी रेस्तोरां में रोज़ी ने उसे चाय की दावत दी थी; एक लड़की उसके दफ़्तर में आयी। उसकी ठोढ़ी छोटी थी, गाल पिचके हुए; लेकिन आँखें बड़ी और चमकदार ! वह आते ही एक कुर्सी पर बैठ गयी; बिना पूछे-जांचे और अकरम से कहने लगी—

"मुझे काम चाहिए !"

"हूँ !" अकरम ने जवाब दिया।

"मैं गा सकती हूँ, नाच सकती हूँ, संवाद बोल सकती हूँ। तैरना, घोड़े की सवारी करना, बाइसिकल चलाना यह सब काम कर लेती हूँ; कालेज के ड्रामो में अक्सर काम करती थी।"

"हूँ !" अकरम ने मेज़ की दराज़ खोल कर उसमें से कुछ पन्ने निकाले और उस लड़की को पढ़ने के लिए दिये, "पहले इन्हें पढ़ लीजिए और फिर औरत के पार्ट के संवाद आप बोलिए।"

कुछ मिनट की देर के बाद उस लड़की ने वे संवाद सुनाये; अदा की तर्ज़ बहुत उम्दा और प्यारी। आवाज़ में जान, रस और ड्रामा।

"आप का नाम ?" अकरम ने पूछा।

"आहपारा !"

"घरवाले तो ऐसा नाम नहीं रख सकते।" अकरम ने मुस्करा के कहा।

"जी नहीं ! यह मेरा फ़िल्मी नाम है; मेरा असली नाम तो विमला है।"

"विमला क्या बुरा है ?"

वह लड़की खामोश हो गयी, थोड़ी देर बाद बोली—"तो आप मुझे काम देंगे? आपको मुझे काम देना ही होगा।"

अकरम ने सोचते हुए आहिस्ता से कहा—"एक छोटा सा रोल है, एक माह

में आपका काम खत्म हो जायगा। सिर्फ़ ढाई सौ रुपये मिलेंगे पूरे काम के लिए। इससे ज्यादा हमारे पास बजट नहीं है।"

"मुझे मंज़ूर है!"

अकरम ने जसवन्त की तरफ़ देख कर कहा—"भइ! इनका कांट्रैक्ट टाइप कर दो," फिर अकरम ने आहपारा की तरफ़ मुखातिब होके कहा—"आप अपना ऐड्रस (पूरा पता) इन्हें बता दीजिए, वह आपका कांट्रैक्ट टाइप कर देते हैं।"

जसवन्त ने शाम के दो घन्टे अपनी फ़िल्म कम्पनी के दफ़्तर को देने मंज़ूर किये थे। वह अपना टाइप राइटर यहाँ उठा कर ले आया था; ताकि फ़िल्मी कांट्रैक्ट, कलाकारों के, फिनान्सरों के, डिस्ट्रीब्यूटरों के, कागज़ात टाइप हो सकें।

जब कांट्रैक्ट टाइप होके आहपारा के सामने आया; तो उसने दस्तख़त कर दिये। उसने दस्तख़त करने के बाद कांट्रैक्ट की एक नक़ल आहपारा को दी, आहपारा ने अपने पर्स में डाल दी। उसके बाद भी वह कुर्सी पर बैठी रही, थोड़ी देर के बाद बोली—

"ऐडवांस?"

अकरम ने जसवन्त से कहा...."भइ, इन्हें तीस रुपये दे दो। रसीद ले लो।"

तीस रुपये लेकर लड़की ने अपनी पर्स में डाल लिये; उसके चेहरे पर न कांट्रैक्ट पर दस्तख़त करते वक़्त, न ऐडवांस लेते वक़्त किसी प्रकार की ख़ुशी के भाव उभरे; वह पत्थर की तरह बग़ैर हिले-डुले कुर्सी पर बैठी रही।

अकरम ने सोचा था, अब वह चली जायेगी, ख़ुद-बख़ुद। मगर जब चन्द मिनट गुज़र जाने के बाद भी वह न गयी; तो वह ख़ुद चलने के लिए तैयार हो गया; क्योंकि उसे देर हो रही थी। रोज़ी मन्जुनी में उसका इन्तज़ार कर रही होगी। अकरम ने जसवन्त को दो एक काग़ज़ टाइप करने के लिए दिये; दफ़्तर की चाभी उसके हवाले की और कमरे से बाहर निकल गया। वह लड़की भी उसके साथ ही कमरे से बाहर निकल आयी और उसके पीछे-पीछे चलने लगी, अकरम ने कोई ज्यादा ध्यान न दिया।

लेकिन जब फेमस बिल्डिंग से बाहर निकल के महालक्ष्मी के पुल की तरफ़ जाते हुए भी उसने उस लड़की को अपने साथ पाया, तो उसने आश्चर्य की निगाहों से उसकी तरफ़ देखकर कहा—"फ़र्माइये!"

वह बोली, "मैं क्या फ़र्माऊं, आप फ़र्माइये! अब मुझे कहाँ चलना है?"

"क्या मतलब?" अकरम ने पूछा।

आहपारा ने बड़ी नफ़रत से उसकी तरफ़ देख के कहा—"आपने अपना काम कर दिया; अब मेरी बारी है। ज्यादा बनिए नहीं, मैं सब समझती हूँ, रात को आप

मुझे जुहू पर ले जाने के लिए आयेंगे, उस वक़्त आपको मेरा ऐड्रस ढूंढ़ने में परेशानी होगी; मैं इस वक़्त आप के साथ चलने को तैयार हूँ। जहाँ आप चाहें।"

अकरम ने कहा—"मैं चाहता हूँ आप अपने घर चली जायें। मैं नहीं आऊंगा।"

"ओहो! तो आप कल आयेंगे?"

"कल भी नहीं, परसों भी नहीं, किसी दिन भी नहीं। आपको कम्पनी में न मेरे साथ न किसी दूसरे के साथ जुहू जाने की ज़रूरत पड़ेगी, आप ईमानदारी से अपना काम कीजिए, हम ईमानदारी से आपको आपकी रक़म दे देंगे। बस, आपका हमारा यही कांट्रैक्ट है।"

"लेकिन कांट्रैक्ट में एक शर्त वह भी तो होती है जो लिखी नहीं जाती; मगर होती है।"

"मिस आहपारा!" अकरम ने उसके कन्धे पर हाथ रख के कहा—"मैं आपको यक़ीन दिखाता हूँ, कि हमारे यहाँ आपसे कभी कोई बुरा व्यवहार नहीं होगा।"

आहपारा रुआसी हो गयी, उसने ज़ोर से अकरम का हाथ पकड़ लिया। भर्राई आवाज़ में बोली—"आज मैं हर बात के लिए तैयार होके आयी थी। महीनों तक कभी इसके लिए तैयार न हुई थी। जिस जगह जाओ, जिससे बात करो, वही इशारा, वही संकेत, वही सवाल। आखिर में—वही एक सवाल। मैं काम ढूंढ़ते-ढूँढ़ते थक गयी थी, आज मैंने फैसला कर लिया था....दो दिन से भूखी थी। मुझे सपने में भी ख्याल नही आ सकता था कि आप मुझे—इस—इस तरह, मेरा मतलब है, इस तरह काम दे देंगे।—मै एक ग़रीब सिंधी लड़की हूँ, कराची में मेरा सब कुछ था, अब तो कुछ नहीं रहा....हाय! अकरम साहब! मैंने कितनी बुरी बुरी बातें सोच लीं आपके बारे में। आपको दिल ही दिल में बहुत सी गालियां दे डालीं। मुझे क्या मालूम था कि आप इतने शरीफ़ आदमी है।"

अकरम ने कहा—"मैं पहला शरीफ़ आदमी नहीं हूँ। मुझसे पहले दर्जनों अच्छे आदमी इस इन्डस्ट्री में मौजूद थे। आज भी सैकड़ों क्या हज़ारों हैं; इससे पहले भी सिर्फ़ काम की खूबी पर लोगों को काम मिला है। मिस आहपारा! आगे भी मिलेगा और मिलता जायेगा और मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ऐसे लोगों की तादाद बढ़ती जायेगी; जो सिर्फ़ आपके काम की खूबी पर आपको काम देंगे; और फिर एक रोज़ वह भी आ जायगा मिस आहपारा! जब इस क़िस्म की बुरी बातों से फ़िल्म इन्डस्ट्री का दामन पाक होगा। मुझे इसकी पूरी उम्मीद है।"

तब आहपारा ने एक अजीब व ग़रीब हरकत की; उसने अकरम के हाथ को अपने होंठों से लगा लिया और फ़ौरन पलट कर भागती हुई चली गयी।

× × ×

मन्जुनी में देरतक अकरम और रोज़ी बैठे चाय पर मज़ेदार बातें करते रहे। पिछले कई महीनों से वे एक दूसरे के क़रीब आ रहे थे। किसी ने किसी से कुछ न कहा था; लेकिन इन दोनों में से हर एक महसूस करता था कि दूसरे की ओर खिचा जा रहा है, मगर अभी कुछ कहने का वक़्त नहीं था। कुछ महसूस करने का, टटोलने का, सोचने और समझने का वक़्त था। रोज़ी अकरम की सफलता से बेहद खुश थी। प्रसन्नता से उसकी आँखें सितारों की तरह चमक रही थीं और सुनहरी सी चमक उसके गालों पर थी। उसने स्याह स्कर्ट पहन रखा था और उस स्याह स्कर्ट पर सुनहरे काम का लहरिया उसके ब्लाउज़ तक जाता था, यह सुनहरी बेल, उसके सीने से उसके घुटनों तक खिची हुई, उसके जिस्म की बनावट को उभार रही थी। दीवालगीर मद्धम मद्धम, नीली नीली रोशनियाँ डान्स हाल में चाँदनी का सा मादक दृश्य उपस्थित कर रही थीं। माडम स्तालिता अपने गहरे भूरे बालों को कंधों तक छिटकाए माइक्रोफोन तक आयीं, उनके हाथ में एक नाज़ुक गिटार थी, उनके पीछे एक बहुत बड़ा गुलाब के रंग का लैम्पशेड था, जिसकी रोशनी छन कर उनके बालों और उनके हाथ में टिके हुए गिटार पर तैर रही थी। स्तालिता की अधमुंदी आँखें गिटार पर झुक गयीं। नाच का डोलता हुआ संगीत गिटार के तारों से फूट पड़ा। खामोशी से अकरम और रोज़ी उठे और नाचने लगे। रोज़ी अकरम की बाहों में थी और नाचते नाचते उसने एक क्षण के लिए अपनी आँखें बन्द कर लीं और उसका सर अकरम के सीने से लग गया। और उसे महसूस हुआ जैसे वह फूलों के तख्ते पर नाच रही है; हरे भरे बगीचों वाले नीले नीले पहाड़ों के दामन में किसी अज-नबी झील के किनारे पर नाच रही है। घाटियों पर खड़े हुए दरख्तों की हर डाल का दिल तेज़ है और हवा संगीन है और इन हज़ारों पत्तों से जो संगीत उभर रहा है, उनसे दो दायरे, दो दिल, दो व्यक्ति घूमते घूमते एक दूसरे के गिर्द प्रदक्षिणा करते हुए आपस में यू घुल गये हैं जैसे अब सिर्फ़ एक दायरा है, एक दिल है, एक व्यक्ति है और संगीत की एक ऐसी लय है जो हज़ारों-लाखों बरसों से प्रेम के गीत सुना रही है।

और पश्चिमी संगीत की धुन के साथ नाचते हुए अकरम ने सोचा—कभी हमारे हिन्दुस्तानी संगीत के कलाकार भी कोई ऐसी धुन बनाएंगे, जिस पर दो मुहब्बत करनेवाले नाच सकें। एक दूसरे की कमर में हाथ डाले, आँखों में आँखें डाले, अपने शरीर की लय को दूसरे शरीर की लय में घोलते हुए, संगीत की गति पर एक-दूसरे में खो जायें। ऐसा नाच हमारे देश में कब जन्म लेगा? मणिपुरी, कथाकली, कत्थक, भरत नाट्यम् ठीक है मगर हमें भरत नाट्यम् ही नहीं प्रम-नाट्यम् भी चाहिए, सिर्फ़ कथाकली ही नहीं; मुहब्बत की कली भी चाहिए। मगर

यह हो कैसे ? हज़ारों वर्षों से हमने यहाँ पर मुहब्बत की; मगर मुहब्बत को मायाजाल समझ कर, मोह को जीवन का जंजाल समझ कर। आत्मा की ज़रूरत समझ कर नहीं। तो क्या हम लोग कभी मुहब्बत का संगीत न पा सकेंगे ? हमारे यहाँ एक के लिए संगीत है और दस के लिए भी है; लेकिन, सिर्फ़ दो के लिए नहीं, एक मर्द और एक औरत के लिए नहीं, एक अकरम और एक रोज़ी के लिए नहीं। ऐ ख़ुदा ! इस मुल्क में मुहब्बत करना इतना बड़ा गुनाह क्यों है ?

३७

वीरान क़ब्र पर आख़िरी फूल !

वह दिन खत्म हो गया। कितना ख़ूबसूरत दिन था, कितना उज्ज्वल, सुहावना, सूरज की किरणों का लिबास पहने हुए। आज बस्ती में हर कोई ख़ुश था; जैसे आज कोई राष्ट्रीय मेला हो जिसमें हर जाति, हर ख़्याल और हर धर्म के लोग हिस्सा ले रहे हों; जैसे आज बस्ती में इन्द्रधनुष उतर आया था और उसने अपनी रंगारंगी से दिलों को सराबोर कर दिया था।

खाना खाके सब लोग आज जल्दी सो गये। दिन भर के थके हुए थे। सत्यराय भी अगले दस साल की पिक्चरों का प्रोग्राम बना के सो गया। जमुना भी, जो दिन भर न सोयी थी, आज कई हज़ार दिनों के बाद रात की ममता भरी गोद में अपनी बाहों में तकिया ले के सो गयी। सिर्फ़ अकरम जागता रहा और देर तक जागता रहा। आज उसकी आँखों में नींद न थी। आज बहुत से पुराने दोस्त उससे छूट गये थे और नये साथी उसे मिले थे। एक ज़िन्दगी का दर्वाज़ा उसके लिए बन्द हो गया था और दूसरी दुनिया ने अपने पट उसके स्वागत के लिए खोल दिये थे। सफलता नशे की तरह थी, फिर भी वह अपने दिल में ज़रा भयभीत सा था। वह जरा-सा सोचना चाहता था, यहाँ से वह अब किधर जायगा ? उसके दिल में एक अजीब-सी हलचल थी; एक तूफ़ान जैसी दशा, यारों की, ख़्यालों की, इच्छाओं की, निगाहों की, तस्वीरों की, और ये सब परछाइयां उसकी आत्मा पर एक कोने से दूसरे कोने तक छाई हुई थीं और वह सोचना चाहता था !

यकायक चबूतरे पर रफ़िया उसके क़रीब आके बैठ गयी। उसके हाथ में एक गुलाब का फूल था। अकरम ने पहले फूल की तरफ़ देखा फिर रफ़िया की तरफ़।

रफ़िया बोली—"यह बाबूराम ने मुझे दिया है।"

अकरम मुस्कराया; मगर रफ़िया जरा भी न मुस्कराई। वह बहुत उदास थी।

अकरम ने कहा—"तुम्हें तो खुश होना चाहिए।"

"नतीजा इससे उलटा है।"

"क्यों ?"

जवाब में रफ़िया ने उससे एक सवाल किया; "तुम्हारा क्या ख्याल है—बाबूराम की उम्र क्या होगी ?"

"कोई बावन-तिरेपन के क़रीब होगी।"

"मै इस सितम्बर में तीस वर्ष की हो जाऊँगी।"

"इससे क्या होता है ?"

"होता है, और नहीं भी होता है," रज़िया हँस के बोली—"मज़ाक जैसी बातें करता है। इस तरह से कोई भी औरत उससे मुहब्बत कर सकती है ?"

"क्या हुआ ?"

"वह आज शाम को जब तुम लोग यहाँ नहीं थे, मेरे पास यह फूल ले के आया। पहले तो बहुत देर तक चुप बैठा रहा। फूल, फूल की तरह नहीं छतरी की तरह पकड़े हुए।" रफ़िया जोर से हंसी—"मैंने पूछा—क्या है ? बोला, यह गुलाब का फूल है। मैंने कहा—इतना तो मुझे भी दिखाई देता है, इस पर वह बेचारा चुप हो गया और अब उसने फूल को अपने हाथ से यूं नीचा कर लिया; जैसे आदमी किसी मंज़िल पर पहुँचकर छतरी को नीचा कर लेता है; तो भी फूल उसके हाथ में था। फिर उसने कहा—मिस रफ़िया—कभी मैं—मुझे कभी कुछ दिखाई नहीं देता था; मेरा मतलब है,—हिसाब की किताबों के सिवा—फिर मैने तुम्हें देखा और—फिर एक अरसे के बाद, कह नहीं सकता कितने अरसे के बाद, मैंने आसमान को देखा और मुझे आसमान बड़ा खूबसूरत दिखाई दिया; क्यों मैंने इतने अरसे तक आसमान को न देखा था ? कह नही सकता। तुम जानती हो; ऐसा क्यों होता है ? मैं तो नहीं जानता था।

"यह कह कर वह चुप हो गया; और अब अपनी उंगलियों पर फूल को ऐसे घुमाने लगा, जैसे जुलाहे सूत की अन्टी घुमाते हैं।" रफ़िया हँसी; फिर बोली—"मगर मैं बाबूराम की मुहब्बत नहीं चाहती थी, इसलिए खामोश रही, मेरी यह चुप्पी उसके लिए तक़लीफदेह थी, परेशानी का कारण थी, यह मैं अच्छी तरह से देख सकती थी। वह बारबार अपने होठों पर ज़बान फेरता था और एक-दो मर्तबा तो उसने माथे पर से अपना ठंडा पसीना साफ़ किया। उसकी आवाज़ में कंपकंपी भी थी और फिर उसने बड़ी हिम्मत करके कहा—मिल की तरफ़ जाते हुए हर रोज़ मैं फूलवाले की दूकान से गुज़रा करता हूँ; शायद पच्चीस तीस साल

से गुज़र रहा हूँ, मगर मुझे याद नहीं कभी मैंने फूल देखे हों। मैंने कभी उस दूकान की तरफ़ नज़र नहीं डाली। मेरा दिल अपने हिसाब की किताबों में था, फूलों में नहीं। और मिस रफ़िया मेरा काम भी ऐसा है कि ज़रा भी आने पाई की ग़लती हो जाय तो सेठ मेरा हिसाब बराबर करेगा। मगर—कुछ दिनों से—तुम्हारे—मेरा मतलब है तुम आयीं—और—मैंने फूल देखे। गुलाब, मोतिया, चम्पा, चमेली, गुल शब्बो, अनार की कली, फूल ही फूल थे जो उस दूकान में सजे थे और कई साल से मैंने उन्हें नहीं देखा था; तो—तो—तो मैं—आज ये फूल ले आया, तुम्हारे लिए। और उसके बाद इस बावन बरस के बुड्ढे ने वह फूल इस तरह शरमा के, लजा के, आँखें झुका के मुझे दे दिया; जैसे वह मुझे फूल नहीं अपनी सारी ज़िन्दगी दे रहा हो।"

"वह तुमसे मुहब्बत करता है।" अकरम ने तरस खाते हुए कहा।

"मैं क्या करूँ ?" रफ़िया एक आह भर के बोली—"अगर वह बावन बरस का न होकर, तीस बरस का भी होता, तब भी मैं उससे मुहब्बत नहीं कर सकती थी, क्यों कि मैं किसी और से मुहब्बत करती हूँ; और मैं किसी और से मुहब्बत न भी करती होती, तो भी उससे मुहब्बत नहीं कर सकती थी।"

"वह बिल्कुल जोकर जैसा है। बिल्कुल बुड्ढे उल्लू की तरह मेरी तरफ़ देखता है; उजाड़!"

रफ़िया पहले हँसी फिर एक दम गम्भीर हो गयी। बोली—"वह कहता था मेरी उम्र पैंतीस वर्ष की है, देखो तो बुड्ढे ने क्या झूठ बोला!"

अकरम बोला—"यह उसकी मुहब्बत झूठ बोल रही है।"

यकायक वे दोनों उदास से हो गये; बाबूराम की बावन बरस की उदास और फीकी ज़िन्दगी, एक भूरे बोरिये की तरह उनके सामने फैलती चली गयी। इस ज़िन्दगी में कहीं एक स्वप्न न था, फूल की एक कली न थी, फूल से लदी हुई एक डाली न थी; सिर्फ़ रुपये आने पाइयों के हिसाब थे। हजारों लाखों करोड़ों की संख्या रेत के कणों की तरह उसकी ज़िन्दगी के धरातल पर फैली हुई थी। बावन लम्बे थका देने वाले बरस, रेत के बावन टीलों की तरह बाबूराम की ज़िन्दगी में एक सिरे से दूसरे सिरे तक खड़े थे। एक क़त्ल तो वह होता है; जिसमें आदमी गला घोंट के मार दिया जाये; मगर यह किस किस्म का क़त्ल होता है जो बाबूराम ऐसे लोगों की ज़िन्दगियों से सम्बन्ध रखता है। क्यों ये लोग ऐसा करते हैं ? एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, वर्षों एक ही आदमी को घुटाघुटा के मारते रहते हैं कि फिर कोई उम्मीद नहीं रहती, कोई मुस्कराहट नहीं रहती और कोई याद नहीं

रहती, और कहीं फिर कोई फूल नहीं दिखाई देता और कहीं पर कोई आसमान नज़र नहीं आता; नज़र आते हैं सिर्फ़ रुपये आने पाई !

रफ़िया ने आहिस्ता से कहा—"मैंने फूल लेके भी उससे कुछ नहीं कहा, उसका शुक्रिया तक अदा नहीं किया यह मुझसे हुआ तक नहीं; मैंने खाली सर झुका दिया; तो वह बहुत उदास हो गया और उस वक़्त उसकी उदासी ने मेरे दिल को छू लिया। उसने कहा—"हाँ, शायद; मैं बहुत देर से आया...."

"शायद अब मेरे लिए; बहुत देर हो चुकी है....मैं जाता हूँ" और वह आहिस्ता से मेरे कमरे से बाहर निकल गया। वह उस वक़्त, उसका बावन बरस का बुड्ढा बदसूरत, उल्लुओं जैसा चेहरा फरिश्तों को भी रुला सकता है।"

"रफ़िया !" अकरम ने बहुत आहिस्ता से लेकिन इतने तेज़ लहजे में कहा; जैसे वह किसी तेज़ छुरी की धार को अपनी आवाज़ में छुपाए हो। "रफ़िया ! कभी कभी तो मेरा जी चाहता कि मैं बाबूराम की बावन बरस की बेहोश बदसूरत ज़िन्दगी उठा लूँ और उसे एक तमाचे की तरह समाज के मुँह पर मार दूँ।"

रफ़िया गुलाब के फूल की तरफ़ देखते हुए बोली—"बावन बरस के बाद यह एक फूल उसके दिल में उगा !—और आज के बाद—यह फूल भी—एक फूल भी उसके दिल में न उग सकेगा, उजाड़ ! यह किस तरह की माटी मिली ज़िन्दगी है अकरम ?"

अकरम ने रफ़िया के हाथ से फूल ले लिया और एक अजीब मुस्कराहट के साथ कुछ इस तरह से उसके बालों में लगा दिया, जैसे वह किसी की वीरान क़ब्र पर आख़िरी बार फूल चढ़ा रहा हो।

"जाओ, रफिया अब सो जाओ।" अकरम ने फूल लगा के कहा और रफ़िया जैसे समझ गयी और जैसे समझने के बाद उसके दिल को धीरज मिल गया। वह आहिस्ता से उठी और अपनी झोपड़ी की तरफ़ चली गयी।

३८

कुत्तरचन्द का कुतर्क

अकरम ने छः महीनों में तस्वीर पूरी कर ली। उसने उसका नाम 'किसान' रखा। पूंजी की कमी और कुछ बड़े-बड़े प्रोड्यूसरों की दबी-दबी काना-फूसियों में चलनेवाले विरोध के बावजूद अगर यह तस्वीर इतने कम अरसे में पूरी हो गयी; तो इसमें अकरम की दिन रात की अथक मेहनत के अलावा उसके यूनिट के लोगों का सहयोग और स्टुडियो के मज़दूरों की निष्ठा का बड़ा हाथ था। इन्डस्ट्री के जो छोटे-छोटे लोग थे; वे एक तरह से इस तस्वीर को अपनी तस्वीर समझते थे। इस बार अकरम ने भी पूरी कोशिश की थी कि वह बहुत ऊँचा न उड़े; उन तमाम ग़लतियों को न दुहराए, जो पिछली तस्वीरों में हो चुकी थीं। इस बार जो मसला उसने अपनी तस्वीर में उठाया था; शहरी मसला नहीं था! किसान और उसकी ज़मीन और जागीरदारी, ज़मीन्दारी व्यवस्था। ज़्यादातर देहाती मसला था; क्यों कि हिन्दुस्तान देहात में जो रहता है! इसलिए अकरम ने यह मसला उठाना मुनासिब समझा। मगर इस बार इसके पात्र भाषण नहीं करते थे! अब की बार इसका गांव एक सचमुच गाँव था, किसान सचमुच का एक किसान मालूम होता था, वे फ़िल्मी किसान न थे। इसकी हिरोइन भी खेतों में काम करनेवाली हिरोइनें मालूम होती थीं, हर चीज़ असलियत के क़रीब थी; गाँव की जिन्दगी की लय से जुड़ी हुई। इस बार अकरम के पात्र बिल्कुल काले और गोरे नहीं थे; वे इन्सान, थे, अपनी तमाम त्रुटियों के बावजूद छोटे छोटे इन्सान, उनकी ज़िन्दगी बड़ी कटुता भरी और बड़ी मुसीबत की थी। मगर अकरम ने कहीं भी कोशिश न की थी कि वह मुसीबत को इतना बढ़ाचढ़ा के रखे कि ज़िन्दगी के दूसरे पहलू इसमें छिप जायें। केन्द्र बिन्दु तो था—ज़मीन और उस पर काम करनेवाले किसान! दुःख के बीच भी हँसी थी—चाँदी की घन्टी की तरह सुरीली हँसी, जो कभी तो ज़िन्दगी के छोटे छोटे दुःखों को अपनी हरी-भरी आवाज़ में घुला देती है; और कभी बड़े-बड़े दुःखों को विरोध से ज़्यादा उभार देती है; लेकिन अबकी यहाँ इस तस्वीर में हंसी भी थी, साफ़-सुथरी ज़िन्दगी से भरपूर। मुहब्बत करनेवाली हँसी और गीत ठेठ गाँव के गीत; खेतों में गाये जानेवाले, चरागाहों में गूंजनेवाले, चक्की की घुमर-घुमर और ब्याह की चहल-पहल में गाये जानेवाले गीत, ज़मीन और ज़िन्दगी के साथ बँधे हुए गीत और नाच। अकरम ने इससे पहले अपनी किसी तस्वीर में नाच नहीं रखे थे; मगर इस दफ़ा उसने घूमे से फ़ायदा उठाया था; और नतीजा

एक ऐसी तस्वीर की सूरत में प्रकट हुआ था जो अपनी तमाम कमज़ोरियों के बावजूद एक छोटे से हिन्दुस्तानी गाँव और उसकी ज़मीन और उसके किसान के मसले की एक जीती जागती इन्सानी दस्तावेज़ थी। अकरम को सेन्सर का बहुत डर था; अगर सेन्सर ने असली विषय ही से सहयोग न किया; तो उसकी सारी मेहनत पर पानी फिर जायेगा। इसमें राजनीति का भी पुट था और वे लोग जो जमीन्दार थे और जागीरदार थे और सदियों से हिन्दुस्तान की पच्चत्तर प्रति सैकड़ा आबादी की आजीविका, सामाजिकता और सभ्य ज़िन्दगी पर अधिकार किये बैठे थे; वे किस तरह इस तस्वीर को चलने देंगे ? और अकरम ने, जहाँ तक ध्येय पर कहने का अधिकार था; बड़ी निर्भयता से और बड़ी कलाकारी से, मगर साफ़ साफ़ कह दिया था कि ज़मीन किसानों की है और जो कब्ज़ा किये बैठे हैं उन्हें ज़मीन और किसान के बीच में से हटा देना चाहिए। इस केन्द्रबिन्दु पर अकरम ने किसी प्रकार का समझौता नहीं किया था, इसलिए वह सेन्सर की राय से बहुत डर रहा था। मगर यह देख कर उसे एक प्रकार से आश्चर्य और पूरी खुशी भी हुई कि सेन्सर ने उसकी तस्वीर पर किसी क़िस्म की कोई आपत्ति नहीं की। पूरी तस्वीर एक फ़ुट काटे बिना पास कर दी; न सिर्फ़ पास कर दी बल्कि सेन्सर ने अकरम के साहस को सराहा; उसे व्यक्तिगत तौर पर बधाई दी कि उसने इतने बड़े राष्ट्रीय मसले पर ऐसी साहसिक तस्वीर बनाई; दूसरी फ़िल्मों के मुकाबले में एक निहायत ही साफ़ और सुथरी शिष्ट हास्यपूर्ण सुन्दर तस्वीर तैयार की।

अकरम इस प्रशंसा से बहुत खुश हुआ; क्योंकि यह प्रशंसा आशा के विपरीत थी; लेकिन पिक्चर को फिनान्स करने वाले सेठ कुत्तरचन्द का चेहरा उतर गया, उसका रंग पीला पड़ गया; और जब प्रदर्शन-स्थल से वापस आते हुए अकरम और सत्यराय ने उसका कारण पूछा तो उसने गुस्से से चिल्ला के कहा—

"तुमने मुझे डुबो दिया; कहानी कुछ सुनाई और अब कुछ और बना दी।"

"क्या ग़ज़ब किया ?" सत्यराय ने पूछा।

"सुनते नहीं थे सेन्सर क्या कह रहा था ?"

अकरम ने कहा—"वे सब लोग तो तारीफ़ कर रहे थे, कह रहे थे दस साल में पहली बार ऐसी तस्वीर आयी है।" सेठ ने अपने माथे पर हाथ मार के कहा—"जिसकी सेन्सर तारीफ़ करे समझो उस तस्वीर की किस्मत फूट गयी।" "क्या बात करते हो सेठ जी ?" सत्यराय ने क्रोधित होकर कहा—"हमने झण्डा—"

"रहने दो अपने झण्डे को !" सेठ कुत्तरचन्द ने फ़ौरन सत्यराय की बात काट कर कहा—"बड़े आये झण्डे खाँ कहीं के; मैं बीस साल से इन्डस्ट्री में भाड़

भोंक रहा हूँ ? मैंने पचास बार देख लिया है; जिस तस्वीर की सेन्सर तारीफ़ करे, जिससे कुछ न काटे; समझो वह तस्वीर फ्लाप, एकदम बंडल, फेल। और जिस तस्वीर की सेन्सर बुराई करे, उसमें से काटने को कहे, दोबारा शूटिंग को कहे, समझो वह तस्वीर उतरने वाली नहीं है। कम से कम सिलवर जुबली तो ज़रूर ही मनायेगी। तुमने क्या कहा सेन्सर वाले कहते थे दस साल में उन्होंने ऐसी साफ़ सुथरी फ़िल्म नहीं देखी है; तो समझ लो दस साल में इससे बड़ा फ्लाप भी किसी ने फ़िल्म इन्डस्ट्री को नहीं दिया होगा। तीसरे दिन ही रिवोली से उतर जायेगी। मैं तो रिवोली में उसे लगाता ही नहीं; क्यों व्यर्थ में बीस-चालिस हज़ार इसकी पब्लिसिटी पर खर्च करूँ ? मैं इसे किसी दूसरे दर्जे के थियेटर में दो हफ़्ते के लिए बाँध दूंगा।"

"ऐसा ग़ज़ब न करना सेठ जी !" अकरम बोला—"यह एक अच्छी राष्ट्रीय हित की तस्वीर है; तुम्हें इसकी अच्छी तरह से पब्लिसिटी करनी चाहिए।"

"राष्ट्रीय हित जाये भाड़ में, पहले तो मैं अपना फ़ायदा देखूंगा, बड़े आये मुझे सबक़ पढ़ाने वाले, बंडल पिक्चर के डाइरेक्टर ! तुमने तो मुझे लूट लिया।"

"क्या लूट लिया !" सत्यराय ने चिल्लाके कहा—"तस्वीर दो दिन चले या दस दिन या दस महीने; तुम्हारे पैसे खरे हैं, सब इलाके बिके हुए हैं।"

"बिके हुए हैं तो इससे क्या होता है ?" सेठ कुत्तरचन्द खफ़ा होकर बोले—"सब पैसे सब इलाकों के आ भी जायें तो भी मुझे नुक़सान रहता है।"

"कैसे ?" सत्यराय चमक कर बोला—"सारा खर्चा मेरे हाथ से हुआ है, मैंने पाई पाई का हिसाब रखा है, सब पैसा आ जाये तो पचास हज़ार का नक़द फ़ायदा है; जिसमें तुम्हारा सूद और रायल्टी काट कर मुझे पन्द्रह हज़ार बचता है।"

"कैसे पन्द्रह हज़ार बचता है, तुम मुझे दूसरी छः माही का सूद नहीं दोगे ?"

"सेठ ऐसा जुल्म न करो !" अकरम बोला—"दूसरी छः माही में सिर्फ़ दस दिन ऊपर हुए हैं, मैंने यह तस्वीर छः महीने और दस दिन में तैयार की है; तुमने खुद सत्यराय से कहा था कि तुम इस दस दिन के लिए सूद नहीं लोगे, दूसरी छः माही का सूद नहीं लगाओगे !"

"मैंने बिल्कुल नहीं कहा था।" सेठ ने कहा।

"तुम झूठ बोलते हो।" सत्यराय ने ग़ुस्से में आपे से बाहर होते हुए कहा—"इतनी बदनीयती ? तुमने दस आदमियों के सामने कहा था।"

"ज़रा अदालत में ले के आना उन्हें !" सेठ कुत्तरचन्द ने मुस्करा के कहा—"मुझे छोटा और बदनियत कहने वाले कौन हैं; मैं उनका चेहरा देखना चाहूँगा। खैर ! मैंने कहा हो, न कहा हो; कांट्रैक्ट में तो लिखा है कि छः माह में अगर तस्वीर

तैयार न हुई, तो दूसरी छः माही का सूद पड़ जायेगा; तुम दोनों कान खोल कर सुन लो, और इस हिसाब से मिस्टर सत्यराय तुम्हें मुझे दूसरी छः माही का सूद देना पड़ेगा और इस हिसाब से मिस्टर अकरम, फाइन फ़िल्मस् के प्रोड्यूसर सत्यराय को तमाम टेरीटरीज़ से रुपया वसूल हो जाने के बाद भी मुझे आठ हज़ार की रक़म देनी पड़ेगी; जिसे वसूल करने के लिए उसके ख़िलाफ अदालत से डिगरी लेके उनके माहिम के फ्लैट पर टांच लानी पड़ेगी और उनके रेफरीज्रेटर, रेडियोग्राम और सोफासेट और गलीचे को कुर्क कराना पड़ेगा। और तो कोई तरीक़ा है नहीं सत्यराय साहब से रुपया वसूल करने का...." यह कह कर सेठ कुत्तरचन्द ने दोनों को गाड़ी से उतार दिया और अपनी ब्यूक घुमाकर कालबादेवी रोड की ओर ले गया। सत्यराय और अकरम दोनों एक दूसरे का मुँह देखते रह गये।

अकरम ने ग़ुस्से में कहा—"साला ! जब तक पिक्चर पूरी नहीं हुई थी कहता था—अकरम भैया, दूसरी तस्वीर भी मैं तुम्हारे संग बनाऊँगा; अभी से एनाउन्स कर दो।"

सत्यराय ने कहा—"हरामी ! मुनाफ़ा ख़ुद खा लेना चाहता है।"

"सिर्फ यही नहीं"—अकरम ने कहा—"वह तो तुम्हारे फ्लैट पर भी कुर्की ला रहा है।"

जब से तस्वीर का काम शुरू हुआ था, सत्यराय चूँकि प्रोड्यूसर था, और उसे बहुत से डिस्ट्रीब्यूटरों और दूसरे फिनान्सरों और पूंजीपतियों से मिलना पड़ता था, इसलिए वह बस्ती छोड़कर चला गया था, और माहिम में उसने एक फ़्लैट ले लिया था, जिसे एक फ़िल्मी प्रोड्यूसर के फ़्लैट की तरह सजाया था। टेलीफ़ोन, रेफरीज्रेटर, रेडियोग्राम, ग़लीचे, रेशमी पर्दे, अगर कोई कमी थी तो एक मोटर की और एक रखैल की और ये दोनों ही बहुत मँहगी थी। यद्यपि सत्यराय मोटर के ख़िलाफ़ तो नही था लेकिन रखैल के बहुत ख़िलाफ था। और जब उसके दूसरे दोस्त हँसी-हँसी में उसका मज़ाक उड़ाते हुए कहते—तुम कैसे प्रोड्यूसर हो, तुम्हारी तो कोई रखैल ही नहीं है, तो सत्यराय हँस के कहता—मैं ख़ुद ही अपनी रखैल हूँ।.....

"कुर्की ला रहा है, मुझे इसकी फ़िकर नहीं है। सत्यराय का पता फिर मार्फ़त फुटपाथ हो सकता है, मुझे इस बात की भी इतनी फ़िकर नहीं है, जितनी इस बात की कि वह तस्वीर को कहीं दूसरे-तीसरे दर्जे के थियेटर में न डाल दे और उसकी अच्छी तरह पब्लिसिटी न करे ! अक्सर एक अच्छी तस्वीर बुरी पब्लिसिटी से मर जाती है !"

फिर सत्यराय का ग़ुस्से से तमतमाया हुआ चेहरा फ़ौरन बदल गया, वह अपनी

हँसी न रोक सका, मुस्कराते हुए कहने लगा—"देखो अकरम मैं प्रार्थना करता हूँ, कि यह सच न हो; मगर भाई जाने क्या बात है, होता अक्सर ऐसा है, कि जब सेंसर वाले किसी तस्वीर की तारीफ़ करते हैं, तो वह साली दो दिन में उड़ जाती है।"

"यह तो अंधविश्वास है और कुछ नहीं।" अकरम ने चिल्ला के कहा।

"नहीं, यह असल बात है," सत्यराय ने मुश्किल से अपनी हँसी रोक के कहा—"सेंसरवालों में जो बुड्ढे हैं, बहुत से इनमें से अब ज़िन्दगी की उस मंज़िल पर पहुँच चुके हैं, जहाँ स्वाभाविक तौर पर इन्हें दिलचस्प फ़िल्में, जवान और स्वस्थ फ़िल्में बुरी मालूम होती हैं, उनकी चंचलता इन्हें अप्रिय मालूम होती हैं। इसलिए अक्सर वे उन फ़िल्मों की तारीफ़ करते हैं जो जनसाधारण की दिलचस्पी की नहीं होतीं। मुझे भी डर लगता है कहीं यह तस्वीर फ़ेल न हो जाय तो फिर समझो अपना बोरिया-बिस्तर बम्बई से गोल!"

अकरम ने कहा—"तुम देखते जाओ, आज तो पिक्चर सेंसर हुई है, एक बड़ा शो करते हैं, जिनमें जुदा जुदा ख्यालों के लोगों को बुलाते हैं, उनसे तस्वीर के बारे में सही राय मालूम होगी।

० ० ०

मगर इस प्राइवेट शो से बहुत पहले बहुत-सी बातों में गड़बड़ हो गयी। सेठ कुत्तरचन्द ने ऐग्रीमेंट की रू से बहुत-सी छोटी-मोटी बादाखिलाफ़ी की मिसालें देकर सत्यराय से 'किसान' तस्वीर का निगेटिव अपने नाम लिखवा लिया, फिर उसने अपने आठ हज़ार रुपये का तकाजा किया और एक फ़ौज़दारी नुक्ता निकाल के सत्यराय के खिलाफ़ डिगरी हासिल की।

एक अच्छी तस्वीर बनाने के बाद भी अकरम के मुँह का ऐसा स्वाद था जैसे वह लकड़ी का बुरादा खा रहा हो। ये लोग तस्वीर नहीं देखते, उसका असर, उसकी खूबसूरती, उसकी विशेषताओं पर ग़ौर नही करते। अब तो इस पिक्चर की सब टेरीटरी बिक चुकी हैं, व्यापारिक विश्वास से इसमें मुनाफ़ा भी है, मगर सेठ लोग सिर्फ़ मुनाफ़ा भी नहीं देखते, यह सारे का सारा मुनाफ़ा उनकी जेब में जाना चाहिए! वे लोग जिन्होंने पिछले छः महीने इस पर मेहनत की है, फाइन फ़िल्म्स का स्टाफ़ जिन्होंने आधी तनख़्वाह पर काम किया है, स्टुडियो के मज़दूरों ने, जिन्होंने स्टुडियो की शूटिंग का सिर्फ़ आधा रुपया लिया है, आधा उधार दिया है, डांस यूनियन की लड़कियाँ, एक्स्ट्रा यूनियन के लोग, बस्ती के लोग जिन्होंने इस पिक्चर में काम किया है, उन सब लोगों का पारिश्रमिक अब मारा जायगा। छाटा मिल के वे मज़दूर जिन्होंने दो-दो आने करके इस फ़िल्म मे चन्दा दिया है, उनके तीन सौ रुपये तक वापस नहीं हो सके हैं। क्या ज़िन्दगी है? एक तस्वीर बनाने

बाद इतने सैकड़ों आदमियों की गालियाँ सुननी पड़ेंगी। कोई नहीं कहेगा कि सेठ कुत्तरचन्द ने बदमाशी से काम लिया है। सब सत्यराय को और अकरम को गाली देंगे कि वे रुपया कमा गये देश के नाम पर, प्रगतिशीलता के नाम पर। एक या दो आदमियों को समझाना आसान है, इतने सैकड़ों आदमियों को कैसे समझाया जायगा? कैसे इन्हें बताया जायगा कि मेहनत के रस से चमकता हुआ फल किस तरह मेहनती डालों से तोड़कर शोषकों के हाथों में दे दिया जाता है, जो इस समाज का स्पष्ट नियम है। हर शख्स किसी उपाय से इस अमल को अपनी ज़िन्दगी के दायरे में देखता है मगर सिर्फ़ अपनी जिन्दगी में। वह अपने को पीड़ित और दूसरों को बेईमान समझने पर मजबूर है, वे लोग किस तरह उनकी बातों का विश्वास करेंगे?

जसवन्त ने कहा—"किसी न किसी तरीक़े से फ़्लैट को इस टाँच से बचाना चाहिए।"

"मगर किस तरह?" सत्यराय ने परेशान हो के पूछा। "साले सेठ ने ऐसी बुरी तरह वहाँ से मेरा झण्डा उखाड़ा है कि.....।" फिर वह चुप हो गया।

कोई न कोई रास्ता निकलेगा, सीधा न सही टेढ़ा सही और वह अपने विचारों में लीन हो गया।

० ० ०

कुर्की के दिन जब सेठ कुत्तरचन्द पाँच आदमियों को लेकर सत्यराय के फ़्लैट में दाखिल हुआ, तो उसने एक अजीब दृश्य देखा, दस बारह आदमी फ़्लैट में जमा हैं, और भिन्न-भिन्न कमरों में अलग अलग चीज़ों के पास धरना दिये खामोशी से बैठे हैं। सेठ कुत्तरचन्द ने इधर-उधर देखा, मगर कोई व्यक्ति उसके सम्मान के लिए नहीं उठा, न किसी ने उसे सलाम किया। सब खामोशी से अपनी-अपनी जगह बैठे रहे। सेठ कुत्तरचन्द ने भूँककर कहा—"टांच लाया हूँ।"

सत्यराय ने कहा—"लाये हो तो ले आओ, ले जाओ जो माल तुम्हारा है।"

सेठ ने इधर-उधर खामोशी से देखा, मगर कोई अपनी जगह से हिला नहीं। उसे ऐसा इतमीनान-सा हुआ। वह रेडियोग्राम के पास गया। वहाँ धूमे अपना सिर मुड़ाए, हाथ में एक वज़नी हथौड़ा लिये बैठा था। सेठ ने रेडियोग्राम पर हाथ रखते हुए कहा—"इसे कुर्क कर लो।"

सेठ के हाथ पर ज़ोर का एक हथौड़ा पड़ा, वह बिलबिला के और उछल के रेडियोग्राम से दो फ़ुट परे जा रहा—"क्या बात है, क्या बात है, दंगा करना चाहते हो?"

"मेरी चीज़ को तुम हाथ नहीं लगा सकते।"

"तुम्हारी चीज़ ?"

"हाँ ! अरसा हुआ सत्यराय रेडियोग्राम मुझे बेच चुका है, काग़ज़ देख लो।" घूमे ने काग़ज़ ख़ामोशी से कुर्कीवाले को दिखाए। काग़ज़ात क़ानूनी थे। बिल्कुल दुरुस्त। रेडियोग्राम अरसा हुआ बिक चुका था।

सेठ कुत्तरचन्द ग़ुस्से में रेफरीज्रेटर की तरफ़ बढ़ा। वहां सरदार मनजीत सिंह हाथ में एक बड़ा सोंटा सम्हाले एक बड़े स्टूल पर बैठे थे। उनका सोंटेवाला हाथ रेफरीज्रेटर पर था। सेठ को अपनी तरफ़ आते देखकर वह ज़ोर से चिल्लाया—"ओ सेठिया ! इधर न आवें, पहले से कहता हूँ, इधर न आवें। नहीं तो मार मार के फुलझड़ी बना देवांगा, यह काग़ज़ देख ले।" मनजीत सिंह ने काग़ज़ कुर्कीवाले को दिखाया, बिल्कुल ठीक था। क़ानूनी हैसियत से इस बिक्री में कोई धोखा न था। सेठ रेफरीज्रेटर को हाथ न लगा सका। सेठ ने भन्ना के कहा—"अच्छा यह सोफ़ा उठा लो यहाँ से।"

मगर सोफ़ा सेट भी बिका हुआ था। तीन मज़दूर वहाँ भी बैठे थे। एक से एक तगड़ा और उनके बाज़ुओं से भी तगड़ा क़ानूनी पुर्ज़ा।

"तो यह ग़लीचा !"

मगर ग़लीचा भी बिक चुका था। कुर्सियाँ, स्टूल, मेज़ अलमारियाँ, कपड़ों की खूंटियाँ तक बिकी हुई थीं। ग़ुस्से के मारे सेठ के मुँह से झाग निकलने लगा।

उसने चिल्ला के पूछा—"यहाँ कोई चीज़ ऐसी भी है जो पहले से बिकी हुई नहीं।"

"हाँ है," अकरम ने बड़ी गम्भीर आवाज़ में कहा—"यह मेरी क़लम दावात ! इसे आज तक कोई खरीद नहीं सका इसे तुम कुर्क कर सकते हो सेठ।"

सत्यराय सेठ कुत्तरचन्द के क़रीब आया और कहने लगा—"लो इसी क़लम से एक नया चेक लिख दो दस हज़ार रुपये का।"

"काहे के लिए ?" सेठ कुत्तरचन्द ने हैरान हो के पूछा। दूसरी पिक्चर के ऐडवान्स के लिए, मैं दूसरी पिक्चर तुम्हारे लिए बनाता हूँ दस हज़ार ऐडवान्स करो, यह आठ हज़ार जो तुमने मुझसे ज़बरदस्ती का लिया है, उस रक़म को भी अगली पिक्चर में डाल दो।

कुत्तरचन्द सत्यराय का मुस्कराता हुआ चेहरा देखने लगा। प्रस्ताव उचित था; मगर इस वक़्त उसे अपनी असफलता पर सख़्त ग़ुस्सा आ रहा था। उसने दावात उठाकर फ़्लैट की खिड़की से बाहर फेंक दी और ग़ुस्से में झल्लाता हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

उसके जाने के बाद सत्यराय ने दोनों हाथ ऊपर उठा के चिल्ला के कहा—"झण्डा गाड़ दिया ! रखा, बाँधा, ताना, खींचा और खींच के छोड़ दिया, जाओ

बेटा लटके रहो। कहो बेटा ?" सत्यराय ने जसवन्त से पूछा—"कैसी रही मेरी तरकीब ?"

जसवन्त ने प्रशंसा की दृष्टि से उसकी तरफ़ देख के कहा—"इन लोगों से निबटना तुम खूब जानते हो।" सत्यराय ने कहा—"और क्या अब हम इन चीज़ों को बेच कर जिन लोगों की रक़में बाकी हैं, मेरा मतलब है कि जिन रक़मों का हिसाब तस्वीर के जिम्मे है वह तो सेठ क्या सेठ के बाप को भी देनी पड़ेंगी; लेकिन कुछ रक़में जो निजी हैसियत में हमने ली हैं, छाटा मिल के मज़दूरों का कर्ज़ा, जमुना का रुपया, बस्ती के पठान शहबाज़ खाँ का रुपया, ये रुपया तो हम अब वापिस कर सकते हैं।"

जसवन्त ने सत्यराय का हाथ दबा के कहा—"मैंने समझा था तुम सिर्फ़ फ़िल्मों के दलाल हो, लेकिन आज मालूम हुआ कि तुम इन्सान भी हो।"

सत्यराय ख़ामोशी से मुस्कराता रहा जसवन्त ने पूछा—"अब तुम कहाँ जाओगे ?"

"वहीं, तुम्हारे पास बस्ती में, मार्फ़त फ़ुटपाथ, बम्बई, सत्यराय का यही पुराना पता है।"

३६

सच्चा सपना

प्राइवेट शो का दिन आन पहुँचा।

अकरम ने तरह-तरह के लोगों को बुलाया था। फ़िल्म इन्डस्ट्री के चोटी के लोग तो मौजूद थे ही, मगर अकरम ने मज़दूरों, छोटे-छोटे दूकानदारों, विद्यार्थियों, टैक्सी ड्राइवरों और काम करनेवाली औरतों को ख़ास तौर पर आमंत्रित किया था। उसने अंग्रेज़ी तस्वीरें दिखानेवाले तमाम सिनेमाओं के मैनेजरों को भी दावत दी थी। इनमें मात्रो सिनेमा का अमरीकी मैनेजर जान रोलैण्ड भी शामिल था।

"मात्रो सिनेमा के मैनेजर को क्यों बुलाते हो ?" धूमे ने चिल्ला के कहा—"वह ज़रूर तुम्हारी तस्वीर देखेगा, यांकी !"

अकरम ने कहा—"मैं तो सबको बुलाऊँगा, अमरीकी हुआ तो क्या हुआ, क्या अमरीकी किसी अच्छी चीज़ को पसन्द नहीं कर सकता ?"

धूमे ने हँसकर व्यंग्यपूर्वक कहा—"क्यों नहीं पसन्द करेगा, तुमने बहुत बड़ी

'सन ऑफ़ इंडिया' जैसी पिक्चर तैयार कर ली है, जिसमें बहुत-से राजे-महाराजे, साँप, जोगी और अधनंगे नाच हैं ना, जो वह इसे पसन्द करेगा ?"

अकरम झेंप गया, बहुत से अमरीकियों क्या, बहुत से पच्छिमवालों का हिन्दुस्तान के बारे में यही दृष्टिकोण था; मगर अकरम अब भी डटा रहा, कहने लगा—"उसे भी एक सौ फ़ीसदी ख़ास हिन्दुस्तानी फ़िल्म देखने दो, क्या हर्ज़ है ?"

और इस तरह से मात्रो सिनेमा के अमरीकी मैनेजर जान रोलैण्ड को 'किसान' का प्राइवेट शो देखने की इजाज़त मिली। वह छः फ़ुट ऊँचा लम्बा, बहुत ही उम्दा गोश्त और बहुत ही उम्दा मक्खन पर पला अमरीकी था। न्यूयार्क का रहनेवाला, पतले-पतले ज़िप की तरह बन्द हो जानेवाले होंठ, फौलाद के रंग की-सी आँखें, जहाँ पड़ जाएँ वहाँ मानो कील गाड़ दें, बड़ी-बड़ी बेहद चंचल।

जब 'किसान' का शो ख़त्म हुआ तो नियमानुसार अकरम को डाइरेक्टरों और कलाकारों ने घेर लिया। डाइरेक्टर जमाल इलाहाबादी ने अकरम से हाथ मिला के कहा—"वाह ! वाह !! मज़ा आ गया।" फिर उसने मुँह फेर के अपने दोस्त गोविन्द शर्मा से कहा—"साले ने बोर कर दिया।"

डाइरेक्टर धीरेन्द्र कुमार ने अकरम से हाथ मिलाते हुए कहा—"फाइन !" धीरेन्द्र कुमार का मुस्कराता हुआ गोरा चेहरा निष्ठा और प्रेम की जीती जागती तस्वीर था। अकरम ने सिर झुका के शुक्रिया अदा किया। धीरेन्द्र कुमार ने वापिस जाते हुए अपनी बीवी से बहुत धीरे से कहा—"बकवास।"

जोशी जी ने अकरम को गले लगा लिया—"वाह ! वाह !! क्या तस्वीर बनाई है तुमने ! हिन्दुस्तानी फ़िल्म इन्डस्ट्री की लाज रख ली।" जोशी जी ने जोश में आके अकरम का मुँह चूम लिया, "अरे अकरम ! तुम जीनियस हो, जीनियस ! क्यों सेठ ?" जोशी जी ने सेठ बांकड़िया से दाद चाही।

सेठ बांकड़िया बड़ी देर तक अकरम के हाथ अपने हाथ में लिये रहे बोले—"क्या बताऊँ उन दिनों मैंने तुम्हारी क़दर नहीं की, मेरी ग़लती थी। पार्टनर अब तुम किसी दिन आ जाओ, कल या परसों किसी वक़्त दफ़्तर में, मगर दफ़्तर में आने से पहले टेलीफोन कर लेना और दो फ़िल्मों के कान्ट्रैक्ट पर दस्तख़त कर के अपना एडवान्स ले जाना।"

अकरम ने फिर सिर झुका के सेठ बांकड़िया का शुक्रिया अदा किया।

अकरम से दूर जा के सेठ बांकड़िया ने जोशी से कहा—"जोशी जी बाल-बाल बच गये, अकरम तो फिर मेरे चार लाख पर पानी फेर देता।"

"अजी क्या पूछते हो सेठ ! ऐसी वण्डल पिक्चर ज़िन्दगी में मैंने नहीं देखी, साले को शाट लेने की तमीज़ नहीं और आ जाते हैं घर से डाइरेक्टर बनने, मैं तो

सेट पर क्लैपर ब्वाय न रखूँ इसे।" जोशी जी और सेठ बांकड़िया इसी तरह बातें करते हुए आगे निकल गये।

राज, शमशाद और रंजना ने बड़ा खूबसूरत-सा त्रिकोण बनाकर अकरम को घेर लिया। वे बहुत ही उम्दा साड़ियाँ और ब्लाउज़ पहिन के आयी थीं, उनकी निगाहें बार-बार अकरम की तस्वीर की तारीफ़ करती हुई इधर-उधर भटक जाती थीं। वे निगाहें वास्तव में फोटोग्राफर की तलाश कर रही थीं, जो इस मौक़े का पोज़ ले ले, उम्दा-सा फोटो ले ले, तो अवश्य कल के स्क्रीन-न्यूज़ में आ जायगा। हालांकि इन तीनों में से किसी ने 'किसान' में काम न किया था; मगर ये पब्लिसिटी करनेवाले कहाँ असली काम करनेवालों को देखते हैं? वे तो खूबसूरत और मशहूर चेहरे देखते हैं। शमशाद ने मुस्करा कर अपनी गहरी-गहरी आँखों से अकरम को देखते हुए आधे उदास लहज़े में कहा—"कई जगह पर तो मैं रो पडी, आप बडे जालिम हैं।" राज ने चमक के कहा—"अरे! इनका जुल्म कुछ मत पूछो, यह तो बहुत बड़े शायर हैं, हमारी जैसी हस्तियों से तो बात करना भी गुनाह समझते हैं, अब तो यह पिक्चर सिल्वर जुबली मनाएगी, फिर इनके ठाठ देखना, हम गरीबों से....."

इतने में संयोग से एक फोटोग्राफर आ गया। तीनों हिरोइनों की जान में जान आयी। राज अपना वाक्य बीच में छोड़कर अपनी साड़ी का पल्लू ठीक करने लगी। जल्दी जल्दी तीनों हिरोइनों ने अकरम के साथ एक आकर्षक पोज़ लिया, कैमरे में खटका हुआ और खत्म। तीनों हिरोइनें जल्दी जल्दी से अकरम से हाथ मिला के बल्कि हाथ छुड़ा के भागीं।

इतने में शमशाद ने कहा—"या अल्ला! इतना खूबसूरत आदमी है मगर ऐसी बोर पिक्चर क्यों बनाता है? यहाँ किसे दिलचस्पी है किसानों की ज़मीन में, यहाँ बम्बई में तो एक खेत भी नहीं!"

राज ने कहा—"बम्बई में नहीं हैं मगर बम्बई के बाहर तो हैं।"

शमशाद ने चिढ़ के कहा—"मगर जहाँ खेत हैं वहाँ सिनेमाघर तो नहीं, कौन इस तस्वीर को दिलचस्पी से देखेगा?"

रंजना बोली—"हाँ, री! और हिरोइन के कपड़े देखे तूने! एक भी तो अच्छी ड्रेस नहीं दी उसको, अरी भेरूभाई मेहता की पिक्चर 'किसान पुत्री' में मैं काम कर रही थी, तो मेरा भी किसान की बेटी का रोल था, और इसी किसान की तरह वह भी ग़रीब था, मगर भेरूभाई ने मुझे पन्द्रह नई ड्रेसें दी थीं।"

"अरी छोड़ो!" राज ने चिढ़कर कहा—"किसकी बात करती हो, यह अकरम

सिरफिरा है, दो दिन भी इसकी पिक्चर चल जाय तो मेरा नाम राज नहीं गैराज रख देना।"

इस पर रंजना और शमशाद बहुत हँसीं। रंजना ने प्रशंसा की दृष्टि से राज की तरफ़ देख के कहा—"हाय! राज से गैराज! अरे भाई! सचमुच राज तो बड़ी इंटलैक्चुअल बातें करती है।"

जब भीड़ छँट गयी और बहुत कम लोग रह गये उस वक्त जान रोलैण्ड अकरम को एक तरफ़ ले गया। उसने अकरम से बड़े खुले तरीक़े से हाथ मिलाया और बड़ी गम्भीर आवाज़ में उससे कहा—"तुमने एक उम्दा तस्वीर बनाई है, इसमें कोई शक नहीं है, मैं इसे अपने सिनेमा में चलाना पसन्द करूँगा।"

"मात्रो में?" अकरम के मुँह से सहसा निकला।

रोलैण्ड ने आहिस्ता से अपना सर झुकाया। अकरम चकरा गया, 'किसान' मात्रो में! ऐसा तो उसने अपने किसी सपने में भी न देखा था!!

रोलैण्ड ने उसे चुप देखकर कहा—"मुझे न्यूयार्क से उसकी मंज़ूरी मँगानी पड़ेगी, मगर वह सिर्फ़ कार्रवाई है, इसमें मेरे ख्याल में कोई तब्दीली न होगी, मैं तुम्हें चार हफ़्ते की गारंटी देता हूँ।"

मात्रो में चार हफ़्ते? जहाँ बड़ी से बड़ी तस्वीर दो हफ़्ते से ज्यादा नहीं ठहराई जाती थी, निकाल के फेंक दी जाती थी। जहाँ कोई हिन्दुस्तानी पिक्चर आज तक प्रदर्शित न की गयी थी, जहाँ सिर्फ़ अमरीकी तस्वीरें ही दिखाई जाती हैं। अकरम ने हाथ के इशारे से सेठ कुत्तरचन्द को बुलाया, जिसके पास तस्वीर का निगेटिव गिरवी था। थोड़ी देर की बातचीत के बाद सेठ कुत्तरचन्द, जान रोलैण्ड और अकरम और सत्यराय ने एक दूसरे से हाथ मिलाया और विदा हो गये।

× × ×

"रोज़ी यह तो एक सपना है।"

"बहुत जल्दी हमारी शादी हो जायगी अब।" रोज़ी ने रुक-रुक के कहा।

अकरम नाचते-नाचते रुक गया।

एक और जोड़े ने घूर के कहा—"आगे चलो।"

वाल्ज़ (यूरोपीय नाच) चल रहा था, मगर अकरम न जाने क्या सोच रहा था। यकायक घूरते हुए, नाचते हुए जोड़े की तरफ़ देख के माफ़ी मांग के मुस्कराया। उसके हाथ फिर रोज़ी की कमर की तरफ़ गये और वाल्ज़ चलने लगा। "रोज़ी क्या तुम्हें अफ़सोस नहीं होगा कि तुमने एक दूसरे मज़हब के आदमी से शादी की?"

रोज़ी ने कहा—"मेरा तुम्हारा मज़हब तो एक है, मुहब्बत।" अकरम रोज़ी का जवाब सुनने के लिए फिर रुक गया था, फिर उसे एक नाचते हुए जोड़े की नाराज़गी का सामना करना पड़ा। वह क़हक़हा मार के हँस पड़ा और रोज़ी को अपने साथ हाल के बाहर खींच लाया, "आओ रोज़ी आज हम एक सौ मील तक चलते जायेंगे।"

"कहाँ ?"

"यह तो मुझे मालूम नहीं ! मुहब्बत की कोई मंज़िल होती है ?"

"आओ सितारों से पूछें।" रोज़ी ने सलाह दी।

"आओ !"

अकरम ने अपने दोनों बाज़ू रोज़ी की कमर में डाल के और उसकी आँखों में आँखें डाल के कहा—"आसमान।"

एक सिपाही ने जाकर उसे ठोका दिया—"ऐ ! तुम क्या नशे में है ?"

"हाँ, बहुत नशे में हूँ।" अकरम ने जवाब दिया।

"क्या पियेला है, काजू ?" सिपाही ने पूछा।

"नहीं।"

"ठर्रा ?"

"नहीं।"

"फिर क्या पियेला है ?"

"मुहब्बत !"

पुलिसवाला मुस्कराया, "अहमक़ ! मुहब्बत करने से यही बेहतर है कि तू पुलिस में नौकरी कर ले।"

"क्यों !"

"कभी मैंने भी मुहब्बत की थी, आज मेरे सात बच्चे हैं, तनख़्वाह सत्तर रुपये हैं ! मुहब्बत किधर गयी ?" पुलिसवाले ने घूर कर अकरम की तरफ़ देखा, जैसे उसे कच्चा खा जायगा।

अकरम ने एक आह भर के रोज़ी से कहा—"आओ, रोज़ी घर चलें, यह आदमी भी दुनियादार मालूम होता है।"

४०

ऐतिहासिक रात

शहर में गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया के फ़िल्म डिवीज़न की तरफ़ से एक नुमाइश जारी थी, जिस में अमरीकी, रूसी, अँग्रेज़ी, जापानी, इटालवी, चीनी, चेक और फ्रान्सीसी फ़िल्में दिखाई जा रहीं थीं। भिन्न भिन्न देशों से बड़ी बड़ी हस्तियाँ भी इस मौक़े पर आमंत्रित थीं। रूस से पदओकिन और चर्खोसोव और अमरीका से फ्रैंक कापरा जैसी मशहूर हस्तियों ने बम्बई के फ़िल्मी हल्कों में एक हलचल सी मचा दी थी। हिन्दुस्तान में अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्मों की यह पहली नुमाइश थी, और इतनी सफल थी कि टिकटघरों पर घटों क्यू लगा रहता था। हर शो कई कई दिन पहले बुक हो जाता था। अन्तर्राष्ट्रीय फिल्मों में रूसी, इटालवी और चेक फ़िल्मों में लोगों ने बड़ी दिलचस्पी ज़ाहिर की क्योंकि अमरीकी फ़िल्में तो हर रोज़ देखते थे। उनके लिए यह पहला मौक़ा था कि वे दूसरे देशों की फ़िल्मों के विषयों, उनकी राष्ट्रीयता और स्टाइल से परिचित हो सकें और मन ही मन में बौद्धिक दृष्टि से तुलना कर सकें। रूसी फ़िल्मों में "फाल आफ बर्लिन" और "आनदि सर्कस अरिना" बहुत पसन्द की गयी और पब्लिक के इसरार पर उनके कई शो किये गये। उसके बाद इटालवी फ़िल्मों का नम्बर आता था। "बाईसिकल चोर" "ओपेन सिटी" "मिरैकिल ऑफ मिलान" को जनता ने बहुत सराहा। चेक गुड़ियों की फ़िल्में भी पसन्द की गयी। इटालवी नए यथार्थवाद के स्कूल से हट के कुछ लोगों को फ्रान्सीसी फ़िल्मों में संवाद का ढंग बहुत भाया। चीनी फ़िल्मों में "सफ़ेद बालोंवाली लड़की" ने हर एक के दिल को मोह लिया। चीनी फ़िल्मों का स्टाइल हमारी फ़िल्मों से मिलता-जुलता था, उनकी भावाभिव्यक्ति ऐसी एशियाई थी जो हमारे बहुत निकट लगती थी। इस नुमाइश में हिस्सा लेनेवाले हर मुल्क ने इस अवसर पर एक फ़िल्म प्रतिनिधि-मण्डल भी भेजा था। भिन्न भिन्न प्रतिनिधिमण्डलों का सरकार और जनता की तरफ़ से शानदार स्वागत किया गया।

अकरम आज रात में अभी एक्सेलसियर से वापस आया था, जिसमें रूसी प्रतिनिधिमण्डल का शानदार स्वागत किया गया था। हिन्दुस्तानी फ़िल्म की तमाम श्रेष्ठ और प्रख्यात हस्तियाँ इस मौके पर उपस्थित थीं; लेकिन जिस चीज़ ने इस स्वागत को स्मरणीय बना दिया वह पण्डित नेहरू की इस सांस्कृतिक समारोह में अप्रत्याशित उपस्थिति थी। पण्डित जी उसी दिन लंदन से लौटे थे, और यात्रा

की थकान और अपनी अन्य व्यस्तता के बावजूद भी उन्होंने स्वागत समिति की प्रार्थना स्वीकार की थी। एक्सेलसियर थियेटर का हाल खचाखच भरा हुआ था बल्कि लोग हाल से बाहर भी खड़े थे। हर दृष्टि से यह एक स्मरणीय दिन था। इसलिए दूसरे दिन लोगों को बहुत गुस्सा आया जब उन्होंने कुछ संकुचित दृष्टिकोणवाले समाचारपत्रों में जो अपनी सोवियत से दुश्मनी के लिए प्रसिद्ध थे, पढ़ा कि पण्डित जी को इस स्वागत समारोह में शामिल नहीं होना चाहिए था। वे समाचारपत्र बहुत साफ़ साफ़ या खुल कर तो नहीं कह सकते थे, क्यों कि एक सीधे सादे सांस्कृतिक समारोह का विरोध करना बहुत मुश्किल होता है; इसलिए दबे शब्दों में और मुँह बना कर और तरह तरह की इधर उधर की बातें कह कर वे पण्डित जी के इस क़दम का विरोध कर रहे थे।

जसवन्त ने कहा—"मैं तुम से कहता नहीं था; हमारे मुल्क में संकुचित दृष्टिकोणवालों और प्रतिक्रियावादियों का अभी तक एक बहुत बड़ा जत्था है जो पण्डित जी की मित्रता की पालिसी से सहमत नहीं, जो हर अवसर पर उस भावना की पीठ में छुरा भोंकने की कोशिश करता रहता है। इसलिए वे लोग जो समझदार हैं और जो शान्ति चाहते हैं, उनके लिए यही जान लेना काफ़ी है कि पण्डित नेहरू और उनका शासन शान्ति के लिए पूरी कोशिश कर रहा है। हमें खुद भी इस कोशिश में उनका हाथ बटाना होगा। और इस तरह पण्डित नेहरू और अपनी सरकार की शान्ति चाहनेवाली नीति के हाथ मज़बूत करने होंगे।"

रफ़िया बड़े ध्यान से इस बातचीत को सुन रही थी। पिछले सात-आठ माह में उसने समझदारी में काफ़ी दूरी तय कर ली थी। 'किसान' तस्वीर के पूरा करने में उसकी अनथक कोशिशों का बहुत बड़ा हाथ था। वह दिन-रात काम में जुटी रहती थी, सेट पर वह अकरम की असिस्टेंट का काम बाक़ायदा करती थी, उसके अलावा औरतों के पहनावे और सजावट का काम भी अकरम ने रफ़िया को सौंप दिया था। रज़िया का ख़्याल था कि शायद रफ़िया ज़रूरत से ज़्यादा काम करती है मगर रफ़िया ज़्यादा काम से कभी घबड़ाई नहीं थी, बड़ी प्रसन्नता से रोज़ के शूटिंग की उलझनों को सुलझा देती।

एक दिन रज़िया ने पूछ लिया—"तू जो दिन-रात काम में लगी रहती है, तेरा जी कहीं घूमने को नहीं चाहता ? कहीं हवाखोरी करने को रफ़्फी ?"

रफ़िया यकायक पीली पड़ गयी; बोली—"घूमने को ?....अब नहीं चाहता, अब किसी के साथ कहीं सैर करने को जी नहीं चाहता।" रज़िया ने उसे गले से लगा लिया—"इसीलिए ज़्यादा काम करती है।"

रफ़िया ने कहा —"नहीं, यह बात नहीं है। मुझे काम में मज़ा आता है। फ़िल्म का काम मुझे पसन्द है तो फिर मैं उसे अच्छी तरह सीख क्यों न लूँ?"

"फिर डाइरेक्टर बनेगी, एक औरत हो कर?"

"औरत फ़िल्म डाइरेक्टर क्यों नहीं बन सकती?"

रज़िया ने हँस कर कहा—"मैं जानती हूँ, तू इसलिए ज़्यादा काम करती है कि किसी को भूल सके।" रफ़िया चुप हो गयी, बहुत देर के बाद बोली जैसे तब तक अपना दिल टटोल रही थी "यह भी ठीक है रज़िया, मैं अब तक इशरत को भूली नहीं हूँ, उसे भुला देना चाहती हूँ; मगर इस काम में दिल ज़्यादा लगाना इसलिए नहीं है, यह भी एक वजह है, मगर सबसे बड़ी वजह नहीं है। सबसे बड़ी वजह यही है कि ख़ुद उस काम में मुझे बड़ी दिलचस्पी है। मैं समझ नहीं सकती, हममें से बहुत सी लड़कियाँ उम्दा साड़ी पहने लिपिस्टिक और लाली लगा के ज़ेवरों में छमछमाती हुई सेट पर इस कोने से उस कोने तक निकल जाती हैं और कभी यह नहीं सोचतीं कि फ़िल्म कैसे तैयार होती है, क्योंकर तैयार होती है? इसकी तैयारी में कौन सी कठिनाइयाँ आती हैं, कौन सी समस्याएँ किस तरह हल की जा सकती हैं? एक चीज़ जो रोज़मर्रा की हमारी ज़िन्दगी है, जिसकी नींव पर हमारी सारी ज़िन्दगी चलती है उसीसे हम इस क़दर लापरवाह हो जाती हैं कि दिल में हमेशा ही ख़्याल रहता है कि कब किस तरह जल्दी से शूटिंग ख़त्म हो और हम भाग जाएँ। यह भागना हमें बहुत मंहगा पड़ रहा है, रज़िया।"

रफ़िया यकायक चुप हो गयी, इतनी लम्बी तक़रीर उसने ज़िन्दगी में कभी नहीं की थी। अब जब वह एक साँस में इतनी बातें कह गयी तो ख़ुद अपने आप पर उसे आश्चर्य होने लगा और रज़िया का तो मुँह खुले का खुला ही रह गया। थोड़ी देर के बाद रज़िया धीरे से बोली "अरी कम्बख़्त! तू तो बहुत आगे बढ़ गयी है।" ईर्ष्या के इस एक वाक्य ने रफ़िया की हिम्मत और बंधा दी। अब तो वह अकरम के साथ साथ उसके दूसरे सामाजिक कामों में भी हिस्सा बटाती थी। रज़िया भी काम करती थी मगर उसे अपने पहनावे, अपनी सजावट व शृंगार ही से कम ही फ़ुर्सत मिलती थी।

रोज़ी इन दोनों से हसीन थी और वह ज़्यादा स्वतन्त्र वातावरण में पली थी और लगातार अभ्यास करने से अब उसे अपने मेकअप में ज़्यादा वक़्त नहीं लगता था, मगर वह प्रेम बन्धन में बंधी थी। काम कम करती थी, अकरम को ज़्यादा देखती थी, वहीं ज़्यादा फिरती थी और ख़ास तौर पर जब कभी अकरम कहीं उसके नज़दीक होता तो उसके आसपास क्या हो रहा है उसे कुछ याद न रहता।

बस वह मुटुर-मुटुर अकरम को देखने लगती, और रफ़िया को उसे डांटना पड़ता और रोजी का चेहरा एक दम लाल हो जाता, और वह रफ़िया से माफ़ी माँग कर फिर अपने काम में लग जाती। मगर फिर जब कभी अकरम उसे दिखाई दे जाता तो अपने आस पास की दुनिया को भूल जाती। इन दिनों रोजी के लिए सारा आसमान गुलाबी था और सारी ज़मीन एक नीले रंग में खोई हुई थी। रफ़िया रोज़ी को होश में लाते हुए अपने दिल में एक चुभन सी महसूस करती, एक क्षण के लिए इशरत उसकी निगाहों के सामने आ खड़ा होता, मगर वह फिर उसकी याद को बड़ी सख़्ती से दिल के किसी गड्ढे में ढकेल देती और अपने होंठ चबाते हुए काम में व्यस्त हो जाती।

इस वक्त जसवन्त और अकरम को रात के जलसे पर बहस करते हुए देख कर उसे याद आया कि परसों बम्बई शान्ति सभा की फ़िल्म कमेटी की तरफ़ से बाहर से आये हुए अलग-अलग अनेक देश के फ़िल्मी प्रतिनिधिमण्डलों की सेन्ट्रल स्टुडियो में एक दावत होने वाली है, जिसका जिम्मा अकरम और उसके साथियों ने लिया है और अभी तक इस सिलसिले में कुछ काम नहीं हुआ है।

रफ़िया ने अकरम को याद दिलाते हुए कहा—"उठो, कब तक यहाँ बहस करते रहोगे, उस दावत के बारे में कहाँ कहाँ जाना है, कुछ पता भी है ?"

अकरम कुछ कहने वाला ही था कि जसवन्त ने पूछा—"इस दावत में किन-किन लोगों को बुला रहे हो ?"

"तमाम फ़िल्मी प्रतिनिधिमण्डलों को।"

"अमरीकियों को भी ?" सत्यराय ने चिल्ला के पूछा।

"कमबख्त जहाँ जाते हैं झगड़ा खड़ा कर देते हैं, कोरिया में, हिन्दचीन में, फार्मोसा में, जापान में, प्रशांत सागर के टापुओं में, फ्रांस में, इटली में, बरतानिया में, अरे जहाँ जाओ, ये लोग अपनी मशीनगन, अपना हवाई अड्डा, अपना ऐटम-बम लिये हर जगह मौजूद हैं।"

"क्यों नहीं बुलाएगे, जरूर बुलाएंगे।"

"काम करते हो शान्ति सभा का बुलाते हो जंगबाज़ों को...."

जसवन्त ने कहा—"मुझे सत्यराय की दलील में कुछ वजन मालूम होता है।"

"मेरा ख्याल है कि यह बिल्कुल ग़लत बात है कि अमरीकी लड़ाकू हैं, एक आदमी लड़ाकू हो सकता है, दस आदमी लड़ाकू हो सकते हैं, दस हज़ार आदमी लड़ाकू हो सकते हैं, लेकिन दस करोड़ आदमी लड़ाकू नहीं हो सकते। क्या तुम मुझे बताना चाहते हो कि अमरीका के शहरों और देहातों में इन्सान नहीं बसते ? क्या उन इन्सानों के घर नहीं है, उन घरों में उनके प्यारे बच्चे, औरतें, मा-बाप

और भाई नहीं रहते ? क्या तुम मुझे विश्वास दिलाने की कोशिश कर रहे हो कि लोग अपने सर पर ऐटमबम की तलवार लटकते हुए नहीं देखते ? क्या उनको यह भरोसा नही है कि अगर कोई युद्ध शुरू हुआ तो क्या वह बम उनके घरों पर नहीं गिरेगा ? क्या वे लोग ऊपर से न सही दिल ही दिल में यह प्रार्थना नहीं करते होंगे कि किसी तरह यह युद्ध की मुसीबत टल जाए, किसी तरह से टल जाए ? क्या वे ऐसा नहीं सोचते होंगे ? मेरा ख्याल है कि ज़रूर सोचते होंगे, क्योंकि मेरा विश्वास है कि हुकूमतें बुरी हो सकती हैं, समाज बुरे हो सकते हैं, आर्थिक व्यवस्था बुरी हो सकती है, लेकिन लोग बुरे नहीं होते, कुछ आदमी बुरे हो सकते हैं, लेकिन सारे लोग बुरे नहीं होते।"

"जनाब की फ़िलासफ़ी मेरी समझ में नहीं आयी।" सत्यराय ने चिल्ला के कहा—"आजकल जो अख़बार पढ़ो उसमें युद्ध की खबरें आती हैं। जो अमरीकी जनरल या ऐडमिरल उठता है, ऐटमबम का सोटा घुमाते हुए, धमकी भरे भाषण करता है। मैं तुमसे सच कहता हूँ, उन बदमाशों को मत बुलाओ, ये लोग सारी दुनिया पर अपना झण्डा गाड़ने की फ़िक्र में हैं, ये लोग पक्के जंगबाज़ हैं।"

अकरम ने कहा—"तुम कहते हो ये लोग जंगबाज़ हैं। वे लोग कहते हैं, सारी शरारत की जड़ कम्युनिस्ट हैं, फिर फ़ैसला किस तरह से होगा ?"

"ऐटमबम से !" धूमे ने सर हिला के कहा।

अकरम ने हँस के कहा—"फ़ैसले की सूरत है, दोनों को एक ही दावत में बुलाया जाय. कम से कम मैं तो बुलाऊँगा इस दावत मे।"

जसवन्त ने संदेह प्रकट करते हुए कहा—"तुम बुलाओगे, मगर मेरा ख्याल है वे नहीं आयेंगे। अंग्रेज आ जाएं तो आ जाएं। मगर न कैनेडियन आयेंगे न फ्रान्सीसी, और न इटालवी। शांति सभा की फ़िल्म कमेटी का जलसा है, अमरीकी तो किसी हालत मे नहीं आयेंगे, देखने हो यह शीतयुद्ध कितने ज़ोरों पर है।"

अकरम ने कहा—"वे आयें न आयें मैं तो ज़रूर बुलाऊंगा।"

× × ×

मगर शान्ति सभा की फ़िल्म कमेटी की दावत आशा के विपरीत बहुत सफल रही, अमरीकी भी आये, और बरतानवी भी और कनेडी भी, फ्रान्सीसी भी और इटालवी भी। रूसी, चीनी और चेक प्रतिनिधिमण्डलों के सदस्य भी ज्यादा से ज्यादा संख्या में उपस्थित थे। वहाँ फ्रेंक कापरा थे, और पदओकिन थे, और फ्रान्सीसी डाइरेक्टर और इटालवी कैमरामेन, कैनेडियन और चीनी और हिन्दुस्तानी फ़िल्म इन्डस्ट्री के जिम्मेदार बड़े बड़े प्रोड्यूसर और फिनान्सर तथा तमाम बड़े बड़े कलाकार मौजूद थे। सेन्ट्रल स्टुडियो के नम्बर दो स्टेज का शानदार हाल उम्दा तरीक़े से

सजाया गया था, हिन्दुस्तानी तरीक़े से। यहाँ न कुर्सियाँ थीं न मेज़, फर्श पर बड़े नरम और गुदगुदे गलीचे बिछा दिये गये थे और सब लोग—पूर्वी भी, पश्चिमी भी, एशियाई और यूरोपियन सब लोग टाँगें पसारे या टाँगें दबाये या टाँगों पर टाँगें रखे या पल्थी मारे, ठीक हिन्दुस्तानी ढंग से बैठे थे, और हिन्दुस्तानी कलाकारों की तरफ़ से प्रस्तुत किये गये कल्चरल प्रोग्राम को बड़े गौर से देख रहे थे। यह एक अजीब दावत थी। कोई वहाँ से नहीं हिला इस क़दर मनोरंजक प्रोग्राम था। बार बार प्रोग्राम के अलग अलग हिस्सों को माननीय अतिथियों के आग्रह पर दुहराया गया और थोड़े ही अरसे में अमरीकी, रूसी, चीनी, और हिन्दुस्तानी, फ्रान्सीसी और इटालवी इस तरह दूध मिश्री होकर "वन्समोर" बोल रहे थे जैसे कभी एक दूसरे से जुदा न थे।

और इस हलचल से बाहर शीतयुद्ध जारी था, मोर्चे लगे थे, खाइयाँ खुदी थीं। एशिया में कई जगहों पर इस वक़्त भी बमबारी हो रही थी, हवाई जहाज़ कोरिया में आग लगानेवाले गोले ग़रीब कोरियाई किसानों के छोटे छोटे घरों पर बरसा रहे थे। आज की इस अँधियारी रात में कहीं पर कोई घर भक से उड़ गया, कोई बच्चा अनाथ हो गया, कोई बीवी विधवा हो गयी, कोई मा अपने जवान बेटे की लाश से लिपटकर रोने लगी, और लाखों यूरोपीय घरों में मायें और बच्चे, बुड्ढे और जवान भावी युद्ध के भय से सहमे हुए इस वक़्त भी यह सोच रहे थे कि कल की सुबह कौन सी खबर लाएगी ?

लेकिन हाल में कितनी शान्ति थी, कितनी चैन थी, कितनी प्रसन्नता, कितना भरोसा। यहाँ कहक़हे थे, और नाच और गीत और तालियाँ। यहाँ पर मित्रता के भाव से हाथ मिलाए जा रहे थे और निगाहों में दोस्ती, मेलजोल, इन्सानियत, और मेहरबानी की चमक और प्रकाश था।

इस हाल में तमाम दुनिया की अलग जातियों, कौमों, वंशों, रंगों और विचारों के लोग जमा थे। लोग जो अलग-अलग एक दूसरे से नाराज़ थे, निराशा और घृणा के बिन्दु पर पहुँचते जा रहे थे, शायद जब वह इस हाल में आये, तो अपनी तमाम मजबूरियाँ, कमज़ोरियाँ और अपने पहले से सोचे समझे हुए विचार अपने साथ लाये थे; लेकिन जब-जब यहाँ उनकी निगाहें एक दूसरे से मिलीं तो पर्दे हट गये, और साथ बैठे हुए उन लोगों ने अनुभव किया कि वे एक ही गीत को पसन्द कर सकते हैं, एक ही नाच पर ताली बजा सकते हैं, एक ही मज़ाक पर हँस सकते हैं। वे आदमी थे और शान्ति से रह सकते थे।

हाल के अन्दर.....तो फिर हाल के बाहर क्यों नहीं ? तो फिर कुछ साल क्यों नहीं ? कुछ शताब्दियाँ क्यों नहीं ?

जंगल के भय की तरह ! रात के अन्धकार के डर की तरह, बादलों की गरज के डर की तरह इस युद्ध के डर को भी सभ्य इन्सान के दिल से मिटा दें हमेशा हमेशा के लिए।

"आज की रात बड़ी ऐतिहासिक थी।" अकरम ने चलते चलते रफ़िया से और जसवन्त से कहा।

सबेरे के चार बजे थे, वे लोग दावत के समाप्त होने के बाद अपनी बस्ती की तरफ़ जा रहे थे।

जसवन्त ने कहा—"मुझे ऐसा लगा जैसे आज की रात आशा का जन्म हुआ है, जैसे अन्धेरा बहुत दूर दूर तक छँट गया है।" रफ़िया ने ग्रान्ट रोड के पुल पर खड़े होके चारों तरफ़ देखा, रात ने अपने पर समेट लिये थे, समुद्री हवाओं में ताज़े नमक का सोंधापन था। पूरब के आसमान पर सबेरे की लालिमा खिल उठी थी। यकायक गाड़ी ओस में सराबोर अपने किनारों से ओस की बूंदें छिटकाती हुई, अपनी पतली आवाज़ में कूकती हुई पुल के नीचे से गुज़र गयी और चारों तरफ़ उजेला हो गया।

४१

इशरत अस्पताल में

इस घटना के कुछ रोज़ बाद रज़िया रफ़िया के पास झोंपड़े में आयी और कहने लगी—"इशरत सायन अस्पताल में है और मर रहा है।" रफ़िया का चेहरा एकदम पीला पड़ गया, इतने ज़ोर से उसने साँस अन्दर को खींची कि उसके गले में एक अजीब घायल जानवर की सी चीख़ निकल गयी। रज़िया ने उसे सहारा दिया मगर वह रफ़िया का व्यवहार देखकर हैरान हो गयी। इतने अरसे से कभी उसके और रफ़िया के बीच इशरत के बारे में कोई बात नहीं हुई थी। अगर कभी रज़िया ने बात की थी तो रफ़िया ने हँस के टाल दिया था; ऐसी लापरवाही से उसका ज़िक्र किया था जैसे उसे भूल चुकी है। लेकिन अब रफ़िया को ऐसी हालत में देखकर रज़िया को अपनी राय बदलनी पड़ी। उसने सोचा—अगर मुझे मालूम होता—यह मुई उसे अपनी जान को लगाएगी तो मैं यह ख़बर दूसरे तरीक़े से आहिस्ता आहिस्ता से सुनाती।

थोड़ी देर बाद रफ़िया ने पूछा—"कहाँ है वह ?" उसकी आवाज़ फुसफुसाहट से ज़रा ही ऊँची थी।

"सायन अस्पताल में।"

"सायन अस्पताल कहाँ है ?"

"सायन में। जहाँ पहले मिलिटरी की बैरकें थीं ना, उन्हें अब जनरल अस्पताल में बदल दिया गया है।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"मुझे अपने एक्स्ट्रा यूनियन के प्रेसीडेन्ट ठाकुर गजराज सिंह ने बताया। वह देखने गये थे; क्योंकि इशरत ने उन्हें बुलाया था। और उसने—मेरा मतलब है इशरत ने खास तौर पर गजराज सिंह से कहा था कि रफ़िया को मेरी बीमारी की खबर न मिले; मगर चूंकि अब वह मर रहा है इसलिए मैंने...."रज़िया ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया। रफ़िया ने अपना पर्स उठाया और झोंपड़े से बाहर निकल गयी।

"कहाँ जा रही है तू ?"—रज़िया ने चिल्ला के पूछा। मगर रफ़िया ने कोई जवाब नहीं दिया।

वह बस्ती की गली से दौड़ती हुई बाहर निकल गयी, वहाँ से भायखला के पुल तक भागती हुई गयी—एक दीवानी औरत की तरह। जब वह भायखला पुल के बस-स्टैंड पर पहुँची तो उसका दम फूलने लगा; लेकिन उसे अपने शारीरिक कष्ट का कोई ख्याल न था। वहाँ से उसने सायन जानेवाली बस ली और उसमें बैठकर अस्पताल के नाके पर जा उतरी और सीधी अन्दर चली गयी। मरीज़ों से मुलाक़ात का वक्त साढ़े-चार बजे का था और अभी उसमें एक घण्टा बाक़ी था, कुछ अरसा तो नर्सों और डाक्टरों से पूछने में गुज़र गया कि इशरत कौन-से वार्ड में दाखिल किया गया था। उसके बाद रफ़िया देर तक अस्पताल की सड़कों और पग-डण्डियों पर टहलती रही। घास की क्यारियों में कहीं फूलों ने खिलने की कोशिश की थी, मगर अस्पताल के बीमार वातावरण में उनकी कोशिश कुछ अजीब हास्य-जनक सी मालूम हो रही थी, पौधों से भी फ़िनायल और पट्टियों की बू आ रही थी। लाल ईंटों की लम्बी-लम्बी नीची-नीची बैरकें एक अजीब उदास दृश्य उपस्थित करती थीं। आहिस्ता-आहिस्ता मुलाक़ातियों की संख्या बढ़ती गयी। बहुत-से लोगों के हाथों में फल और फूल थे। तभी रफ़िया को भी ख्याल आया और वह दौड़ी-दौड़ी अस्पताल के बाहर आयी, जहाँ दो-तीन ठेलेवाले दूकानें सजाये बैठे थे। इन लोगों का भाव बाज़ार से दुगुना था, फिर भी रफ़िया ने आधी दर्जन मोसंबियाँ और दो सेव खरीद लिये और गुलाब के फूलों का एक गुच्छा उसे चार आने में मिल गया। फल और गुलाब ले कर वह फिर अस्पताल के अन्दर गयी। इशरत 'बी' वार्ड में दाखिल था, रफ़िया जल्दी से 'बी' वार्ड की तरफ़ गयी, क्योंकि अस्पताल में अब मुलाक़ात के वक्त की घण्टी बज रही थी और लोगबाग बच्चे, औरतें, मायें और

भाई-बाप और बहनें, दोस्त और रिश्तेदार मरीज़ों को देखने के लिए जुदा-जुदा वार्डों में घुस रहे थे। रफ़िया भी जल्दी से 'बी' वार्ड में घुस गई। जनरल वार्ड के अन्दर क़तार दर क़तार पलंगों पर मरीज़ बैठे या लेटे हुए अपने मुलाक़ातियों से बातें शुरू कर रहे थे।

अस्पताल की ज़िन्दगी में मरीज़ों के लिए यह ज़िन्दगी के सब से अधिक प्रसन्नता के क्षण होते हैं, जब बाहर की ज़िन्दगी के ताज़े झोंके अस्पताल के बीमार वातावरण में प्रविष्ट होते हैं और अपने साथ आशा, प्रसन्नता और महकती हुई मुहब्बत की ख़ुशी लाते हैं। मरीज़ों के भूखे तरसे हुए चेहरे, बीमार और उदास चेहरे इस प्रसन्नता की तरफ़ इस आशा और ईर्ष्या की मिली-जुली भावनाओं से देखते हैं, जैसे वे ज़िन्दगी को अपने दाँतों, अपने हाथों और अपने पंजों से पकड़ कर उसी से लटक जाएँगे। रफ़िया एक बार सारे वार्ड का चक्कर लगा के घूम गयी, लेकिन उसे इशरत कहीं दिखाई न दिया। दूसरी बार वह फिर धीमे-धीमे चलते हुए हर एक पलंग को ग़ौर से देखते हुए नर्स की तरफ़ बढ़ी ताकि उससे पूछे कि इशरत कहाँ है ? कहीं उसका पता बताने में नर्स ने ग़लती तो नहीं की। दूसरी बार जब वह दाई दीवार से लगे हुए बहुत-से पलंगों को देखती हुई बीच में बिछी हुई नर्स की मेज़ की तरफ़ जा ही रही थी कि किसी ने उसे कमज़ोर आवाज़ में पुकारा—"रफ़िया !"

रफ़िया ने पलट कर देखा।

बाईस नम्बर के बेड से एक काला धुँआया हुआ चेहरा उसकी तरफ़ ताक रहा था। आँखें गहरे गड्ढे में धँसी हुई थीं, गाल अन्दर को घुसे हुए थे, घाँटी पतली गर्दन से बाहर किसी पुराने दरख़्त की गँठीली जड़ की तरह जैसे ज़मीन से उखड़कर बाहर आ गयी हो। एक पतला, साँवला-सा हाथ उठा और फिर पलंग पर गिर गया। रफ़िया ने बड़े आश्चर्य से उस अजनबी की तरफ़ देखा, वह आहिस्ता आहिस्ता उसके क़रीब गयी और पूछने लगी—"मैंने आपको पहिचाना नहीं, माफ़ कीजिएगा, आप कौन हैं ?"

दो काले गढ़ों के अन्दर की काली पुतलियाँ ज़रा सी चमक गयीं, बहुत अरसे तक वह बीमार चेहरा रफ़िया की तरफ़ ताकता रहा, फिर सूखे स्याह से होंठ हिले—"इशरत !"

"इशरत ?" रफ़िया चीखी और आसपास के पलंगों के रोगी और उनके मुलाक़ाती चौंक कर उसकी तरफ देखने लगे, नर्स ने कहा "शि-शि-शि-स् शोर न करो।"

"इशरत ?" अपनी आवाज़ की हैरत को दबाते हुए वह फिर बोली और इशरत के पलंग पर बैठ गयी। "इशरत ?"

बहुत देर तक रफ़िया उस चेहरे की तरफ़ देखती रही और उन टूटे फूटे खण्डहरों की ईटों से उस चेहरे का निर्माण करती रही, जो कभी इशरत का चेहरा था। बहुत आहिस्ता उन होठों से वे होंठ जो कभी इशरत के थे और उन गालों पर वह लाली और कोमलता जो कभी इशरत की थी। बहुत ही आहिस्ता से वे आँखें तंग और काले गड्ढों से उपर उठने लगीं। स्याह घुंआया हुआ झुर्रियों से भरा चेहरा स्पष्ट और साफ़ होता गया और जब रफ़िया ने अपने इशरत को पहिचान लिया तो उसने उसका कमज़ोर हाथ अपने हाथ में थाम लिया और चुपचाप रोने लगी। इतने सालों की घुटी हुई, तरसी हुई, घायल मुहब्बत उसकी आँखों से उबल उबल कर बाहर आ गयी और उसके गालों पर बहने लगी और वह अपने आप को रोक न सकी, चुपचाप आँसू पोछे बग़ैर रोती रही। इशरत का हाथ उसके हाथ में कांपता रहा, वह हाथ जो हाथ न था, अतीत का फटा हुआ एक पृष्ठ था, किताब का हाथ ज़िन्दगी से उखड़ा हुआ, जिसके अतीत के सब पृष्ठ गायब थे।

तुम इस ज़िन्दगी का क्या नहीं बना सकती हो, रफ़िया तुम बच्ची नहीं हो कि इस काग़ज़ की एक नाव बना डालो और उसे ज़िन्दगी के दरिया में बहा दो और उसे लहरें लेते हुए समुद्र की सतह पर ग़ायब होते हुए देखती रहो। तुम इतनी भावनाहीन नहीं हो, कि इस काग़ज़ से अपने जूते पोंछ लो, और उनका पालिश चमका लो। बहुत से लोग दूसरों की ज़िन्दगी से ऐसा ही करते हैं। इस काग़ज पर अब वह चमकीली हुई तस्वीर नहीं है जो कभी तुम्हारी आशाओं का केन्द्र थी कि जिसे मोड़ कर अपने ब्लाउज़ के नीचे धड़कते हुए सीने से लगा लो। यह तो एक जीर्णशीर्ण ज़िन्दगी का फटा हुआ पृष्ठ है जो समाज के भीषण तूफ़ानों के थपेड़े खाता हुआ बेबसी से उड़ता हुआ तुम्हारे सामने आया है जो इस पर राह चलते क़दमों का कीचड़ है, गन्दे नालों की बू है, रिसते घावों का रक्त और खंखारते गलों का थूक है। इस मैले कुचैले फटे हुए पृष्ठ का तुम क्या करोगी जिसकी ज़िन्दगी का एक अक्षर भी ठीक तरह से नहीं पढ़ा जाता?

भाग जाओ, रफ़िया यहाँ से भाग जाओ।

लेकिन रफ़िया भागी नहीं, दौड़ी या ग़ायब नहीं हुई, वह उस बिस्तर पर बैठी सिसकती रही और इशरत के ख़ामोश इन्कार के बावजूद उसके क़रीब आ गयी। उसने इशरत को सबके सामने गले से लगा लिया। उसने उसका माथा चूमा। उसके जले हुए गाल चूमे और उसने आहों, आँसुओं और सिसकियों के बीच कहा—"तुम ज़िन्दा रहोगे इशरत, तुम ज़िन्दा रहोगे, मैं तुम्हें ज़िन्दगी दूंगी, अपनी सारी ज़िन्दगी तुम्हें दूँगी।"

यह कहते वक़्त रफ़िया के चेहरे पर वह तेज था जैसे वह ख़ुद कोई इन्सान न

हो, खुदा हो। और मरते हुए इशरत के दिल में ज़िन्दगी का शोला भड़का और प्राण की बुझी हुई लौ फिर से सहारा पाकर चमकने लगी और वह सोचने लगा—सच कोई मुहब्बत नहीं कर सकता, औरत की तरह। और कोई बलिदान नहीं दे सकता औरत की तरह। और कोई क्षमा नहीं कर सकता औरत की तरह। और कोई किसी के लिए जान नहीं दे सकता औरत की तरह। औरत एक बहुत ही साधारण हस्ती होती है, बहुत ही मामूली छोटी और कोमल लेकिन अपने मामूली-से छोटे-से वातावरण में वह एक ईश्वर की तरह रहती है। वह रचना करती है और रात व दिन ज़िन्दगी देती है। और उसकी कोख से, सीने से, होंठ और हाथ की उँगलियों से, ज़िन्दगी के लहू, उसके दूध, उसके शहद और उसके गुलाब की महक आती है।

बहुत देर तक रफ़िया इशरत का सिर गोद में लिये बैठी रही और बहुत देर तक उसकी बातें सुनती रही, टूटी-फूटी बातें, टूटे-फूटे-से वाक्य। मौन का कुछ समय जो कभी-कभी वाक्यों से भी अधिक बोलता था, सिसकियों में डूबे हुए वाक्य बेडौल बेसिलसिले की कहानी धीरे-धीरे अगले तीन-चार दिनों में रफ़िया के मस्तिष्क में एक स्पष्ट रूप धारण करने लगी, इस कहानी का साधारण रूप न था, वह एक भयानक डरावनी कहानी थी क्योंकि इशरत ने ज़िन्दगी के तलछट की अन्तिम बूँद पी थी। और वह समाज की तह में डूब कर उन किनारों तक हो आया था, जहाँ नासूरों के फूल खिलते हैं, और बीमारियों और कीटाणुओं के पीप लावे की तरह बहती है। और असामाजिक व्यक्ति शार्क मछलियों की तरह निडर होर जल की दुनिया में अपना शिकार ढूँढते हैं।

इशरत ने यह सब कुछ देखा था और अब दुनिया ने उसकी हड्डियों तक का मांस खा लिया था। उसकी रगों का सारा लहू निचोड़ लिया था। और उसे नींबू की निचुड़ी हुई खाल की तरह बाहर कूड़े पर फेंक दिया था। किसी न किसी तरह इस अस्पताल में इशरत पहुँच गया था अपनी ज़िन्दगी का अन्तिम समय पूरा करने के लिए.....इशरत ने कहा—"मैं चाहता नहीं था कि तुम्हें अपना चेहरा दिखाऊ।"

"क्यों ?"

"कह नहीं सकता।" इशरत ने अपना दिल टटोलते हुए आहिस्ता-आहिस्ता रुक-रुक कर कहा—"सिर्फ़ यह चाहता था कि जब मर जाऊँ लाश तुम्हारे हवाले कर दी जाए।"

"क्यों ?"

"सोचता हूँ जिन लोगों ने मेरी ज़िन्दगी की बेइज़्ज़ती की, वे मेरी मौत की

कैसे इज्ज़त कर सकेंगे ? सिर्फ़ यह ख्याल था। तुम मेरे मरने के बाद मेरी बेइ मरा नहीं कर सकोगी।" इशरत ने कहा—"हाँ, मरने से पहले राज को अपना चेहरा ज़रूर दिखाना चाहता था।"

दर्द एक खंजर की तरह रफ़िया के दिल में घूमा, उसकी आँखों में आँसू छा गये, बोली—"तुम्हें अभी तक उससे मुहब्बत है ?"

"मुहब्बत ?" इशरत हँसा, उसकी हँसी बड़ी कड़वी थी। इशरत ने बड़ी तेज़ी और तीक्ष्णता से कहा—"सिर्फ़ एक क्षण के लिए उसे यह चेहरा दिखाना चाहता था, आज का चेहरा। मेरा यह चेहरा, जैसे यह आज है, सिर्फ़ एक क्षण के लिए। क्या तुम समझ सकती हो ?"

रफ़िया ने कहा—"हाँ, मैं समझती हूँ।"

इशरत ने कहा—"नर्स ने मुझे बताया, उसका ख्याल था, मैं एक हफ़्ते में मर जाऊँगा। डाक्टर ने दस दिन पहले मुझसे कहा था तुम अपने घरवालों को सूचना दे दो मगर मेरी हिम्मत न पड़ी और बूढ़ी अम्मा के पास पैसे भी कहाँ होंगे आने के लिए और मेरे छोटे-छोटे बहन भाई ? नहीं, नहीं मेरी हिम्मत न हुई। मैंने सोचा, मैंने सोचा मैं अकेला मर जाऊँगा। वह हफ़्ता भी गुज़र गया और मैं ज़िन्दा हूँ।"

रफ़िया ने कहा—"तुम ज़िन्दा रहोगे। मैं तुम्हें ज़िन्दा रखूंगी, अब तुम नहीं मरोगे।"

रफ़िया के लहज़े में दृढ़ विश्वास था, और भरोसा था।

यकायक अस्पताल के वार्डों में घंटियाँ बजने लगीं मुलाकात का समय खत्म हो रहा था, रफ़िया ने अपने आँसू पोंछकर कहा—"मैं कल फिर आऊँगी, हर रोज़ आती रहूँगी, मत घबड़ाओ, अब तुम बिल्कुल अच्छे हो आओगे।"

अस्पताल के दर्वाज़े से बाहर निकलते हुए रफ़िया घूमी, इशरत बराबर उसकी तरफ़ देख रहा था।

× × ×

अगले दिन इशरत की हालत ज्यादा खराब थी। जब रफ़िया वहाँ पहुँची तो उसकी आँखें ज्योतिहीन-सी नज़र आती थीं। वह बहुत खामोश लेटा था। डाक्टरों ने आज उसे सेलाइन पर रखा था। एनामेल के स्टैण्ड पर काँच की टोटियों से सेलाइन बूँद-बूँद करके उसके शरीर में पहुँचाया जा रहा था।

"तुम इतने चुप क्यों हो ?" रफ़िया ने पूछा।

"कुछ नहीं।" इशरत ने जवाब दिया और फिर बहुत देर तक चुप रहा।

रफ़िया ने इधर-उधर देखा, कहाँ से और किधर से वह इसे हिम्मत दिलाए ? यकायक उसकी नज़र पास के बेड पर पड़ी। इक्कीस नम्बर के बेड पर आज एक

नया रोगी आया था, वह कल वाला यहाँ मौजूद न था, जो बार-बार रफ़िया की तरफ़ देखकर मुस्कराता था। रफ़िया ने पूछा—"तुम्हारा पड़ोसी आज बदल गया ?"

"हाँ।"

"वह पुराना कहाँ चला गया ?"

"मर गया।" इशरत ने आहिस्ता से कहा।

"अरे !" रफ़िया के मुंह से निकला, "कल तक तो भला चंगा था।"

इशरत बहुत देर तक चुप रहा, फिर बोला—"अस्पताल में तो ऐसा ही होता है। दिन भर वह ठीक रहा, रात को यकायक उसकी तबियत बिगड़ी, रात भर वह अपनी बीवी को याद करता रहा और अपने छोटे बच्चे रतन को। रतन ! रतन !! रतन !!! वह बार-बार दर्द के बीच में भी इस तरह अपने बेटे का नाम लेता था जैसे आदमी शान्ति, सन्तोष और खुशी की साँस लेता है। सुबह वह मर गया।

"परसों तक वह सामने अट्ठाइस नम्बर के बेड पर एक नौजवान था, साहसी, बहादुर, उसकी बाईं टाँग गैंगरीनी की वजह से डाक्टर ने काट डाली थी, मगर वह बड़ा बहादुर था। बजाय इसके कि डाक्टर उसका हाल पूछते, वह डाक्टरों का हाल पूछा करता था। नर्स को ज़ुकाम दूर करने की दवा बताता था और इधर उधर के पलंगों पर पड़े हुए रोगियों को हँसाने की कोशिश करता। कभी कभी जब दर्द की तीव्रता से वह व्याकुल होता तो उसकी मुट्ठियाँ भिच जातीं, उसके बाद वह फिर बड़े धीरज से अपने आप पर क़ाबू पा लेता और लोगों को हँसाने लगता। वह परसों रात को चार बजे अचानक मर गया। उसके मुँह से एक लम्बी दर्दनाक चीख़ निकली, एक भयंकर चीख और वह उसके बाद मर गया। जनरल वार्ड में अब यही होता है।"

रफ़िया ने दिल में सोचा, वह इसे जनरल वार्ड में नहीं रखेगी। वह नर्स के पास गयी। नर्स ने उसे बताया कि स्पेशल-रूम के लिए सात रुपये रोज़ाना किराया देना पड़ेगा। रफ़िया ने सोचा, वह किराया देगी। वह कहीं न कहीं से रुपये ले के आयेगी और इशरत के लिए अलग कमरे का इन्तज़ाम करेगी। इस जनरल वार्ड में पड़े-पड़े तो उसकी रही-सही जीवन-शक्ति समाप्त हो जायगी और वह ज़िन्दा न बच सकेगा। इशरत के लिए एक अलग कमरा होना चाहिए, जहाँ वह पलट के किसी साथी की मौत का भयानक चेहरा न देख सके।

रफ़िया ने अगले रोज़ रज़िया से कुछ रुपये उधार लिये, कुछ उसके पास भी थे, मिला के उसने दस दिन का ऐडवान्स किराया अस्पताल में जमा कर दिया और इशरत को प्राइवेट वार्ड में एक अलग कमरे में दाख़िल करा दिया। प्राइवेट वार्ड में दाख़िल होते ही इशरत की हालत सुधरने लगी। रफ़िया हर रोज़ आती, हर

रोज़ उसके लिए फल और फूल लाती और यह तो अब प्राइवेट वार्ड का कमरा था, इसलिए रफ़िया जितनी देर चाहिए वहाँ ठहर सकती थी। इसलिए जब भी उसे काम से फ़ुर्सत मिलती, यहाँ आ जाती। डाक्टर मेहता, जो हर रोज़ इशरत की सुधरती हालत को देखकर बहुत ख़ुश हुए, रफ़िया से बोले—"जब से तुम आयी हो, इसकी हालत अच्छी हो रही है, मैं तो लगभग निराश हो चुका था; क्योंकि इशरत में अपनी ज़िन्दगी के साथ लड़ने के लिए भीतरी शक्ति ही न थी और जब मरीज़ ही मरना चाहने लगे तो डाक्टर उसे कब तक ज़िन्दा रख सकता है ?"

डाक्टर चला गया तो इशरत ने कहा—"डाक्टर सच कहता था। उन दिनों मेरे दिल में जीने की इच्छा तक बाक़ी न रही थी।"

"तुमको ज़िन्दा रहना होगा इशरत, अपनी बूढ़ी मा के लिए; अपने नन्हें भाई-बहनों के लिए !"

"मैं तुम्हारे लिए ज़िन्दा रहूँगा।" इशरत की उँगलियाँ रफ़िया की उँगलियों से खेलने लगीं।

"रफ़िया ! क्या तुम्हें मरीन ड्राइव की सैर याद है ?"

रफ़िया की आँखें ख़ुशी से चमक उठीं।

"मुझे कभी याद नहीं आयी," इशरत ने कहा—"इतने सालों में राज के यहाँ, शमशाद के यहाँ, विलायत बेगम के यहाँ, दादा के यहाँ, कभी मुझे वह रात याद नहीं आयी। तुमसे झूठ नहीं बोलूँगा। तुम्हारा चेहरा कई बार सामने आया। जैसे मुझसे शिकायत कर रहा हो और हर बार मैंने तुम्हारे चेहरे को अपने दिमाग़ से मिटा दिया, आदमी शिकायत करनेवाले चेहरे भूल जाना चाहता है। मैं भी ऐसा ही करता था। मैं तुमसे झूठ न बोलूँगा। लेकिन जनरल वार्ड में बाईस नम्बर के बिस्तर पर मौत और ज़िन्दगी के बीच वह ख़ूबसूरत रात कई बार मेरे दिमाग़ में चमक उठी और मुझे सब कुछ याद आया—वह कोलाबे में शूज़ की दूकान में जाना, वह हरा जूता अभी तक मेरे पास है। उस दिन के बाद मैंने उसे कभी नहीं पहना।" इशरत कहता ही रहा—"इंडिया गेट से हम लिबर्टी गये थे, जहाँ हमने फलोंवाले स्टैंड पर...."

रफ़िया ने उसकी बात काट कर कहा—"भूलते हो, चौपाटी से हम लिबर्टी नहीं गये थे, लिबर्टी जाने से पहले हम साल्ज़बर्ग गये थे, जहाँ हमने आइसक्रीम खाई थी।"

"फिर वह टैक्सी में बैठना और बारिश का बरसना और हौले हौले टैक्सी का मरीन ड्राइव की तरफ़ चले जाना, तुम मेरी बगल में बैठी थीं।"

"वह घुन्ध।" रफ़िया ने कहा—और उस जगमगाती याद से उसका चेहरा चमक

उठा—"हाय, वह घुन्ध कभी नहीं भूलती। घुन्ध में तुम्हारा वह चेहरा, तुम्हारी वह बाँहें, तुम्हारा.....।" रफ़िया ने शर्म से इशरत का हाथ अपने चेहरे पर रख लिया। इशरत के बीमार चेहरे पर लाली की लहर दौड़ गयी।

"वह रात उसके बाद कई बार मेरे बिस्तर पर आयी। बाईस नम्बर के बिस्तर पर ज़िन्दगी और मौत के बीच लटकते हुए कई बार वह रात मेरी जिन्दगी में पवित्र क्षण की तरह आयी। रफ़िया मैं तुम से सच कहता हूँ, जब मैंने अपनी पूरी ज़िन्दगी की जाँच पड़ताल की तो सिर्फ़ एक वही रात ऐसी मालूम हुई जिसे मैं पूरे का पूरा उसी तरह रखना चाहूँगा, उसका एक क्षण बदलूँगा नहीं, लेकिन बाक़ी सारी ज़िन्दगी—अगर यह मेरे बस में हो, अगर मुझे दोबारा ज़िन्दगी बसर करने की इजाज़त मिले, शुरू से अन्त तक, तो बाक़ी सब बदल डालूँगा, सिर्फ़ वही एक रात बाक़ी रहने दूँगा।" रफ़िया का दिल ख़ुशी के मारे ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा।

इशरत कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—"मगर वक़्त के बहाव में हम वापस नहीं जा सकते, अपनी ज़िन्दगी को बदल नहीं सकते, कुछ नहीं, एक क्षण तक बदला नहीं जा सकता।" इशरत के लहजे में एक सच्चा पछतावा था।

"बीता वक़्त नहीं, तो आने वाला बदला जा सकता है।" रफ़िया ने कहा—

"अब अगर मैं ज़िन्दा रहा और जब मैं रात व दिन अपनी ज़िन्दगी के लिए लड़ता हूँ तो मैंने फ़ैसला किया है कि हमेशा तुम्हारे क़दमों में रहूँगा।"

इन शब्दों के लिए, शब्दों के लिए नही, शब्दों के अन्दर की सच्चाई के लिए कब से रफ़िया का दिल तड़प रहा था, उसके कान भूखे थे, तरसे हुए थे, इसी आवाज़ के लिए। वे कब से ढूंढ रहे थे, इस मीठी आवाज़ के बुलावे को जो इस वक़्त रफ़िया के कानों में गूंज रही थी।

इशरत चुप हो गया।

थोड़ी देर के बाद बोला—"तुमने मेरी मा देखी है?" रफ़िया ने सिर हिलाया।

"उसके बाल सफ़ेद हैं, उसका क़द छोटा है, उसका रंग गोरा है, उसकी आँखें छोटी छोटी हैं, उसके गालों पर झुर्रियाँ हैं, मगर जब वह हँसती है, बहुत कम हँसती है क्योंकि उसका पति मर चुका है और उसके बेटे उसे बहुत दुःख देते हैं, मगर फिर भी उन दुःखों के बीच जब वह हँसती है तो उसका चेहरा सुबह के तारे की तरह जगमगाने लगता है। उन दिनों अपनी मा मुझे बहुत याद आयी। वह हाथ में मेहंदी ऐसी उम्दा सजाती है कि मुहल्ले भर की जवान लड़कियाँ मेरी मा से अपने हाथों पर मेहंदी के बेलबूटे व चित्र रचवाने के

लिए आती हैं। बाईस नम्बर के पलंग पर लेटे लेटे कई बार मैंने अपनी मा को तुम्हारे हाथों पर मेहँदी रचाते हुए देखा है।"

रफ़िया की आंखों में आँसू आ गये।

इशरत ने कहा—"कई बार कल्पना में मैंने देखा है अपने आप को सेहरा लगाए अपने घर के बाहर खड़े साईस से कहते हुए—घोड़ा लाओ। फिर मस्ती में झूलता वह दूल्हा का घोड़ा मेरे सामने आया। मैं उस पर सवार हुआ और जाने किन टेढ़ी मेढ़ी गलियों में खोता हुआ मैं तुम्हारी डोली के आगे अपने घोड़े पर सवार तुम्हें अपने घर ले आया। कौन गीत गा रहा था, यह तो मैंने नहीं देखा। मैंने तो सिर्फ़ घोड़े से उतर कर तुम्हारी डोली का पर्दा खिसका दिया और मेरी मा तुम्हें बड़े प्यार और मुहब्बत से सहारा दे कर....."

"बस बस।"—रफ़िया सिसक सिसक कर रोने लगी। "उन तस्वीरों को हाथ मत लगाओ इशरत। एक औरत इन्हीं तस्वीरों को देख देख कर किसी की याद में अपनी ज़िन्दगी बसर कर देती है, यह तुम क्या जानो ?"

इशरत के चेहरे पर एक कमज़ोर सी मुस्कराहट आयी, वह थक कर अपने तकिये पर जा गिरा, उसकी आँखें बन्द हो गयीं, रफ़िया ने उसकी नाड़ी देखी, उसे गरम दूध पिलाया। इशरत के चेहरे पर ज़रा सी लाली वापस आ गयी। रफ़िया ने कहा—"तुम ज़्यादा बातें न करो।"

इशरत ने ख़ुशी और मुहब्बत से रफ़िया की और देखते हुए बहुत आहिस्ता से कहा—"अच्छा।"

"अच्छा।" नरम नरम यह मधुर शब्द 'अच्छा' था। चारों तरफ़ मुहब्बत का मद्धम मद्धम प्रकाश बिखेरता हुआ शब्द 'अच्छा' गहरी साँस लेता हुआ रफ़िया के गालों को एक चुम्बन की तरह छू गया।

रफ़िया अपना पर्स ले के खड़ी हुई, बोली "मैं अब कल आऊँगी।"

४२

बाँकड़िया को समझ आ गयी

दूसरे दिन सेठ बाँकड़िया का दिवाला निकल गया। कोरिया की लड़ाई बन्द हो गयी थी, बम्बई स्टाक एक्सचेंज के भाव धड़ से नीचे गिर गये थे। बाँकड़िया का ख्याल था कि लड़ाई जारी रहेगी। उसका ख्याल था कि अमरीकी कभी सुलह नहीं करेंगे, लड़ाई होती रहेगी। हालाँकि कई दिनों से तरह तरह की खबरें आ रही थीं मगर बाँकड़िया को सुलह का भरोसा नहीं था। उसका पूरा विश्वास था कि लडाई जारी रहेगी। यही सोच कर उसने स्टाक एक्सचेंज पर बड़े बड़े दाँव खेले थे। वह और मैडम हमेशा बड़े से बड़े दाँव खेलने के आदी थे इसीलिए उन्होंने लाखों कमाए थे और इसीलिए आज उनका दिवाला निकल गया।

दादर मेन रोड पर और इधर उधर स्टुडियोज़ में यह खबर आग की तरह फैल गयी कि सेठ बाँकड़िया ने दिवाला निकाल दिया। सट्टे में सेठ को अस्सी लाख का हरजाना देना पड़ा और उसमें कोई झूठ न था। सेठ बाँकड़िया एक रात में अस्सी लाख रुपये हार गया था। अपनी कुल पूंजी की एक झंझी कौड़ी उसके पास न रही थी। उसका कुल बैंक बैलेंस उसके स्टुडियोज़, कारखानों में हिस्से, बिल्डिगें, एक रात में मालिक बदल चुकी थीं। अब सेठ के पास बस वही रुपया होगा जो उसके घर में रखा होगा या मैडम के ज़ेवर और एक गाड़ी जो भाग्य से उसके भतीजे के नाम थी।

यह खबर सुनते ही एक के बाद एक लोग, इन्डस्ट्री के हर विभाग के लोग, सेठ बाँकड़िया के दफ़्तर में अफ़सोस प्रकट करने के लिए पहुँचना शुरू हुए, क्यों कि सेठ बाँकड़िया कुछ भी हो, फ़िल्म इन्डस्ट्री का एक प्रसिद्ध आदमी था। अब तक दर्जनों तस्वीरें बना चुका था। सैकड़ों आदमियों से उसके सम्बन्ध थे। बहुत से कलाकारों ने उसकी आनेवाली दो एक फ़िल्मों में मुफ़्त काम करने का प्रस्ताव रखा, उसके स्टुडियो के मज़दूरों ने अगले तीन माह के लिए तनख़्वाह न लेने की आफ़र दी, हर व्यक्ति अपने अपने तरीक़े से अफ़सोस जाहिर कर रहा था, कुछ असली कुछ बनावटी।

अकरम भी यह सुनते ही सेठ बाँकड़िया के यहाँ पहुँचा। वहाँ मैडम अपने कमरे में हमेशा की तरह ताश की बाज़ी खेल रही थी, वही रमी, जैसे कुछ हुआ ही न था। सिर्फ़ मैडम बार बार अपने सीने के ऊपर का फराक इस तरह झटकती थी, जैसे वह कोई ख्याली मक्खी उड़ा रही हो। मगर यह तो मैडम की पुरानी आदत थी। मैडम के पास आगरे की एक मशहूर तवायफ बैठी थी जो फ़िल्मों में अपनी किस्मत आज़माने आयी थी।

मैडम ने अकरम के अफ़सोस ज़ाहिर करने का कोई जवाब न दिया। चुपचाप रमी खेलती रही। उसने घड़ी देखकर बजनदत्त से कहा—"एक मिनट से ज़्यादा हो गया तुम चाल नहीं चले।"

मैडम की आवाज़ में झुंझलाहट थी क्योंकि मैडम वक़्त की बड़ी पाबन्द थी, रमी खेलते वक़्त अगर कोई चाल में देर करता तो उसे बेहद चिढ़ होती थी। वह मिनट नहीं सेकेन्ड तक के हिसाब की सख़्ती से पाबन्द थी। बजनदत्त ने मुस्करा के कहा—"मैडम, मेरा दिल कहीं और चला गया था।"

"दिल ?" मैडम ने नाराज़ होके कहा—"दिल का रमी से क्या काम ?"

"तुम भूलते हो बजनदत्त !"—अकरम ने कहा—"मैडम किसी के दिल की बात नहीं समझतीं। वह सिर्फ़ वक़्त की सुइयाँ देखती हैं। मैं समझता हूँ, मैडम के पास कोई दिल नहीं है, वहाँ अन्दर भी एक घड़ी है जिसकी टिक टिक को वह भूल से अपने दिल की धड़कन समझती हैं।"

मैडम ने चिल्ला के कहा—"तुम बेकार अपना दर्शन बघार रहे हो, देखते नहीं मैं खेल रही हूँ।"

"मैडम !" अकरम ने पूछा—"क्या आज भी आपको इस खेल का पता नहीं चला, जो आप बरसों से खेल रही हैं, यह खेल है कि बिज़िनेस है। जुआ है, चंडूखाना है, गुनाह है, या गन्दी नाली का सड़ा हुआ पानी है ? कितने ही बैंकों की चेक बुकें, कितनी ही अस्मतों की डोरियाँ, कितनी ही गुलामी की रस्सियाँ, धागे, जंजीरें, इन ताश के पत्तों से बँधी हैं।"

"बके जाओ।"—मैडम ने कहा—"मात्रों में तुम्हारी पिक्चर सातवें हफ़्ते में क्या चली गयी कि तुम अकरम से दुनिया के सबसे बड़े अक्लमन्द बन गये। यह तुम अफ़सोस ज़ाहिर करने आये हो कि लेक्चर झाड़ने ? तुम्हें शर्म नहीं आती, आज मैं दीवालिया हुई हूँ और तुम इस तरह....."

"तुम अगर दीवालिया हुई होतीं मैडम तो मुझे इतना अफ़सोस न होता।" अकरम ने कहा—"अफ़सोस तो यह है मैडम कि तुम्हारे साथ आज कितने ही स्टुडियो के कर्मचारी, कितने ही कारख़ानों के मज़दूर और कितने ही तस्वीरों में काम करनेवाले कलाकार दीवालिया हुए हैं। जब तुम लोग स्टाक एक्सचेंज पर एक दाँव लगाते हो तो क्या तुम कभी यह सोचते हो कि इस दाँव में तुम कितने हज़ार इन्सानों की ज़िन्दगियों को दाँव पर लगा देते हो, यूँ एक चुटकी में....."

मैडम ने कहा—"तुम्हारी इन बातों का मुझ पर कोई असर नहीं होता। मगर अन्दर जाओ, सेठ बाँकड़िया से बात करो, वह बेचारा आज बिल्कुल बौखलाया हुआ है, मेरा क़दर के क़ाबिल शौहर, वह आज तुम्हारी हर बात सुनने के लिए तैयार है।"

अकरम ने कहा—"मैं तो इस वक़्त यही रमी का खेल देखूंगा। मुझे इसमें बड़ा मज़ा आ रहा है।" कुछ मिनट तक ख़ामोशी रही, फिर यकायक मैडम घबड़ा के उठ खड़ी हुई, बोली—"आज इस ताश में कोई मज़ा नहीं रहा।"

अकरम मुस्करा कर मैडम के पास आ गया और उसके नाज़ुक कन्धे पर हाथ रख के बोला—"तो आओ मैडम! इस पुरानी घिसी-पिटी ताश को फाड़ डालें। इतने धागों, रस्सियों, जंज़ीरों, डोरियों से लिपटी हुई बावन पत्तोंवाली ताश को फाड़ डालें और बावन हज़ार, बावन लाख, बावन करोड़ की बहुत बड़ी ताश से जिन्दगी का एक नया खेल खेलें, जिसमें कोई धागा न हो, कोई डोरी न हो, कोई जंज़ीर न हो।"

"बके जाओ।"—मैडम बड़ी घृणा से अकरम की तरफ़ देखती हुई कमरे से बाहर निकल गयी।

सेठ बाँकड़िया सचमुच बौखलाए, परेशान हाल, अपने कमरे में बैठे हुए थे। अकरम की बातें सुनकर उनकी आँखों में आँसू आ गये, बोले—"तुम आज तीसरे डाइरेक्टर हो जिसने मेरे लिए एक पिक्चर मुफ़्त में बनाने की आफ़र दी है। आज सुबह से मेरे यहाँ लोगों का ताँता लगा हुआ है। अकरम! एक विचित्र बात मुझे मालूम हुई, सुबह से टेलीफ़ोन पर टेलीफ़ोन आ रहे हैं, बड़े बड़े सेठों के, मेरे लख-पती दोस्तों के; अफ़सोस, हमदर्दी के टेलीफ़ोन, मगर एक भी इन लखपतियों में मेरे पास आज नहीं आया, जिन्हें मैंने ज़रूरत के वक़्त पाँच पाँच लाख रुपये कर्ज दिये हैं। और आ रहे हैं तो ऐसे लोग, तुम से भी ग़रीब लोग, मेरे स्टुडियो के मज़दूर कर्मचारी, नौकरीपेशा। वैसे ग़रीब लोगों के पास तो ख़ुद एक पैसा नहीं है, लेकिन वह किस सच्चे दिल से मेरे साथ हमदर्दी कर रहे हैं! हालाँकि--हालाँकि—इन तमाम लोगों पर मुसीबत लानेवाला मैं ही हूँ, अकेला आदमी हूँ, लेकिन ये लोग कभी अपनी मुसीबत की बात नहीं करते, सिर्फ़ मेरी मुसीबत की बात करते हैं।"

अकरम चुप रहा, थोड़ी देर के बाद सेठ ने कहा—"मेरा ख़्याल है! किसी के पास ज़्यादा रुपया नहीं होना चाहिए। इतना ज़्यादा रुपया नहीं होना चाहिए कि उसका दिमाग़ ख़राब हो जाय।"

अकरम ने मुस्करा के कहा—"सेठ तुम तो आज सोचते हो लेकिन अगर कल को तुम्हारे पास फिर कहीं से पाँच-दस लाख रुपया आ जाय तो तुम फिर....?"

"हाँ!" सेठ बाँकड़िया ने अपनी उदासी के बावजूद हँसकर कहा—"तुम बिल्कुल ठीक कहते हो—मैं फिर वही—हाँ तुम बिलकुल ठीक कहते हो," सेठ ज़ोर ज़ोर से हँसने लगा बात उसकी समझ में आ गयी थी!

४३

दर्दनाक अन्त

एक रात रफ़िया को इशरत के यहाँ रहना पड़ा, क्योंकि अचानक ही इशरत की तबियत खराब हो गयी थी। शाम के वक़्त जब रफ़िया उसके यहाँ पहुँची थी तो वह बिल्कुल प्रसन्न व स्वस्थ दिखाई पड़ता था। आज रफ़िया भी बहुत खुश थी क्योंकि अकरम की तस्वीर 'किसान' मात्रो में आठवें हफ़्ते में जा रही थी। कारखानों के मज़दूर, ऐसे लोग जो महाराष्ट्र के सैकड़ों गाँवों में अपने छोटे-छोटे घर और खेतियाँ छोड़कर आये थे या ज़मींदार के जुल्म की वजह से बेदख़ल कर दिये गये थे और शहर बम्बई में आकर नए-नए मज़दूर बने थे, उन लोगों के लिए किसान और उसकी ज़मीन का मसला एक गहरी दिलचस्पी का कारण था। एक के बाद एक सैकड़ों की संख्या में ये लोग हर रोज़ मात्रो सिनेमा में दस आने खर्च के 'किसान' पिक्चर देख रहे थे और जान रोलैण्ड कहता था कि मात्रो में दर्शकों का यह वर्ग कभी सिनेमा देखने नहीं आया था। खुद उसके लिए यह तस्वीर एक अनुभव थी। इतने सालों में हालीवुड की सिर्फ़ एक पिक्चर के सिवाय मात्रो में कोई और तस्वीर आठवें हफ़्ते में नहीं पहुँची थी और जान रोलैण्ड का ख्याल था कि अभी तीन-चार हफ़्ते और यह तस्वीर इसी तरह ज़ोर पकड़ कर चलेगी। यद्यपि अकरम और सत्यराय और दूसरे लोग पिक्चर की सफलता से बहुत प्रसन्न हुए थे, मगर सेठ कुत्तरचन्द से तनातनी होने की वजह से वह कोई नई तस्वीर नहीं शुरू सकते थे। सेठ से उनकी बदस्तूर लड़ाई थी, मात्रो की पब्लिसिटी के खर्चे बहुत थे और उन खर्चों को चुकाने के बाद जो थोड़ा सा लाभ होता था वह सेठ कुत्तरचन्द की जेब में जा रहा था। इन लोगों के पास एक पाई न पहुँचती थी, जिससे वे कोई दूसरी पिक्चर शुरू कर सकते; न अभी किसी दूसरे फिनान्सर से कोई आफ़र आयी थी, इसलिए ये लोग बहुत परेशान थे।

इन्हीं दिनों सोवियत एक्सपोर्ट फ़िल्म बम्बई के मैनेजर ने 'किसान' फ़िल्म देखी और बहुत पसन्द की। उसने मास्को लिखा कि इस फ़िल्म की प्रदर्शनी अगर सोवियत यूनियन में हो तो बहुत अच्छा रहेगा। फ़िल्म मास्को भेजी गयी, वहाँ एक्सपर्टों ने देखी, पसन्द की और सोवियत यूनियन प्रदर्शनी के लिए खरीद ली गयी। अकरम और सत्यराय बहुत खुश हुए। अब वह अपनी नई तस्वीर शुरू कर सकते थे।

रफ़िया ने इशरत को बताया कि अकरम कह रहा था कि जब चारों तरफ़

अन्धेरा था और कहीं कोई रोशनी न थी, पिक्चर खूब चल रही थी, मगर सब रुपया सेठ की तिजोरी में जा रहा था और वे जिन्होंने अपने दिल व दिमाग़ और शरीर की सारी मेहनत से इस पिक्चर को सफल किया था वे हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं कोई तस्वीर शुरू न कर सकते थे। ऐसे वक़्त बम्बई के कारख़ानों में काम करनेवालों के हाथ और बाहर के लोगों के हाथ, सोवियत देश के लोगों के हाथ, एक मज़बूत गठबन्धन की तरह हमारे हाथों से मिल गये और हमने अनुभव किया कि हम अकेले नहीं हैं, लाखों करोड़ों लोग हमारे साथ हैं। वे लोग जो हमारी ही तरह हैं, वे हमारी ही तरह अनुभव करते हैं, सोचते हैं, काम करते हैं, मुहब्बत करते हैं, रोते हैं, हँसते हैं, और सुलह करते हैं और शान्ति की बातें करते हैं।

और अकरम कह रहा था, मुझे आज महसूस हो रहा है जैसे मेरी दो नहीं दस लाख, दस करोड़ बाँहें हैं।

आज रफ़िया की आँखों में प्रसन्नता की गहरी चमक थी वह इशरत का हाथ अपने हाथ में ले कर बोली—"ये दो-तीन माह मुश्किल के हैं, फिर हमारी नई तस्वीर शुरू हो जायगी और मैंने अकरम से वायदा ले लिया है, जब तुम अच्छे हो जाओगे तुम्हें वह इस पिक्चर में ज़रूर काम देंगे, हीरो का नहीं मगर कोई अच्छा सा रोल, जिसे तुम ठीक तरह सम्भाल सको।"

"अच्छा होकर अब में काम करना चाहता हूँ, कोई मामूली सा काम, मगर अपने हाथों की मेहनत का काम, जिससे मेरे माथे से पसीना टपके, मेरे हाथों में शक्ति आये, मेरे सीने में सांस मज़बूती से चलने लगे, मैं अब ऐसा काम करना चाहता हूँ और अच्छा होकर अब मैं यही करूँगा।"

इशरत चुप हो गया। रफ़िया ख़ुशी से उसकी तरफ़ देखने लगी।

इशरत ने कहा—"तुमने मुझे माफ़ कर दिया है?"

रफ़िया ने अपने गाल इशरत के गालों से लगा दिये...."कैसी बातें करते हो, मैं औरत हूँ, मुझे मालूम था एक दिन तुम मेरे पास आओगे, मेरी हिम्मत इतनी मज़बूत थी।" यकायक इशरत का चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया उसने आहिस्ता से अपनी आँखें बन्द कर लीं। वह तकिये पर लेट के गहरी-गहरी सांस लेने लगा।

"क्या हुआ?"

"पता नहीं, बहुत ही सख़्त दर्द हो रहा है।"

रफ़िया जल्दी से नर्स को बुला लायी, नर्स भागी-भागी डाक्टर के पास गयी, अब इशरत का दर्द बढ़ता जा रहा था। उसके हाथ पांव ऐंठ रहे थे, उसका चेहरा नीला पड़ता जा रहा था।

डाक्टर ने ग़ौर से देखने के बाद कहा—"पेट के अन्दर रक्त प्रवाह हो रहा है, अन्दर का घाव खुल गया है।"

"घाव ?"—रफ़िया चौंकी।

"गुर्दे का आपरेशन जो हुआ था, वह घाव शायद खुल गया है अन्दर से।"

"फिर ?"

डाक्टर ने अपने कन्धे हिलाए और खामोश कई घण्टे तक वह इशरत के पास बैठा रहा। दवा दी गयी, इन्जेक्शन लगाये गये, सब तरकीबें की गयीं, मगर इशरत की हालत बिगड़ती गयी। रात के तीन बजे डाक्टर रफ़िया को पकड़ के बाहर ले गया और उससे कहने लगा—"अब कोई उम्मीद नहीं रही।" रफ़िया मौन थी।

डाक्टर ने अपनी घड़ी देख कर कहा—"अब यह कुछ घंटों का मेहमान है। तुम्हें अगर इससे कोई खास बात करनी हो तो कर लो। इसके घरवालों को अगर बुलाना हो तो बुला लो, मैं अपनी गाड़ी देता हूँ, अब अन्त निकट है।" रफ़िया बिल्कुल खामोश रही। डाक्टर ने घड़ी देख कर कहा—"मुझे एक दूसरे मरीज़ को देखने जाना होगा, दूसरे डाक्टर को इधर भेजता हूँ, हम लोग तो आखिरी वक़्त तक लड़ेंगे, मगर....."

डाक्टर ने अपने कन्धे हिलाए और सर झुकाए वार्ड से बाहर चला गया।

"डाक्टर क्या कहता था?"—इशरत ने पूछा।

"वह कहता था तुम ज़िन्दा रहोगे।"—रफ़िया ने कहा।

"मैं जानता हूँ उसने क्या कहा था, मैं मर रहा हूँ।"

"नहीं इशरत !"

"हाँ, मैं जानता हूँ, मेरे जिस्म की हर रग और हर नस, दिमाग़ और पेशियों का हर ज़र्रा इस वक्त यह जानता है। रफ़िया, मेरे क़रीब आ जाओ। अपना हाथ मेरे हाथों में दे दो ! अपने गाल मेरे गालों से लगा दो ! हाँ, इस तरह, रफ़िया मेरी बीवी !"

रफ़िया के होंठ कांपे, उसने ज़ोर से होंठ अपने दांतों तले दबाए उसकी आँखों में आँसू छलकने लगे। उसने ज़ोर लगाकर बड़ी मुश्किल से उन आँसुओं को अपनी आँखों में रोका मगर आँसू नहीं रुके, छलक कर उसके गालों पर बहने लगे, उसके गालों से होते हुए, इशरत के गालों पर बहने लगे, जहाँ पहले ही इशरत की आँखों से आँसू बह रहे थे।

"रोओ,.रोओ, रफ़िया ! इन आँसुओं को बहने दो। तुम्हारे आँसुओं को और मेरे आँसुओं को एक साथ बह जाने दो। यह आँसुओं का संगम है। मेरी आत्मा इसमें नहा कर पाक व साफ़ हो रही है, आज सारी गन्दगियां, सारी कमज़ोरियां और

सारी बुराइयां छूट गयी हैं और मेरी आत्मा धुली-धुलाई तुम्हारी मुहब्बत के नूर का लिबास पहिने जगमगा रही है। देखो रफ़िया ! आज मैं फिर जवान हूँ, पहले की तरह फिर ख़ूबसूरत हूँ, पहले की तरह फिर हीरो हूँ.....तुम्हारा हीरो ! आज मैं एक हीरो की मौत मरूंगा, तुम्हारी बाँहों में एक हीरो की तरह।"

वह ज़ोर से चिल्लाया, फिर यकायक उसकी बाँहें ढीली पड़ गयीं और वह बेहोश होकर बिस्तर पर गिर गया। उसके बाद वह होश में नहीं आया, पल, सेकन्ड, मिनट, घंटे गुज़र गये। दीवार पर लगी हुई घड़ी टक टक करती रही—टक टक मैं जाती हूँ, टक टक मैं जाती हूँ, टक टक मैं जाती हूँ.....।

—टक टक मैं जाती हूँ।

"इशरत।"

—टक टक मैं जाती हूँ।

लेकिन इशरत ने रफ़िया की आवाज़ नहीं सुनी, उसका बेहोश चेहरा अब बिलकुल नीला पड़ गया था। उसकी आँखें बन्द थीं और सीने में उलटी सीधी सांसों का शोर मौत की बेहोशी का पता देता था। सैकड़ों मिनट, सैकड़ों सदियों की तरह बीत गये। सुबह के पाँच बजे के लगभग इशरत ने आँखें खोलीं और उससे कहा—"मा डोली आ गयी।"

उसके बाद उसने आँखें बन्द कर लीं। उसके गले का मनका ढुलक गया और उसका हाथ रफ़िया के हाथ में ठंडा हो गया।

"इशरत!!!" रफ़िया ज़ोर से चिल्लाई।

—टक टक मैं जाती हूँ।

रफ़िया पछाड़ खा के नर्स की बाँहों में जा गिरी। नर्स ने एक बच्ची की तरह उसे सीने से लगा लिया और उसे ढाढ़स देने लगी, मगर रफ़िया इस तरह रिसरिस के रो रही थी जैसे एक इन्सान नहीं एक घाव रो रहा हो।

कहते हैं, मरनेवाले के साथ सारी मुसीबतें और दुःख ख़त्म हो जाते हैं। जब वह मर जाता है तो अपनी सारी ज़िन्दगी को अपने साथ ले जाता है और फिर इस दुनिया में उसका कुछ नहीं रहता, उसकी याद रहती है, अच्छी या बुरी याद।

और होना भी ऐसा ही चाहिए। मगर हम लोग बड़े अजीब वक़्त में एक अजीब ज़िन्दगी में रहते हैं, यहाँ मर कर भी छुटकारा नहीं होता और मुसीबत कम नहीं होती। जो बेइज़्ज़ती ज़िन्दगी में हासिल होती है, वह मरने के बाद दुचन्द हो जाती है। एक हद है जिसके आगे कोई नहीं जाता, जहाँ मरनेवाले के सारे अपराध बख़्श दिए जाते हैं; मगर जिस दुनिया में हम रहते हैं वहाँ मुर्दों को भी क्षमा नहीं किया जाता, यहाँ कोई सीमा नहीं है, कोई माफ़ी नहीं है।

रफ़िया ज्योंही वार्ड के बाहर निकली, सर झुकाए हुए, आँसू पोंछती हुई, नर्स

ने उसके हाथ में एक बिल थमा दिया, रफ़िया ने झलमलाते हुए आँसुओं में उसे पढ़ा—

कमरे का किराया...	....	२४२–०–०
इंजेक्शन व दवाइयाँ...	....	३३१–८–०
ख़ास भोजन....	....	९०–०–०
		६६३–८–०
जो रक़म अब तक चुकाई जा चुकी है....		२००–०–०
बाक़ी....	....	४६३–८–०

नर्स ने कहा—"मुझे तुमसे बड़ी हमदर्दी है। हमने पूरी कोशिश की मगर उसे न बचा सके। मौत अटल है! तुम ऐसा करना—तुम ऐसा करना यह बिल इशरत की लाश को ले जाने से पहले अदा कर देना, अस्पताल का क़ायदा है।"

रफ़िया ने कहा—"बहुत अच्छा।" मगर उसकी समझ में न आया कि वह चार सौ तिरसठ रुपये आठ आने का बिल आज ही उन अगले चन्द घन्टों में कहाँ से अदा कर सकेगी। अकरम के पास पैसे नही थे, सत्यराय के पास पैसे नहीं थे और रज़िया के पास भी पैसे नहीं थे।

फिर वह कहाँ से चार सौ तिरसठ रुपये आठ आने का बिल अदा करेगी?

यकायक उसे राज का ख्याल आया, जिस लड़की ने इशरत को तबाह किया था, जिस लड़की ने इशरत के सीने से लगकर उसका सारा रस चूस लिया था वह इशरत के क़फ़न के पैसे तो देगी। अगर रफ़िया के पास पैसे होते तो वह मर जाती मगर कभी राज के पास न जाती। मगर इस वक्त कोई चारा न था, वह अपने प्रेमी की लाश अस्पताल में सड़ा नहीं सकती थी।

० ० ०

बांदरा पहुँचकर वह देर तक राज के बँगले के बाहर गुलमुहर के पेड़ के नीचे खड़ी खड़ी यह फ़ैसला करने की कोशिश करती रही कि वह अन्दर जाये कि न जाये। उसका दिल जाने को न चाहता था। वह एक क़दम उठाती मगर फिर उसका ख्याल उसे रोक लेता। पोर्च में राज की बादामी रंग की कैडलॅक सूरज की किरणों में चमक रही थी। उसका पति शंकर गाड़ी के अन्दर चुप बैठा था, पत्थर की मूर्ति की तरह। शायद राज कहीं बाहर जानेवाली थी।

यकायक रफ़िया ने सोचा—वह बढ़कर अन्दर चली जाये और राज से बात करे। कहीं राज बाहर चली गयी तो उसे फिर ऐसा मौक़ा नहीं मिलेगा।

उसने ब्लाउज़ से वह बिल निकाला, चार सौ तिरसठ रुपये आठ आनेवाला और हिम्मत करके कैडलॅक के आगे से घूमकर अन्दर ड्राइंग रूम में चली गयी।

ठीक उस वक़्त राज अपने कमरे से बाहर निकली सजी सजाई। एकदम उम्दा

बनारसी साड़ी पहिने, ख़ूबसूरत, दिलकश, दिलरुबा। उसके होठों पर एक आभायुक्त मुस्कराहट सी थी और उसकी बग़ल में एक नौजवान चल रहा था।

रफ़िया उसे देखकर हैरत की चीख मार कर ठिठक कर रह गयी। ऐं! यह इशरत था, ज़िन्दा?

दूसरे क्षण जब वह नौज़वान पास आया तो रफ़िया ने महसूस किया कि यह इशरत न था, यह तो कोई और था, मगर जाने क्यों उस नौजवान का चेहरा-मोहरा किसी अज्ञातरूप से इशरत की याद दिलाता था। जैसे इस नौजवान और इशरत में कोई समानता हो। दूसरे क्षण यह अचानक रफ़िया की समझ में आ गया, हां इस नौजवान का चेहरा भी एलन से मिलता जुलता था।

राज ने रफ़िया को इस नौजवान की तरफ़ घूरते हुए देखकर उसका परिचय कराते हुए कहा—"यह मेरी सहेली रफ़िया, आप हैं इशरत!"

"इशरत?" रफ़िया चौंकी।

राज ने हँसकर कहा—"वह रईसगंजवाला इशरत नहीं, इनका नाम भी इत्तफ़ाक़ से इशरत है; मगर ये पाकिस्तान के रहनेवाले हैं।"

वही चौड़ा सीना....मुस्कराते हुए होंठ, वही कीमती जूते, वही नीलोन की बुशशर्ट....वही नाम....वही पहिनावा! रफ़िया का जी चाहा वह बढ़कर इस इशरत को अपनी बाँहों में जकड़ ले, इससे चिल्ला चिल्ला के कहे—"न जाओ इशरत! मेरे भोले इशरत! इस ज़िन्दा मौत के साथ कहीं न जाओ!"

इशरत ने मुस्करा के रफ़िया से हाथ मिलाया वह भारी मर्दाना आवाज़ में कुछ बोला भी मगर रफ़िया कुछ बोल न सकी, उसकी गर्दन झुक गयी।

राज ने मुस्करा के परेशान रफ़िया से पूछा—"क्यों? कुछ काम है? कुछ चाहिए?"

रफ़िया ने दिल में कहा—हां, मुझे तुमसे काम था, मैं तुमसे कुछ माँगने आयी थी।

—एक क़फ़न!

—मगर अब मैं सोचती हूँ तुमसे किसके लिए क़फ़न माँगूं?

—उस इशरत के लिए जो अस्पताल में मुर्दा पड़ा है?

—या इस इशरत के लिए जो तुम्हारी बाहों में ज़िन्दा है!

रफ़िया ने एक क्षण के लिए नज़र भर के राज की तरफ़ देखा और फिर चुपचाप इन्कार में सर हिला दिया और बेढंगे तौर पर उसने वह हाथ पीछे कर लिया जिसमें वह बिल पकड़ रखा था। फिर वह पलटकर तेज़ तेज़ कदमों से दौड़ती हुई बंगले के बाहर चली गयी!!!